श्री अमृतलाल वेगड़ के लिए नर्मदा प्रमुख प्रेरणा-स्रोत रही है जिसके चलते वे अभी तक नर्मदा-तट की 1800 किलोमीटर की कठिन पदयात्रा कर चुके हैं। नर्मदा-परिक्रमा पर आधारित उनके चित्र अनेक प्रदर्शनियों में आमंत्रित एवं पुरस्कृत हो चुके हैं। कला के साथ लेखन में भी रुचि रखने वाले श्री वेगड़ का नर्मदा-यात्रा-वृत्त हिन्दी की सभी प्रमुख पत्रिकाओं में प्रकाशित होता रहा है।

यही वृत्तांत अब इस पुस्तक में बहुमूल्य रेखांकनों के साथ साद्यंत प्रकाशित हो रहा है। लेखक का उद्देश्य नर्मदा के अनुपम सौन्दर्य का उद्घाटन करना है। नर्मदा-सौंदर्य के साथ-साथ नर्मदा-तट के जन-जीवन की एक अन्तरंग झलक भी इसमें मिलती है। पुस्तक पाठक को बाँधे रखती है। इस सफलता का रहस्य इसकी हृदयग्राही शैली में निहित है। लेखक ने पाठक को अपने दल में शामिल कर लिया है और वे पाठक को अपने साथ लिये चलते हैं। लेखक के साथ-साथ पाठक भी नर्मदा-परिक्रमा कर लेता है।

मध्यप्रदेश की जीवन-रेखा नर्मदा पर एक स्नेहसिक्त रचना।

ISBN : 81-7327-123-2

सौन्दर्य की नदी नर्मदा

अमृतलाल वेगड़

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल

सौन्दर्य की नदी नर्मदा

अमृतलाल वेगड

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल

ISBN : 81-7327-123-2

मूल्य : रु. 40.00

@ अमृतलाल वेगड़

प्रकाशक : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल

मुद्रक : प्रियंका ऑफसेट
25-ए, प्रेस काम्पलेक्स
एम.पी.नगर, भोपाल. फोन : 2555789

चतुर्थ आवृत्ति : 2003

पंचम आवृत्ति : 2006

षष्ठ आवृत्ति : 2007

प्राक्कथन

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि मातृभाषा के माध्यम से अध्ययन श्रेयस्कर एवं लाभदायी होता है। इससे विद्यार्थियों की न सिर्फ ग्राह्य क्षमता बल्कि सृजनशीलता भी बढ़ती है। अपनी भाषा में सोचना, पढ़ना एवं लिखना एक वैयक्तिक सुख है, साथ अपनी मातृभाषा से जुड़ना अर्थात् अपनी परम्परा, रीतिरिवाज या दूसरे शब्दों में कहें, अपनी संस्कृति एवं राष्ट्र से जुड़ना है। मातृभाषा के प्रति सम्मान एवं अनुराग समाज की सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक है। यही कारण है कि देश के शीर्षस्थ नेताओं, संविधान निर्माताओं ने इस कोटि जनों की भाषा को राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा की स्वीकृति दी।

अकादमी, हिन्दी माध्यम से कला, विज्ञान, तकनीकी, चिकित्सा शिक्षा की पाठ्य पुस्तकों के अलावा साहित्य, संस्कृति के सन्दर्भ ग्रन्थों का भी प्रकाशन करती है।

अकादमी का पूरा प्रयास है कि प्रमाणित पाठ्य सामग्री के साथ पुस्तकें विद्यार्थियों/पाठकों को हिन्दी माध्यम में मिल सके। शासन की योजनानुसार 1969 से म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी स्थापित है। हिन्दी भाषा के चहुँमुखी विकास के लिए कार्यरत् अकादमी, मध्यप्रदेश शासन उच्च शिक्षा विभाग द्वारा पोषित संस्था है। इसे केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय से नयी पुस्तकों के लेखन-प्रकाशन के लिये आर्थिक सहायता भी मिल रही है।

यह अत्यन्त संतोष का विषय है कि हिन्दी ग्रन्थ अकादमी स्थापना काल से निरन्तर अपनी क्षमता में वृद्धि कर रही है। सुधी पाठकों/विद्यार्थियों की अपेक्षानुरूप विद्वान/विदुषी लेखक, लेखिकाओं ने अपने ज्ञान कोश से अकादमी को समृद्ध किया है।

प्रदेश की सभी उच्च शिक्षा संस्थाओं एवं उनके प्राध्यापकों से मेरी यह अपेक्षा है कि ये अकादमी को अपनी संस्था माने और इसके प्रकाशनों को यथाशक्ति समर्थन एवं प्रश्रय दें, क्योंकि इसका सीधा संबंध राष्ट्रभाषा हिन्दी से, हमारी अपनी मातृभाषा से है।

(लक्ष्मण सिंह गौड़)
मंत्री, उच्च शिक्षा, स्कूल शिक्षा
मध्यप्रदेश शासन
अध्यक्ष
मध्यप्रदेश हिन्दी अकादमी, भोपाल

प्रस्तावना

प्रस्तुत कृति नर्मदा के सौन्दर्य के साक्षात्कार के जीवन्त अनुभवों की सहज संवेद्य प्रस्तुति है। दृश्य और द्रष्टा की रागात्मकता में पाठक को आत्मीय साझेदारी का आमंत्रण देती इस कृति में साहित्य और चित्र दोनों की विशेषताओं का अन्तर्गन्थन है। नदियों को हमने माँ माना है। नर्मदा का महात्म्य और उसके प्रवाह की विविध छवियाँ अंकन का विषय रहे हैं। नर्मदा की महिमा के प्रति लेखक के कृतज्ञ-भाव और उसके सौन्दर्य के साक्षात्कार से उत्पन्न भावापन्नता ने कृति को एक विशिष्ट पहचान दी है। रसमय तथ्य अथवा तथ्यात्मक रस! इस कृति को पढ़ना एक सहचर के रूप में एक यात्री के रचनात्मक अनुभवों में सुखद साझेदारी करना है। इस अनुपम कृति के लिए लेखक को हम सबकी सामूहिक बधाई। हम प्रसन्न हैं कि हम अपने पाठकों को एक पठनीय और संग्रहणीय पुस्तक सौंप रहे हैं।

लेखकीय

कभी-कभी मैं अपने-आप से पूछता हूँ, 'यह जोखिम भरी यात्रा मैंने क्यों की? और हर बार मेरा उत्तर होता है, 'अगर मैं यह यात्रा न करता, तो मेरा जीवन व्यर्थ जाता।' जो जिस काम के लिए बना हो, उसे वह काम करना ही चाहिए। और मैं नर्मदा की पदयात्रा के लिए बना हूँ।

किन्तु, जब तक इस सत्य का पता मुझे चलता, मैं 50 के करीब पहुँच चुका था। प्रथम पदयात्रा मैंने 1977 में की और अंतिम 1987 में। इन ग्यारह वर्षों के दौरान की गयी दस यात्राओं का वृत्तांत है इस पुस्तक में। साथ ही कुछ रेखांकन भी हैं, जो मैंने इन यात्राओं के दौरान किये थे।

नर्मदा-तट की भूगोल तेजी से बदल रही है। बरगी बाँध के कारण नर्मदा-तट के कई गाँवों का अस्तित्व नहीं रहा। नर्मदा-सागर और सरदार सरोवर बाँधों के कारण अनेक गाँवों का तथा नर्मदा के सैकड़ों किलोमीटर लंबे किनारों का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। जब मैंने ये यात्राएँ की थीं, तब एक भी गाँव डूबा नहीं था। नर्मदा बहुत कुछ वैसी ही थी, जैसी लाखों वर्ष पूर्व थी। मुझे इस बात का संतोष रहेगा कि नर्मदा के उस विलुप्त होते सौन्दर्य को मैंने सदा के लिए इन पृष्ठों पर सँजो कर रख दिया है। इसमें जो कुछ अच्छा है, वह नर्मदा का है। सौंदर्य उसका, भूलचूक मेरी।

अमृतलाल वेगड़

नयन न तिरपत भेल

नर्मदा की जन्मकथा पुराणों की मोहमयी कुहेलिका से उभरकर हमारे सामने आती है। नर्मदा शिव-तनया हैं किसी अनादि-काल में भगवान शंकर पर्वत-शिखर पर ध्यान में मग्न थे। उनके अनजाने ही किसी समय उनके नील कण्ठ से नर्मदा निःसृत हुईं। जन्म लेते ही वे शिव की तपस्या में लीन हो गयीं। शिव ने नयन खोले तो इस असाधारण तपस्विनी को देखकर चकित हुए। यौवनदीप्त स्निग्ध-श्यामल ऋजु देह को तप के अनुशासन की स्वर्णकठिन आभा ने जैसे कसकर बाँध दिया हो। नेत्रों में बिजली कौंध रही है। देखकर शिव प्रसन्न हुए। वर दिया "तुम अमृतमयी होगी। जो फल तीर्थवारि में अवगाहन से होता है,- वह तुम्हारे दर्शनों से ही सुलभ होगा। तुम अपनी आकांक्षा के अनुरूप चिरकुमारी होगी। मुझे तुम निरंतर अपने निकट पाओगी। कलिकाल में तुम पतितपावनी गंगा के समग्र माहात्म्य की अधिकारिणी होगी।"

विचित्र नहीं यदि ऐसी अद्वितीया, पुण्यतोया, शिव की आनन्द-विधायिनी, सार्थकनाम्ना स्रोतस्विनी की परिक्रमा करने के लिए युग-युग से पुण्यार्थी लालायित रहे हैं। और तो किसी नदी की परिक्रमा नहीं की जाती। नर्मदा-तटवासी अमृतलाल भी एक दिन अपनी चिर-संचित साध मिटाने परकम्मावासी बनकर निकल पड़े। "सौन्दर्य की नदी नर्मदा" उनकी इसी परिक्रमा का आलेख है।

किन्तु यह कौन-सी अदम्य प्रेरणा है जो निपट घरेलू स्वभाव के अमृतलाल को घर में स्थिर नहीं रहने देती, बार-बार घर से बाहर खींच लाती है? यह तो कोई शौकिया तफरीह नहीं, सरासर कष्ट-संकुल, पाँव-पैदल, आपदाओं को आमन्त्रित करने वाला, भ्रमण से अधिक भटकना है। समय-सुयोग-सुविधा पाते ही अमृतलाल घर से निकल पड़ते हैं और जहाँ छोड़ते हैं, वहीं से अगली बार फिर शुरू कर देते हैं। कहते हैं, "लो माँ नर्मदे, लगाम तुड़ाकर मैं फिर आ गया।"

रवीन्द्रनाथ ने अपने एक गीत में एक ही विशेष्य के लिए तीन विशेषणों का प्रयोग किया है : साधक, प्रेमिक और पागल। इनमें शेष दो को तो सदा ही समानार्थी माना गया है पर तीसरा भी अपांक्तेय नहीं। तीनों ही एक-दूसरे का हाथ थामकर ऐसे अंतरंग भाव से चलते हैं मानो तीन नहीं, एक हों। अमृतलाल ऐसे ही अर्थ में नर्मदा के साधक हैं और उनकी इस साधना का मूलमन्त्र वही शाश्वत ढाई अक्षर का शब्द है जिसकी बात कहते कबीरदास कभी थकते नहीं। ऐसी ही सबसे ऊँची सगाई अमृतलाल को नर्मदा से बाँधे हुए है। वे भरसक नर्मदा की "उँगली पकड़कर" चलते हैं, वियोग उन्हें सहन नहीं, भले ही इससे ढाई कोस का सफर नौ दिनों में तय हो। नर्मदा को वे देखते हैं, सुनते हैं, दिन में, रात में, सुबह-साँझ और साँझ-सबेरे। नर्मदा-जैसी बहुरूपिणी नदी हमारे देश में दूजी कहाँ? अभी सुगंभीर प्रशान्ता, दूजे क्षण चपल मुखरा; अभी सलज्जा तो अभी सप्रतिभ। क्रीड़ा-कौतुक से तो उसे विरत ही नहीं किया जा सकता। प्रपातों की सृष्टि करना तो नदियाँ नर्मदा से सीखें। अमृतलाल करें भी तो क्या? वे जब घर लौटते हैं तब अगली परिक्रमा का स्वप्न देखते हैं, घर मानो रैन-बसेरा हो। उनके मन की गढ़न शिल्पी की है और शिल्पी दरअसल बेघर होता है; सम्भवतः इसीलिए परम-शिल्पी को अनिकेत कहा गया है। फिर अमृतलाल ने तो शिल्प की शिक्षा शान्तिनिकेतन के कलाभवन में विधिवत् आचार्य नन्दलाल वसु से पायी है।

शिल्प की साधना करते-करते अमृतलाल ने भाषा को किस प्रकार साध लिया, यह एक रहस्य है। अवश्य ही वे कोई भारी-भरकम भ्रमण-वृत्तांत लिखने नहीं बैठे; उनकी गायकी ध्रुपद की नहीं, लोकगीति की है, जिसमें मनुज के सुख-दुःख, चढ़ाव-उतार, धूप-छाँह कब आते और चले जाते हैं— आहट ही नहीं मिलती। यह सहज भाषा की सिद्धि है, जिसे सजने-सँवरने का न आग्रह होता, न प्रयोजन। वे कहते हैं, "जब कोलाहल नहीं रहता, कलरव तभी सुनाई देता है।" उनका विश्वास है कि "हर भाषा में कुछ शब्द अश्वमेधयज्ञ के घोड़े की तरह होते हैं। सीमाओं को वे नहीं मानते, उन्हें रोकना आसान नहीं।" रूपक उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि अमृतलाल के निकट बिन-बुलाये चले आते हैं। जिसने आदिवासी नारी को देखा है, वह तुरंत समझ लेगा कि बैगा स्त्रियों के शरीर किस प्रकार गुदनों से "छलक" रहे थे। कृष्णपक्ष की चौदस का चाँद कैसा दिखाई दे रहा था? अमृतलाल कहते हैं, "घिस जाने पर बचे हुए चन्दन के टुकड़े की तरह" अथवा "शिलाओं से मंडित और झाड़ियों से आच्छादित इस विशाल किनारे से सटकर बहती नर्मदा ऐसी लग रही

थी मानो शिव की गोद में पार्वती सो रही हों।" नदी के अर्द्धचन्द्राकार घुमाव में अवस्थित नगरी को देखकर अमृतलाल कहते हैं, "मंडला मानो नर्मदा के कर्ण-कुंडल में बसा है।" और यह रही अत्युक्ति : "हवा इतनी गर्म हो गयी कि लगता है अगर छोटी-सी चिनगारी डाल दें तो हवा आग पकड़ लेगी।" उक्ति को सूक्ति बनते भी देर नहीं लगती : "प्रेम का दीप मुश्किल से जलता है, ईर्ष्या की आग आसानी से सुलगती है।" अमृतलाल स्वभाव से विनोदी हैं पर विनोद को कभी-कभी व्यंग्य का बाना पहनना पड़ता है। जब गुमान को खेद होता है कि परकम्मावासी अपनी जमीन-जायदाद के तुच्छ झगड़े यहाँ समुद्र तक ले आते हैं, तब अमृतलाल चकित नहीं होते; कहते हैं, "तुम समुद्र की कहते हो, आदमी जल्द ही अपने झगड़े अन्तरिक्ष में ले जायेगा। झगड़ों के लिए धरती अब उसे छोटी पड़ रही है।" और एक छोटा-सा उपहार डाक-सेवा-विभाग के लिए रहा : "श्रद्धालु जब नर्मदा में दीप प्रवाहित करते हैं, तब उनमें से कुछ दूर तक जाते हैं तो कुछ थोड़ी दूर जाकर ही डूब जाते या बुझ जाते हैं। डाक में पत्र छोड़ते समय मेरे मन में भी थोड़ा-बहुत यही भाव रहता है। पता नहीं इनमें से कितने मंजिल तक पहुँचेंगे और कितने बीच में ही दम तोड़ देंगे। इसलिए पत्र छोड़ते समय मैं यह प्रार्थना अवश्य करता हूँ : जाओ वत्स, तुम्हारी यात्रा शुभ हो। तुम अपने गन्तव्य तक पहुँचो। रास्ते में अनावश्यक विलंब न हो। डाक के देवता तुम्हारी रक्षा करें।" नदी-नाव-संजोग से न जाने कितने लोगों के साथ अमृतलाल का परिचय होता है, जिनके अविस्मरणीय शब्दचित्र उन्होंने अपनी सधी हुई कलम से आँक दिये हैं।

अमृतलाल के शब्दचित्र और रेखाचित्र बहुत घनिष्ठ सजातीय हैं। रेखाचित्र पुस्तक की सज्जा नहीं, संपद हैं; वे अनुभव और अनुभूति के क्षणों को जीती-जागती धरोहर के रूप में संरक्षित किये हुए हैं। समय जैसे उनमें रुक गया है, पर अपने हृदय की धड़कन के साथ। नर्मदा के घाटों के चित्र देखें, उनमें चढ़ने-उतरने वालों की पद-ध्वनि-सी सुनाई देती है। कूटने वाली के हाथ का मूसल ऊपर उठकर बस अब अगले क्षण ही नीचे उतर आने वाला है। यही बात ढोलक पर पड़ने वाली थापों की है। नृत्य के दृश्यों का तो कहना ही क्या; उनमें देह का बाँकपन, हाथों की मुद्रा और पाँवों की थिरकन एक-दूसरे में घुल-मिल गये हैं। और तनिक बोझ सिर पर सँभाले हुए चलने वाली उन दो नारियों को देखें कि किस भाँति वे अपनी देह को, सिर के बोझ को और लपककर चलने की गति को संतुलित किये हुए हैं। ऐसे ही संतुलन का दृश्य आप नदिया पार करने वाली टोली के रेखाचित्र में पायेंगे, जिसमें कुछ के पाँव ठीक सधे हुए हैं तो कुछ के पाँव भय से डगमगा रहे हैं और शायद दिल धड़क रहा है। दही या मठा भाने वाली नारी, आग तापते हुए तीन वृद्ध अथवा भजन-कीर्त्तन सुनने में मग्न पाँच परकम्मावासी— ये सब ऐसे ही सुपरिचित दृश्य हैं जो मन को बरबस मुदित करते हैं। नर्मदा के नाते ये सभी मानो अमृतलाल के बहुत अपने हैं— "नाते सबै राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।" वस्तुतः सभी चित्रों में यह विशेषता बनी हुई है।

पथ-प्रान्तर और वन-वनान्तर की लगभग अठारह सौ किलोमीटर लंबी पदयात्रा अमृतलाल कर चुके हैं पर उन्हें खेद है कि नर्मदा के समग्र रूप के दर्शन उन्होंने नहीं किये; न चातुर्मास किया, न परिक्रमा के सारे नियमों का पालन किया और न परिक्रमा ही पूरी की। तथापि उन्होंने जो कुछ देखा-सुना और जाना-बूझा, अतुलनीय है। उनकी पदयात्रा के साथ एक अन्तर्यात्रा भी चलती रही है, जो भले ही समाप्त न हुई हो पर अपने-आप में पूरी है। उस पर पूर्णता की अदृश्य मुहर लगी हुई है। ओस के कण में जितना भी आकाश प्रतिबिम्बित होता है, वह आकाश ही है— आकाश-छोड़ दूजा कुछ नहीं; इसलिए अपने-आप में पूरा है। तथापि यदि अमृतलाल के अंतर के किसी कोने में अतृप्ति बनी हुई है तो उसे वहाँ बने रहने का अधिकार है :

"जनम अवधि हम रूप निहारिनु नयन न तिरपत भेल"

मोहनलाल वाजपेयी

नर्मदा की बात

यात्रावृत्त साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग है। हिन्दी में कुछ उच्च कोटि का यात्रा-साहित्य लिखा गया है। किन्तु परिमाण और वैविध्य की दृष्टि से उसमें अभी बहुत कुछ और वृद्धि की गुंजाइश है।

श्री अमृतलाल वेगड़ की "यात्रा" को अपनी मानसिक यात्रा बनाना लाखों हिन्दी भाषियों और साहित्य-प्रेमियों के लिए एक सर्वथा नया और अनूठा अनुभव होगा। वह सच्चे अर्थों में एक सांस्कृतिक यात्रा है; एक कलाकार, तपस्वी और भारतीय श्रद्धा-बुद्धि के साथ अद्भुत ढंग से समरस व्यक्ति की यात्रा, जिसका हर अध्याय एक अक्षय ताजगी और संवेदनात्मक समृद्धि से परिपूर्ण है। कई-कई बरसों के आरपार संपन्न की गयी यह यात्रा एक अत्यन्त रोचक शृंखलाबद्ध कथा बन गयी है, जिसमें औपन्यासिकता भी है और कवित्व भी। एक ऐसी गाथा जिसका केन्द्रीय चरित्र स्वयं सौन्दर्य की नदी नर्मदा है। सचमुच यह नर्मदा लेखक की तरह हमारी भी स्मृति का अविच्छेद्य अंग बन जाती है : स्मृति, जो केवल व्यक्तिगत नहीं, हम सब भारतवासियों की जातीय स्मृति है। लेखक और उसके सहयात्री तो इस अद्भुत उपन्यास के सदाजाग्रत, सदासजीव पात्र हैं ही, साथ में जनजीवन के जो अविस्मरणीय चलचित्र इस वृत्तांत में यहाँ से वहाँ तक गुँथे पड़े हैं, उनमें बीसियों ऐसे 'चरित्र' हैं जो भले थोड़ी देर के लिए आये हों, किन्तु ऐसी जीवंत नाटकीयता में वे प्रस्तुत होते हैं कि ओझल होकर भी नहीं होते— सदा-सदा के लिए हमारी स्मृति में बस जाते हैं।

मैंने इस 'महायात्रा' को धारावाहिक रूप में पढ़ा था। ऐसी रसवन्ती और जीवन-लीला के अपार वैविध्य से छलकती 'यात्रा' मन को चाहे जितना तृप्त करे, मन उससे कभी अघा नहीं सकता। इसलिए समापन किस्त पढ़ते हुए जहाँ सचमुच एक 'वृत्त' की सी संपूर्णता का संतोष मिला। वहीं एक अजीब-सी उदासी भी मन पर छा गयी कि अब यह कहानी आगे नहीं बढ़ेगी। वैसे तो नर्मदा की कहानी अनादि और अनंत है : उसका क्या आरंभ और क्या अंत! वह तो स्वयं मनुष्य और उसकी आदिम विस्मयानुभूति की तरह, सृष्टि-प्रवाह की तरह अक्षय जान पड़ती है। किन्तु, यह उदासी केवल भावुक उदासी नहीं है : इसके पीछे कहीं एक विकराल वास्तविकता भी है। लेखक ने स्वयं उसे व्यक्त किया है और बड़े बेलाग ढंग से, निर्मम यथातथ्यता के साथ व्यक्त किया है :

'मेरी इस यात्रा के सौ साल बाद तो क्या, पचीस साल बाद भी कोई इसकी पुनरावृत्ति न कर सकेगा। पचीस साल में नर्मदा पर कई बाँध बन जायेंगे और इसका सैकड़ों मील लंबा तट जलमग्न हो जायेगा। न वे गाँव रहेंगे, न पगडंडियाँ। पिछले 25000 वर्षों में नर्मदा-तट का भूगोल जितना नहीं बदला है, उतना आने वाले 25 वर्षों में बदल जायेगा।'

इस विकराल वास्तविकता को देखते हुए अमृतलाल वेगड़ का यह यात्रा-वृत्तांत अपना एक दूसरा महत्वपूर्ण पहलू उद्घाटित करने लगता है : इसका दुर्लभ दस्तावेजी महत्व, जिसे अनदेखा करना अनर्थकारी होगा। भले हम इस श्रद्धावान लेखक के साथ यह सोचकर अपने मन को सांत्वना दे लें कि "नर्मदा तो बस नर्मदा ही है। जैसा भव्य उसका अतीत है, वैसा ही उज्ज्वल उसका भविष्य है।"

जरा सोचिए, ऐसा दुर्लभ और मणिकांचन संयोग भी कब और कहाँ जुटता है कि एक ही लेखक में भरा-पूरा आदर्श-बोध भी हो, और यथातथ्य यथार्थ-बोध भी। उसमें प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करने की, तन्मय होने की, प्रतिभा भी हो और सटीक-सजीव वर्णन-सामर्थ्य भी। ऐसा लेखक, जो भाषा के साथ उतना ही सहज और निश्छल हो, जितना जनजीवन के साथ; जिसमें करुणा के साथ हास्योद्रेक क्षमता हो और श्रद्धा के साथ तटस्थ बौद्धिक विश्लेषणवृत्ति भी। और, ऐसा सुयोग भी कब-कब सधता है कि जीवन-लीला और प्रकृति-सौन्दर्य के इस अखूट विस्तार और वैविध्य को आप शब्दों के साथ-साथ रेखाओं में भी- आकारों में भी बोलते सुन सकें। कहना कठिन है कि अमृतलालजी के शब्द अधिक मुखर-सजीव हैं कि रेखाचित्र? मेरा बस चले तो मैं इस पुस्तक के दो संस्करण कराऊँ : एक अपेक्षाकृत नयनाभिराम साज-सज्जा वाला डीलक्स संस्करण, जिसे रसिकजन खासा मोल चुका कर ही सहेज सकें; और दूसरा सर्वजन सुलभ जेबी— हालाँकि सुरुचिपूर्ण संस्करण— जिसे स्कूल का छात्र, प्राथमरी का शिक्षक, दफ्तर का चपरासी, नया नया प्रौढ़ साक्षर, हर कोई दस-पंद्रह रुपये में अपनी संपत्ति बना सके।

क्या यह एक असंभव सपना है? मेरा मन कहता है, कतई नहीं। इससे अधिक सहज स्वाभाविक आचरण और क्या हो सकता है इस रचना के साथ, जो जितनी सौन्दर्य शालिनी है, उतनी ही जनमनरंजनी भी। मेरा बस चले तो मैं इसे स्कूल के पाठ्यक्रम में लगा दूँ। क्योंकि यह सौन्दर्य का ही नहीं, संस्कृति का भी उत्तम पाठ है। इस नदी के पास कितना कुछ कहने-बताने को है कि वह इस 'तुमुल कोलाहल कलह' के बीच हमें अपने हृदय की बात लगने लगती है। मेरी कामना है कि हिन्दी जगत में इस रचना का भरपूर स्वागत हो

रमेश चन्द्र शाह

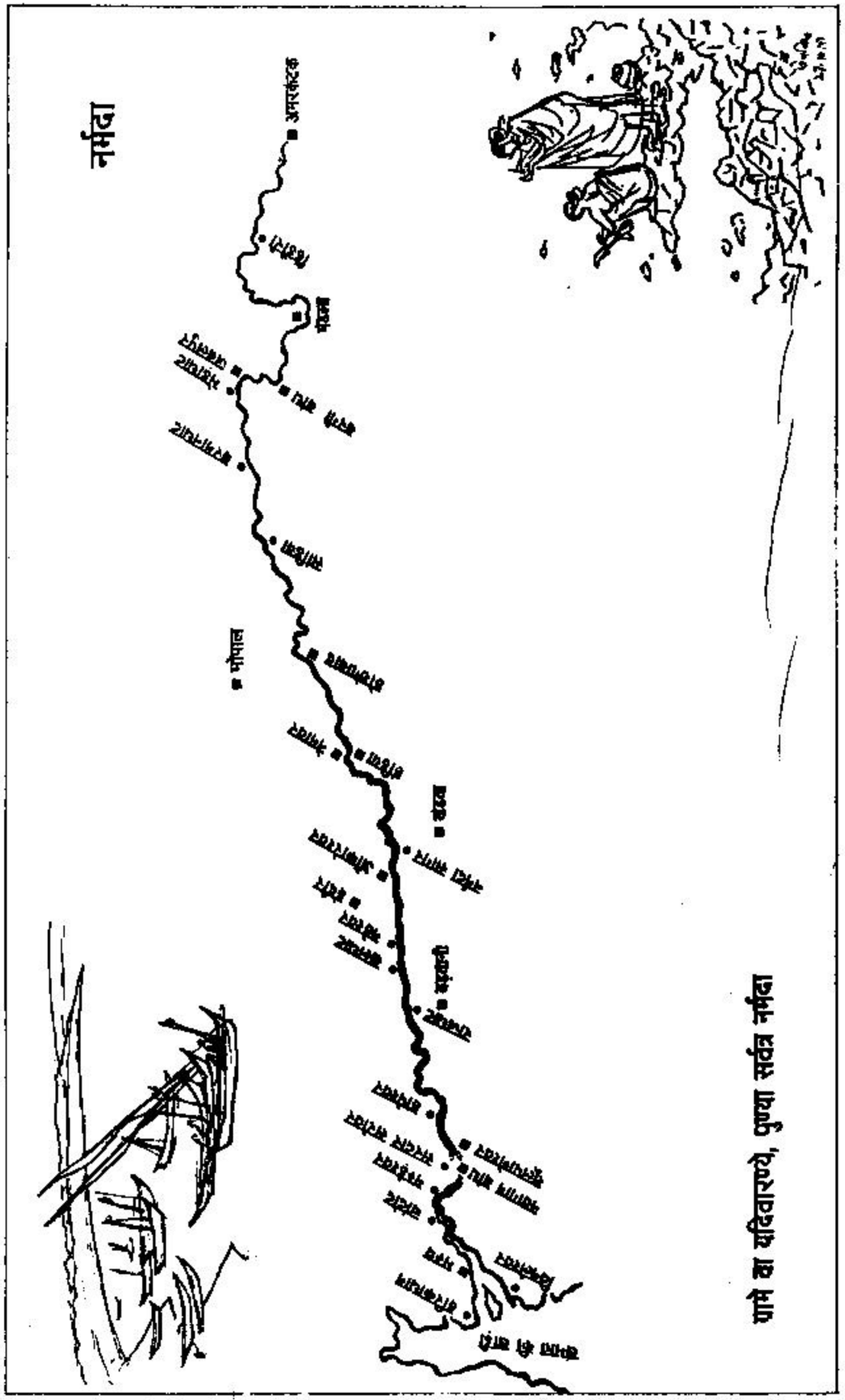

क्रम

उत्तर तट

1.	जबलपुर से छेवलिया	17
2.	छेवलिया से मंडला	22
3.	मंडला से छिनगाँव	27
4.	छिनगाँव से अमरकंटक	34

दक्षिण तट

5.	अमरकंटक से डिंडौरी	39
6.	डिंडौरी से महाराजपुर (मंडला)	44
7.	महाराजपुर से ग्वारीघाट (जबलपुर)	51
8.	ग्वारीघाट से बरमानघाट	58
9.	बरमानघाट से साँडिया	66
10.	साँडिया से होशंगाबाद	74
11.	होशंगाबाद से हंडिया	81
12.	हंडिया से ओंकारेश्वर	88
13.	ओंकारेश्वर से खलघाट	96
14.	खलघाट से बोरखेड़ी	103
15.	बोरखेड़ी से केली	109
16.	केली से शूलपाणेश्वर	115
17.	शूलपाणेश्वर	121
18.	शूलपाणेश्वर से कबीरवड़	128
19.	कबीरवड़ से विमलेश्वर	134
20.	विमलेश्वर से मीठीतलाई : समुद्रयाला	141

उत्तर तट

21.	मीठी तलाई से कोलीयाद	148
22.	कोलीयाद से भरूच	154

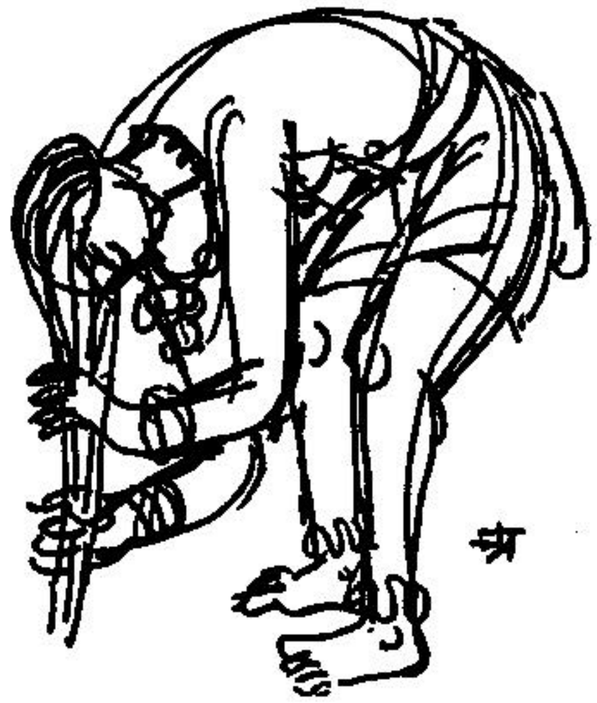

1. जबलपुर से छेवलिया

नर्मदा सौंदर्य की नदी है। यह नदी वनों, पहाड़ों और घाटियों में से बहती है। मैदान इसके हिस्से में कम ही आया है। सीधा-सपाट बहना तो यह जानती ही नहीं। यह चलती है इतराती, बलखाती, वन-प्रांतरों में लुकती-छिपती, चट्टानों को तराशती, डग-डग पर सौंदर्य की सृष्टि करती, पग-पग पर सुषमा बिखेरती!

नर्मदा मुझे बचपन से ही खींचती रही है। उसके विविध रूप देखने मैं सुदूर देहातों में गया हूँ। उसकी शोभा को मुग्ध होकर निहारता रहा हूँ। लेकिन तृप्ति कहाँ! परकम्मावासियों को देखकर हर बार मन ललक उठता। सोचता, अपनी स्केच-बुक लेकर क्यों न इनके साथ हो लूँ। लेकिन बात बनती नहीं थी।

किन्तु, एक दिन बात बन ही गयी। मेरे सहयोगी पांडेजी जबलपुर से मंडला तक की नर्मदा-तट की पदयात्रा के लिए तैयार हो गये। अब हम तीसरे साथी को तलाशने लगे। जिससे पूछते, वही हँसता। कहता- वसीयतनामा लिखकर जाना। कोई कहता- साथ में गधा जरूर ले जाना। बोझा ढोने के काम आयेगा, सवारी का काम भी देगा।

कोई सहयोगी तो तैयार नहीं हुआ लेकिन हमारे दो छात्र खुशी-खुशी तैयार हो गये— यादवेन्द्र और सूर्यकान्त। तय हुआ कि दशहरा मनाकर दूसरे दिन सबेरे चलेंगे। यात्रा म्वारीघाट से शुरू होगी।

22 अक्टूबर 77 की सुबह हम चारों म्वारीघाट से, पीठ पर बोझा लादे, 'नर्मदे हर!' के घोष के साथ चल पड़े।

तीसरे पहर लुतरपुर गाँव पहुँचे। रात को एक ग्रामीण के बरामदे में जब सोये, तब टाँगें तो दुख ही रही थीं, ऐसा लग रहा था मानो कंधे जड़ से उखड़ जायेंगे। फिर भी नींद बहुत अच्छी आयी।

सबेरे आगे बढ़े। बरसात अभी-अभी खत्म हुई थी। कई जगह दलदल था और पैर फिसलते थे। एक गाँव में एक ग्रामीण के घर सुस्ताने बैठे। मेरा ध्यान उसके घर की दीवारों पर गया। दीवाली की लिपाई-पुताई हो चुकी थी। उसकी स्त्री ने दीवार पर बेल-बूटे निकाले थे। मैंने उससे कहा, 'गोर बढ़िया बना है। रंग भी बहुत अच्छे हुए हैं।'

उसने लज्जित पर साथ ही उत्साहित होते हुए कहा, 'यहाँ देखिए, कुछ यहाँ भी बने हैं।' बाद में पांडेजी ने बताया, 'आपकी प्रशंसा से वह बहुत खुश हुई थी। पुलक भरे स्वर में अपनी सहेली से कह रही थी, इन लोगों को मेरे बेल-बूटे बहुत अच्छे लगे।'

शाम को बिजौरा पहुँचे। उस पार है बरगी कालोनी। यहाँ नर्मदा पर बड़ा बाँध बनाया जा रहा है। बाँध की गहरी खाई-सी नींव में उतर कर ही हम बिजौरा पहुँच सके थे। सोने के लिए पाठशाला मिल गयी। एक कमरे की पाठशाला। चौकठ में दरवाजा नहीं था। मेरा बिस्तर वहीं था। पांडेजी कहने लगे, 'बघेरा आयेगा, तो पहला शिकार आप होंगे।'

बहुत दुबला हूँ। गिनी-चुनी हड्डियाँ भर हैं मेरे शरीर में। कहता हूँ, 'बेचारे को प्रथम ग्रासे मक्षिकापात होगा, पर हाँ, जब तुम्हारे पास आयेगा, तब मधुरेण समापयेत होगा!'

सुबह नारंगी रंग का बड़ा भारी सूरज निकला। निकला नहीं उगा— पौधा जैसे धरती में से उगता है। ताजा जन्मा सूरज नवजात शिशु-सा नरम और कोमल लग रहा था।

तैयार हुए और बंजारों की तरह चलते बने। रास्ते में एक संन्यासी की कुटी मिली। मैंने संन्यासी से पूछा, कैसे-कैसे लोग नर्मदा की परिक्रमा करते हैं, तो कहने लगे, 'अधिकतर लोग भीख माँगने के लिए ही परकम्मा उठाते हैं। इससे पेट भी भर जाता है और पैर भी पुज जाते हैं।'

रास्ते में एक नाई का साथ हो गया। बड़ा बातूनी था। हमने पूछा कि आगे हमें किस गाँव में रुकना चाहिए, तो उसने कहा कि अगले गाँव में ही रुक जाइए। आज वहाँ के मालगुजार के भाई की तेरहीं है। काफी लोग जुटे हैं। आप भी शामिल हो जाइए। रहने के साथ-साथ भोजन की समस्या भी हल हो जायेगी।

मैंने डपट कर कहा, 'हम तेरहीं का खाना नहीं खाते।'

उस गाँव में हम रुके नहीं। गाँव के बाहर कई खेत फोड़े गये थे। कभी कीचड़ में से तो कभी मेड़ों पर से आगे बढ़ रहे थे कि पड़ा हिंगना नाला। इसमें पानी कम, कैंपा अधिक था। इसमें पैर धँसते थे और मुश्किल से निकलते थे। यहाँ यादवेन्द्र की लाठी बहुत काम आयी। फिर भी उस ओर पहुँचते-पहुँचते छठी का दूध याद आ गया।

कुछ आगे बढ़े तो सागौन का घना जंगल शुरू हो गया। फिर पहाड़ की चढ़ाई। पहाड़ को लाँघने में हाँफ गये लेकिन मजा भी कम नहीं आया।

उस पहाड़ी को लाँघ कर क्या आये थे, एक सर्वथा नवीन सौंदर्य-लोक में आ गये थे। चारों ओर हरियाली ही हरियाली। धीरे-धीरे खेत पीछे छूट गये और जंगल शुरू हो गया। कहीं कोई आदमी नजर नहीं आ रहा था। ऐसा लग रहा था मानो हम किसी अछूती भूमि में से जा रहे हों। पैर और कंधे दुख रहे थे, पर मन का उल्लास फूट-फूट पड़ता था।

कभी पहाड़ी पर चढ़ाती, कभी खड्ड में उतारती, कभी झाड़-झंखाड़ से उलझाती तो कभी छोटे-छोटे झरनों में उतारती हमारी पगडंडी हमें एक ऐसे स्थान पर ले आयी, जिसे देखकर हम मारे खुशी के झूम उठे।

सामने एक नन्ही नदी थी। इसमें छोटे-छोटे ढेर सारे प्रपातों की पंगतें लगी थीं। इन्हें देखकर आँखें पलक झपकाना भूल गयीं। कान निनाद सुनने में मगन हो गये। समाधि-सी लग गयी। लेकिन बुद्धि जिसका नाम! उसने कहा— जरा वहाँ भी देखो। सूरज ढल रहा है, शाम गहरा रही है, न जाने बरहइयाखेड़ा कितनी दूर हो। उठो, चलो!

उठना पड़ा। नदी पार की। लेकिन उस पार पगडंडी मिल नहीं रही थी। नदी में आकर मानो घुल गयी थी। बड़ी मुश्किल से मिली। तेजी से आगे बढ़े। अँधेरा होते-होते पटेल के घर पहुँचे। पटेल तो बाहर गया हुआ था, लेकिन घर के लोगों ने हमें बड़ी खुशी से अपने यहाँ ठहरा लिया। थककर चूर हो गये थे। खाना बनाया, खाया और घोड़े बेचकर सो गये।

सुबह उठकर देखा, घना कोहरा था। नर्मदा-तट गये। घटाटोप कोहरे के कारण आकाश और धरती एकाकार हो गये थे। आकाश मानो धरती पर

उतर आया था। कोई घंटे भर बाद कोहरा छँटा, लेकिन नदी अभी भी स्पष्ट नहीं हुई थी, क्योंकि नदी में से भाप उठ रही थी। मैंने देखा भाप सीधी नहीं उठती थी, वलयाकार उठती थी। तन्मय होकर देखता रहा और सोचता रहा, भाप सीधी भी तो उठ सकती थी। इस तरह वर्तुल में लहराती क्यों उठ रही है। भाप ही क्यों, स्वयं नर्मदा को भी तो कहीं सीधे बहते नहीं देखा। वह भी सीधी रेखा की अपेक्षा वक्रिम रेखा में चलने में ज्यादा सौंदर्य अनुभव करती है। यही वक्र गति-प्रियता मनुष्य में भी है। यही छंद में, रंग में, लय में, ताल में ढलकर कला बन जाती है।

कोहरे और भाप की क्रीड़ा अद्‌भुत लगी थी। कल इसे दोबारा देखेंगे। आज नहीं जायेंगे।

दोपहर को आराम कर रहे थे कि बाहर से धड़ाम की आवाज आयी। उसी घर की एक स्त्री जंगल से लकड़ी का गट्ठर ला रही थी कि गट्ठर खंभे से टकराकर गिर पड़ा और उस पर गिरी वह स्त्री। गिरते ही बेहोश हो गयी। टाँगाटोली कर उसे घर में ले आये। एक स्त्री उस पर पंखा झलने लगी। बीच-बीच में उसे झकझोरती और जोर से बुलाती, लेकिन वह होश में नहीं आयी। बाहर जाते समय हम उसे एक गोली देते गये। कहा, 'होश में आने पर दे देना, शरीर का दर्द कम हो जायेगा।'

शाम को लौटते ही मैंने घर की एक स्त्री से, जो सूपे से कुछ फटक रही थी, पूछा, 'क्यों बाई, आज जो बाई गिर पड़ी थी, उसकी तबीयत कैसी है?'

वह स्त्री लजाकर मुस्कराने लगी। मैं समझा नहीं। दूसरी स्त्री ने हँसते हुए कहा, 'यही तो गिरी थी!'

मैं चकित। जो स्त्री कुछ घंटे पहले बेहोश पड़ी थी, काम कर रही है!

घर के लोगों से घरोबा हो गया था। घर की स्त्रियों को आटा दिया तो उन्होंने रोटियाँ बना दीं। रात को सोते समय मैं सोच रहा था, कब सवेरा हो और कब भाप और कोहरे का जादू देखने मिले।

सबेरे चार बजे नींद खुल गयी। ढिबरी के टिमटिमाते उजाले में स्त्रियों का कार्यकलाप शुरू हो गया था। एक स्त्री ओखली में धान कूट रही थी। फिर दूसरी आ गयी, दोनों के मूसल बारी-बारी से चलने लगे। मैं इनकी जुगलबंदी देख ही रहा था कि एक स्त्री ने चक्की पीसना शुरू कर दिया। साथ ही वे गाती भी जा रही थीं। भोर में यह सब कितना भला लग रहा था।

उजाला होते ही मैं नर्मदा-तट भागा। लेकिन एक सीधी-सादी बात भूल गया था। जिसके लिए हम बहुत व्यग्र होते हैं, वह प्रायः छलना सिद्ध होता है। आज न तो कोहरा था, न भाप।

कल नदी, आकाश, पहाड़, जंगल सभी उस घने कोहरे में खो गये थे। फिर धीरे-धीरे, परत-दर-परत, उभरते जा रहे थे। यही इंद्रजाल हम आज भी देखना चाहते थे। लेकिन आज रंगमंच सूना था। आज नाटक नहीं खेला गया।

हर सुबह सफर, हर शाम सफर। छेवलिया चल दिये। सरसों के पीले खेत देखकर मुझे बार-बार बसोहली शैली के चित्र याद आ जाते। इस पीतांबर धरती को मैं मुड़-मुड़ कर देखता और पीछे रह जाता।

छेवलिया के कोटवार ने बड़ी खुशी से हमें अपने घर में ठहरा लिया। कहने लगा, 'आप अच्छे आये। आज शरद पूर्णिमा है। रात को नर्मदा किनारे हनुमान-चौरे पर कीर्तन-मंडली जमेगी। सारी रात भजन होंगे। आप जरूर आइए।'

रात को यादवेन्द्र ने खीर बनायी, शरद पूर्णिमा जो थी। खा कर सो गये। कोई ग्यारह बजे मेरी नींद खुली। यादवेन्द्र भी उठ बैठा। हम दोनों हनुमान चौरे की ओर भागे।

चाँद सोलहों कलाओं से चमक रहा था। चाँदनी कई बार देखी थी लेकिन आज पहली बार लगा कि चाँदनी में आपाद-मस्तक डूब गया हूँ। चाँदनी मेरे अंतरतम में प्रवेश कर रही है। मुझे लगा, रात भर यह ऐसी ही बरसती रही, तो सबेरे जमीन पर इसकी चादर बिछी मिलेगी।

इधर भजन शुरू हो गये थे। बड़ी मस्ती से गा रहे थे। कोई मृदंग बजा रहा था, कोई झाँझ-मजीरा, कोई पखावज। गा तो सभी रहे थे। यहाँ कोई निरा श्रोता नहीं था। उनकी मस्ती मुझे भी छू गयी। मेरा हाथ भी उनके लय और ताल के साथ चलने लगा। मैं उनके स्केच उतारने लगा। चाँदनी ऐसी जमकर थी कि एक-एक रेखा साफ दिखाई देती थी।

रात को एक बजे लौटे। सुबह नर्मदा गये तो देखा, चाँद अभी डूबा नहीं है। मेरा ध्यान उसके धब्बों की ओर गया। मैं उन्हें गौर से देखने लगा। मुझे वे बड़े भले लगे। मानो चाँद के कैनवास पर किसी ने चित्र बनाये हों। चाँद अगर सपाट होता, तो इतना मोहक न लगता। नहीं, ये उसके कलंक नहीं, उसके गुदने हैं।

मैं नदी किनारे स्केच कर रहा था। इतने में एक कृशकाय स्त्री नहाने आयी। नहाकर उसने पहनने के लिए साड़ी निकाली। वह उसे एक छोर से दूसरे छोर तक दो बार देख गयी, लेकिन साड़ी इतनी तार-तार हो चुकी थी कि उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि उसे कहाँ से पहने। किसी तरह उसने अपनी लज्जा ढाँकी और चली गयी।

यह था कलंक। मेरा सिर लज्जा से झुक गया। मुझसे और स्केच नहीं किये गये।

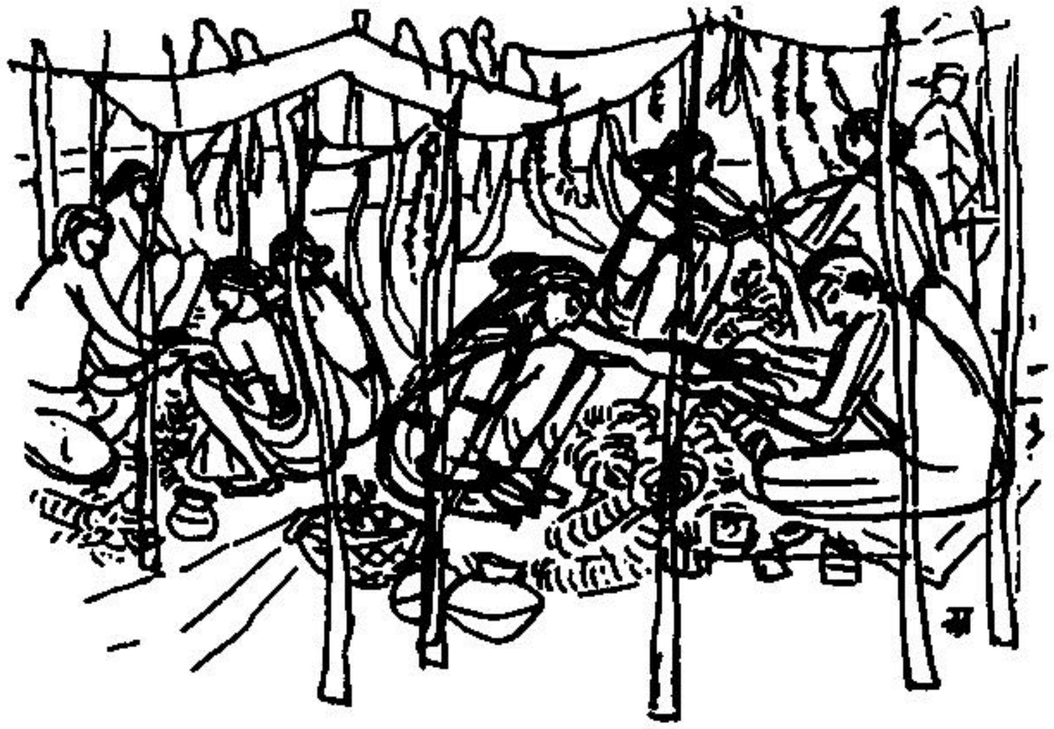

भोर वेला में नर्मदा का पानी सिंदूरी हो गया है। जहाँ धूप नहीं पड़ रही है, वहाँ कहीं नीला, कहीं बैंगनी तो कहीं हरा है। दूर भूरा है।

अजीब है यह पानी। इसका अपना कोई रंग नहीं, पर इन्द्रधनुष के समस्त रंगों को धारण कर सकता है। इसका अपना कोई आकार नहीं, पर असंख्य आकार ग्रहण कर सकता है। इसकी कोई आवाज नहीं, पर वाचाल हो उठता है तो इसका भयंकर वज्र-निनाद दूर-दूर तक गूँज उठता है। गतिहीन है, पर गतिमान होने पर तीव्र वेग धारण करता है और उन्मत्त शक्ति और अपार ऊर्जा का स्रोत बन जाता है। उसके शांत रूप को देखकर हम ध्यानावस्थित हो जाते हैं, तो उग्र रूप को देखकर भयाक्रांत। जीवनदायिनी वर्षा के रूप में वरदान बन कर आता है, तो विनाशकारी बाढ़ का रूप धारण कर जल-तांडव भी रचता है। अजीब है यह पानी!

मीठे पानी का श्रेष्ठ और सुदीर्घ स्रोत है नदी। हजारों वर्षों से मनुष्य उसकी ओर खिंचता चला आया है। केवल इसलिए नहीं कि वह हमारी और हमारे खेतों की प्यास बुझाती है, बल्कि इसलिए भी कि वह हमारी आत्मा को भी तृप्त करती है। उसके तट पर हमारी आत्मा पल्लवित-पुष्पित होती है—संस्कृति का जन्म होता है। संसार की सभी प्रमुख संस्कृतियों का जन्म नदियों की कोख से हुआ है।

भारतीय संस्कृति गंगा की देन है। पर एक बात है—श्रेष्ठ गंगा है, लेकिन ज्येष्ठ नर्मदा है। जब गंगा नहीं थी, नर्मदा तब भी थी। आज जहाँ हिमालय है, गंगा-यमुना का मैदान है, सुदूर अतीत में वहाँ उथला समुद्र था। किसी भूकंप ने उस समुद्र को हिमालय और गंगा-यमुना के मैदान में बदल डाला, हालाँकि इसमें करोड़ों वर्ष लगे। गंगा से नर्मदा पुरानी नदी है और हिमालय से विन्ध्याचल-सतपुड़ा पुराने पहाड़ हैं।

छेवलिया से चले तो नर्मदा-जल के एकदम पास वाली पगडंडी पकड़ी। खड़ा किनारा और गहरा पानी। तीन घंटे में पाँच किलोमीटर ही चल पाये। सोचा, इस कछुआ-चाल से तो बीच बियाबान में ही रात हो जायेगी। इसलिए ऊपर की पगडंडी पर आ गये।

अब हम पूरे वनवासी हो चले थे। सात दिन से न तो सड़क देखी थी, न साइकिल, न बिजली। अधिकांश गाँवों में एक भी दुकान नहीं थी। आधुनिक सभ्यता का स्पर्श इस इलाके में नहीं के बराबर हो पाया था।

शाम होने के पहले ही सहजपुरी पहुँच गये। कटारे जी इस गाँव के प्रमुख व्यक्ति हैं। नर्मदा-परिक्रमा कर चुके हैं। उन्होंने हमारा स्वागत किया। हमें देने के लिए उनका बेटा आटा और चावल ले आया।

हमारा आटा बिलकुल खत्म हो चुका था। यदि यहाँ से न मिलता, तो सिर्फ चावल खाकर सोना पड़ता। भिक्षा कभी ली नहीं थी। न हाँ कहते बनता था, न ना। मैंने पांडेजी से पूछा, 'क्यों भाई, क्या हमें आटा-चावल की जरूरत है?'

पांडेजी ने दबी जुबान में कहा, 'जरूरत तो नहीं है, पर दे रहे हैं, तो लिये लेते हैं।'

यादवेन्द्र ने पोटली बाँधने में देर नहीं की।

भिक्षा लेकर हम नर्मदा-तट की ओर बढ़े। वहाँ एक संन्यासी की कुटी थी। रात्रि-विश्राम वहीं था। कुटी से सट कर बहता झरना, सुन्दर बगिया और सागौन के ऊँचे, घने पेड़—आश्रम-सा शांत और पवित्र वातावरण। मन तृप्त हो गया।

रात को धूनी के पास सोये। नदी का तट, सघन वन और खुला आवास- ठंड का क्या कहना!

जब धूप चढ़ी तो उठे। सागौन के बड़े-बड़े पत्तों पर ओस की बूँदों के गिरने की टप-टप आवाज मृदंग पर पड़ती थाप जैसी लग रही थी। स्नानादि से निवृत्त होकर आये तो संन्यासी से बात करने का मौका मिला। बच्चे-सा मुस्कराता चेहरा। भोजन बनाने लगे तो मना करने पर भी चावल

दिये। दोपहर को चले तो काफी दूर तक पहुँचाने आये। सहजपुरी के उस संन्यासी को सहज में भुला नहीं सकेंगे।

टाटीघाट से घना जंगल शुरू हो गया। पगडंडी पर इक्का-दुक्का आदमी ही मिलता। मैंने कहा, 'यार पांडे, इस बियाबान में तुम अकेले जा रहे हो और कहीं शेर आ जाये, तो तुम क्या करोगे?'

पांडे जी ने कहा, 'मैं तो कुछ करने से रहा। जो कुछ करना है, वह शेर ही करेगा!'

शाम को पाठा पहुँचे। पाठा में पाठशाला थी, वहीं रहे। बहुत दिनों के बाद पक्के मकान में रहने को मिला। पहली बार डाकघर मिला। वह शाला के प्रधान अध्यापक के घर में था। हम लोगों ने चिट्ठियाँ लिखीं। सुबह उठ कर नर्मदा-तट गये। यहाँ एक झरना नर्मदा में आ मिला है, उसके मनभावन प्रपात में स्नान किया। उस दिन वहाँ साप्ताहिक बाजार था। मैंने देखा, गरीब से गरीब ग्रामीण नारी भी चूड़ियाँ खरीदे बिना नहीं रहती। सुहाग और शृंगार का काँच की चूड़ियों से बढ़कर सस्ता व सुंदर आभूषण और है भी क्या!

दूसरे दिन घना कोहरा था। सूरज लापता था। निकला भी तो चाँद जैसा दूधिया। उधर पश्चिम में चाँद कुछ ताँबिया दिखाई दे रहा था। नये आदमी के लिए पहचानना मुश्किल था कि कौन चाँद और कौन सूरज। मुझे काँगड़ा शैली के वे चित्र याद हो आये, जिनमें कृष्ण ने राधा के कपड़े पहने हैं और राधा ने कृष्ण के। आज चाँद और सूरज ने आपस में वस्त्र बदल लिये थे।

तीसरे दिन सुबह निकल पड़े। खेतों से धान के विशाल गट्ठर उठाये स्त्रियाँ आ रही थीं। गाँव की स्त्रियों को सिर पर भारी घड़े उठाये नर्मदा की खड़ी कगारों पर चढ़ते रोज देखता था। सुबह चार बजे चक्की और मूसल चलाते भी देख चुका था। सोचता था, इन्हें कौन-से विटामिन-प्रोटीन मिलते हैं। मेरे मन ने कहा, पौष्टिक आहार जरूरी है, पर जो भी मिले, उसे पूरी तरह से वसूल कर लेना और भी जरूरी है। बाढ़ का पानी व्यर्थ बह जाता है, नहर के पानी की हर बूँद खेत में जाती है।

दोपहर को बालई नदी पड़ी। हम उसके सुंदर प्रपातों को काफी देर तक देखते रहे। इस बीच पांडे जी और सूर्यकान्त कब आगे बढ़ गये, कुछ ध्यान न रहा।

बालई पार कर मैं यादवेन्द्र के साथ आगे बढ़ा। सघन वन और निर्जन पथ। पांडे जी और सूर्यकान्त कहीं भटक गये तो? बड़ी घबराहट हुई। यादवेन्द्र ने रास्ते में निशान बनाना शुरू कर दिया। आगे जा कर एक ऊँचे टीले पर

बैठ कर हम उनकी बाट जोहने लगे। कोई घंटे भर बाद दोनों को सही-सलामत आते देख कर हम लोगों की खुशी का ठिकाना न रहा। वे निशान बड़े उपयोगी सिद्ध हुए।

आगे चलने पर एक गाँव दिखने लगा। वह पद्मी था। रात का पड़ाव वहीं था।

दस दिन के बाद पक्की सड़क देखी। तार और बिजली के खंभे देखे। यहाँ से पगडंडी नहीं है, सड़क ही नर्मदा के किनारे-किनारे चलती है। ऊँची-नीची, टेढ़ी-मेढ़ी, ऊबड़-खाबड़ पगडंडी अब नहीं रही। उसका स्थान ले लिया है पक्की सड़क ने। पगडंडी पर चलने का कौतुक नहीं रहा। उसकी जगह ले ली है सुविधा ने।

चिरईडोंगरी पहुँचे तो अंधेरा हो चुका था। एक होटल के सामने सामान रखकर बैठे। होटल का चूल्हा खाली था। यादवेन्द्र ने उसी में खाना बनाया। बाद में शाला का भवन मिल गया।

सुबह यादवेन्द्र ने नोटिस दिया, 'राशन खत्म होने को है।'

पैसे सूर्यकान्त के पास रहते थे। उसने कहा, 'पैसे भी खत्म होने को हैं। अधिक से अधिक दो दिन का राशन खरीद सकेंगे।'

रसद नहीं रहेगी तो फौज आगे कैसे बढ़ेगी। अभी तक दोनों बार दूध पीते थे। बीच-बीच में खीर बन जाया करती थी। खोवा भी आ जाता था। आज से यह सब बंद। फिर भी समस्या का यह कोई हल नहीं हुआ। चिंता बनी रही।

सुबह नर्मदा में नहाते समय पांडेजी कहने लगे, 'आज नर्मदा मैया कुछ ऐसा चमत्कार दिखाये कि सौ रुपये का नोट बहता हुआ चला आये।' आर्थिक चिंता सभी को सता रही थी। कहीं सचमुच भिक्षापात्र लेने की नौबत न आ जाये।

चरैवेति! दोपहर के भोजन के बाद पीठ पर बोझा लादे सड़क पर आये ही थे कि एक बस आकर रुकी और उसमें से उतरे मेरे बहनोई हरिभाई! हमारी यात्रा में वे शुरू से ही दिलचस्पी ले रहे थे। उन्हें देखकर बड़ी खुशी हुई। उन्होंने हम लोगों का हालचाल पूछा। मैंने धीरे से कहा, 'पैसे कम पड़ गये हैं, कुछ पैसे चाहिए।'

उन्होंने तुरंत रुपये दिये— पूरे सौ रुपये!

पांडेजी उछल पड़े। कहने लगे, 'देखिए, नर्मदा जी ने हमारी गुहार सुन ली।' चिंता दूर हो गयी।

रास्ते में गरम पानी का कुंड पड़ा। उसमें स्नान किया और आगे बढ़े। रात एक किसान के खेत में बितायी। रात भर नर्मदा का निनाद सुनाई देता रहा। दिन के शोर-शराबे में यह ध्वनि डूब जाती है, रात की नीरवता में

लहराती है। जब कोलाहल नहीं रहता, कलरव तभी सुनाई देता है।

यहाँ से फिर पगडंडी मिल गयी। नर्मदा-तट का फिर साथ हो गया। सहस्रधारा अब अधिक दूर नहीं। वहाँ के मंदिर तो दिखाई भी देने लगे थे। हमारी चाल तेज हो गयी। मानो किसी अदृश्य डोर से खिंचे चले जा रहे थे।

अब हम सहस्रधारा के बिलकुल सामने आ गये हैं।

सामने हैं प्रपातों के गुच्छे के गुच्छे। दूध जैसा सफेद पानी पारिजात के पुष्पों की याद दिलाता है। नदी की डाली पर लगे ये प्रपात नदी के पुष्प ही तो हैं।

सहस्रधारा क्या है, पुष्पवाटिका है। सफेद फूलों की प्यारी सी बगिया। हम ठगे से देखते रहे। आँखें अघाती नहीं, कान थकते नहीं, मन भरता नहीं।

सहस्रधारा की काजल-सी काली चट्टानें इतनी सख्त हैं कि लाखों वर्षों में पानी थोड़ा-सा ही तराश पाया है। नर्मदा यहाँ मूर्तिकार बन गयी है। चट्टानों में तरह-तरह की आकृतियाँ उकेरी हैं। अमूर्त शिल्पों की विशाल कला-वीथी है यहाँ। यह कला लाखों वर्ष पुरानी है, फिर भी इसे 'गैलरी ऑफ मॉडर्न आर्ट' नाम बड़े मजे से दिया जा सकता है।

चलना जरूरी था। मंडला अब भी कोई छह किलोमीटर दूर था। मंडला में पांडेजी के रिश्तेदार रहते हैं— पाठकजी। उन्हीं के यहाँ गये। बहुत खुश हुए। कहने लगे, 'अब कहीं नहीं जाना है, यहीं रहेंगे।' नौकर से कहा, 'बढ़िया भोजन बनाओ रे, ये जंगल से मोटा-झोटा खा कर आ रहे हैं।'

उस दिन हम लोगों ने क्या खाया है!

दूसरे दिन सुबह रंगरेजघाट गये। वहाँ हमने अपनी खंड-यात्रा विधिवत समाप्त की।

पाठक जी किसी तरह आने नहीं दे रहे थे। लेकिन तीसरे दिन बस पकड़ ही ली।

नर्मदा का ऐश्वर्य देखते-देखते 'आठहूँ पहर मस्ताना माता रहै, आठहूँ पहर की छाक पीवे' की स्थिति हो गयी थी। मन में सुखद स्मृतियों का अंबार लग गया था। घने कोहरे में लिपटी बरहइयाखेड़ा की रहस्यमयी नर्मदा, शरद पूर्णिमा की भजन-मंडली, सहजपुरी का संन्यासी, टाटीघाट का आरण्यक तट, पाठा के बाजार में चूड़ियाँ पहनती स्त्रियाँ, सागौन वृक्षों का एकांत निस्तब्ध वन, सहस्रधारा की अजस्र धाराएँ, मंडला के घाट। यात्रा थी तो केवल पंदरह दिनों की, लेकिन इन पंदरह दिनों में हम मालामाल हो गये थे।

नर्मदा अपने रूप-रंग-रस से अभी भी झिलमिला रही थी।

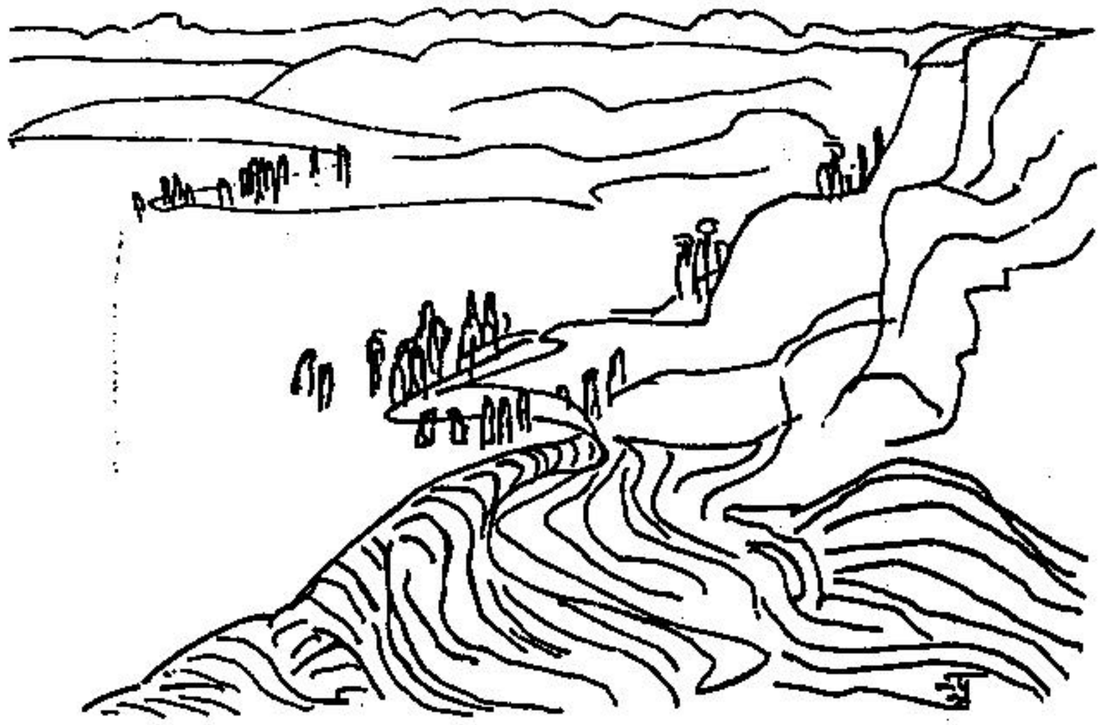

3. मंडला से छिनगाँव

हमारे मंदिरों की तरह हमारी नदियाँ भी पूर्वाभिमुख हैं। बड़ी नदियों में एक नर्मदा ही है जो पश्चिम वाहिनी है। अमरकंटक से निकलकर, कर्क रेखा के प्रायः साथ-साथ, पश्चिम की ओर चल देती है। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती है, मानो पानी के भार से नीचे की ओर झुकती है। फिर भी, मोटे तौर पर, वह सीधे पश्चिम की ओर बहती है।

किन्तु इसमें एक अपवाद है। अमरकंटक से चलने के बाद डिंडौरी से सीधे जबलपुर आने के बजाय वह दक्षिण की ओर एक बड़ा लपेटा लगाती है। इसी अर्द्ध-चंद्राकार के मध्य में है मंडला। मंडला मानो नर्मदा के कान-कुंडल में बसा है। नर्मदा यदि ऐसा ही लपेटा मालवा में लगाती तो इंदौर और गुजरात में लगाती तो बड़ौदा, नर्मदा किनारे होते। इंदौर और बड़ौदा जिस सौगात से वंचित रह गये, मंडला उसे सहज ही पा गया।

हमारी पिछली यात्रा जबलपुर से मंडला तक की थी। इस बार मंडला से अमरकंटक तक की है। पिछली बार हम चार थे, अब दो हैं— यादवेन्द्र और मैं। यात्रा पहले से दोगुनी लंबी है और साथी आधे ही रह गये हैं।

10 अक्टूबर, 78, भोर बेला मंडला से निकल पड़े। रात एक गाँव में बितायी। दूसरे दिन दोपहर को कछारी पहुँचे। नर्मदा की ऊँची कगार पर कृषक पति-पत्नी बैठे थे। हम उनकी ओर बढ़े तो स्त्री ने हाँक लगायी, 'जूते उतार कर चलो महाराज!'

हमने चप्पलें उतार लीं। उनके पास जाकर बैठे। हमारी यात्रा के बारे में जान कर खुश हुए। दोनों ने कहा, 'आज यहीं रुक जाइए।' मैंने कहा, 'दीवाली तक अमरकंटक पहुँचना है। जितना आगे बढ़ जायें, उतना ही अच्छा।' पति ने कहा, 'तब आप बकछेरा में रुकिए। वहाँ मेरा साढ़ू भाई रहता है। नाम है मनसुख। उसी के यहाँ ठहरिए। आज दशहरा है। दशहरे का जुलूस देखने मेरी स्त्री मंडला जा रही है, उसी के साथ जाइए। आधी दूर तक आप दोनों का रास्ता एक है, आगे का रास्ता वह बता देगी।'

घरोबा हो गया तो मैंने स्त्री से पूछा, 'आपने हमें जूते उतारने के लिए क्यों कहा था?'

'वहाँ हमारा खलिहान है। खेत-खलिहान लक्ष्मी होते हैं। वहाँ जूते पहन कर नहीं चलते।'

सुन कर अच्छा लगा। वह बात भी करती जा रही थी और सजती भी जा रही थी। पहले पायल पहनी। बड़ी देर तक माँग निकाली। बड़े मनोयोग से सिंदूर का टीका लगाया। फिर निकाला पाउडर। इस सुनसान में पाउडर का डिब्बा देख कर मैं हैरान रह गया। भभूत की तरह पोता। पहले उसकी त्वचा के ताने-बाने भले लग रहे थे, अब पाउडर की मोटी पर्त में खो गये। सौंदर्य की उपासना हमें कई बार असुंदर की देहरी पर ला देती है।

बकछेरा में मनसुख को उसके साढ़ू भाई का राम-राम कहा, तो वह चकित रह गया। सारी बात बतायी तो उसने खुशी से अपने यहाँ ठहरा लिया। रात को सोये तो सिरहाने के पास मुर्गियों का डेरा था। सोचा, सबेरे उठने में सुविधा रहेगी। ऐसी प्राणवान अलार्म घड़ी और कहाँ पाऊँगा?

यहाँ से मोहगाँव। यहाँ सामने से बुढ़नेर नर्मदा में आ मिली है। किनारे पर एक बाबा थे। मैंने उनसे पूछा, 'जब यहाँ इतनी ठंड पड़ रही है, तो अमरकंटक में पता नहीं कितनी ठंड होगी!'

उन्होंने कहा, 'अमरकंटक तो बद्रीनाथ का टुकड़ा है!'

नर्मदा के किनारे-किनारे आगे बढ़े। कई जगह तो खाँड़े की धार पर चलने जैसा था। कहीं घनी लतर-पतर। समझ में नहीं आता था कि किस लतर को पकड़ें और कहाँ से! जैसे-तैसे मानोट पहुँचे। वहाँ से लिंगा। रात्रि-विश्राम भगतजी के घर रहा।

सुबह जमीन पर बिछे टेढ़े-मेढ़े धुआँरे फीते को देखकर मैं समझ गया कि यह धुआँ नहीं, भाप है और जहाँ-जहाँ यह भाप है, नीचे नर्मदा है। सुबह के धुँधलके में भाप की चादर ओढ़े सोयी नर्मदा बड़ी मोहक लग रही थी। लिंगाघाट में पश्चिम-वाहिनी नर्मदा थोड़ी देर के लिए पूर्व-वाहिनी हो गयी है। इसलिए इसकी धारा को यहाँ सूरजमुखी धारा कहते हैं। नर्मदा में ऐसे स्थान बहुत कम हैं।

लिंगा से एक संयासी का साथ हो गया। एक चादर और मिट्टी के एक पात्र के अलावा और कुछ नहीं रखते थे। रास्ते में बातें होने लगीं तो कहने लगे, 'अच्छा, यह बताइए, स्वाद किस में है, जीभ में या गुलाबजामुन में?'

मेरे अनुरोध पर जवाब भी उन्होंने ही दिया, 'यदि गुलाबजामुन में स्वाद है, तो वह तश्तरी में रखे-रखे ही स्वाद देगा और यदि जीभ में स्वाद है, तो फिर गुलाबजामुन खाने की क्या जरूरत? दर असल स्वाद न केवल जीभ में है और न केवल गुलाबजामुन में। दोनों के योग में है। इसी प्रकार जीवन को केवल आत्मा या केवल शरीर मानना गलत है। सार्थकता दोनों के मिलन में है।'

क्या बढ़िया बात कही!

आगे बढ़े तो कई स्त्री-पुरुष मिले। पूछा, 'कहाँ जा रहे हो?'

'नर्सरी। पौधे लगाने।'

तो नर्सरी जैसा अंग्रेजी शब्द इस बियाबान तक पहुँच गया था! विदेशी भाषा के जो शब्द हमारी जबान पर आसानी से चढ़ जायें, उन्हें हमें खुशी से अपना लेना चाहिए। हर भाषा में कुछ शब्द अश्वमेध यज्ञ के घोड़े की तरह होते हैं। सीमाओं को वे नहीं मानते, उन्हें रोकना आसान नहीं। महात्मा, सत्याग्रह, योग आदि हमारे शब्द भी विदेशों में धड़ल्ले से चल रहे हैं।

आगे का गाँव कौआडोंगरी। मोर से मयूरभंज तो सुना था, कौए के नाम से कौआडोंगरी आज सुना।

दुपटासंगम में दो किशोरियाँ स्नान कर रही थीं। बिलकुल वनदेवियाँ लग रही थीं। आगे संगम के निकट ऊँची कगार पर उनके माता-पिता बैठे थे। मैंने पुरुष से पूछा, 'आगे कौन-कौन से गाँव पड़ेंगे?'

उसने सोचते हुए कहा, 'चिमकाटोला, पिपरियाटोला, चकदही....'

उसकी बात को काटते हुए उसकी स्त्री ने कहा, 'कुछ पता भी है कि बोले जा रहे हो? चकदही पहले आयेगा, पिपरियाटोला बाद में।'

उसने कहा, 'मैं का जानूँ महाराज! पिपरियाटोला के बाद चिमकाटोला....'

फिर उसकी पत्नी ने टोका, 'क्या बोल रहे हो, चिमकाटोला पहले पड़ेगा।'

भोले पति ने फिर कहा, 'मैं का जानूँ महाराज!'

इतने में दोनों किशोरियाँ आ गयीं। एक का नाम तो भूल गया, दूसरी का आज भी याद है— सुकरती। सुकरती यानी सुकीर्ति। कैसा यशस्वी नाम! लेकिन अधिक सुनाई नहीं पड़ता। कुछ नाम सरस और मधुर होते हुए भी चल नहीं पाते। रेवा कितना प्यारा नाम है। बोलने में आसान, सुनने में मधुर। लेकिन चला नहीं, नर्मदा नाम ही ज्यादा प्रचलित हुआ।

रोज सुबह उधर सूरज निकलता, इधर हम निकलते। रास्ते में एक संन्यासी की कुटी पड़ी। वहाँ बैठे। वे नर्मदा परिक्रमा कर चुके थे। कहने लगे, 'परिक्रमा में तीन साल, तीन महीने, तेरह दिन लगे थे। उन दिनों मैं अन्न नहीं लेता था। कंद-मूल, फल-फूल या दूध-दही। यह भी माँगता नहीं था। अनायास मिल जाता, तो ही लेता।'

'यदि न मिला तो?'

'तो माँ का दूध।'

इस आदमी की श्रद्धा देखकर मैं चकित रह गया। इसके लिए नर्मदा का पानी, पानी नहीं माँ का दूध है।

नर्मदा की खड़ी चट्टानी कगार में पगडंडी धागे की तरह पतली हो गयी थी। हम रस्से पर चलने वाले नट की तरह नपे-तुले कदम रखते हुए आगे बढ़ रहे थे। रास्ते में बरतन के दो फेरीवालों का साथ हो गया। टूटे-फूटे बरतन लेते थे, बदले में गुड़ देते थे। पिपरियाटोला आते ही उन्होंने हाँक लगायी, 'टूटे-फूटे बरतन गुड़ के बल्दी गो!'

एक बैगा के घर हम खाना बनाने के लिए रुके। शुरू में तो उसके परिवार के लोग हमसे सहमे-सहमे रहे, किन्तु ज्यों ही यादवेन्द्र ने स्टोव चालू किया, तो पहले बच्चे आये, फिर स्त्रियाँ भी आ गयीं। ऐसा चूल्हा तो उन्होंने पहले कभी देखा नहीं था। दर्शकों के विस्मय से उत्साहित होकर यादवेन्द्र भी अपने पैंतरे दिखाने लगा। कभी आँच को धीमी करता कभी तेज, कभी पिन से लौ ठीक करता तो कभी पंप से तेजी से हवा भरता। उसके हर करतब पर भीड़ चकित रह जाती। मदारी जिस तरह बंदर को नचाता है, उसी तरह स्टोव को नचाकर यादवेन्द्र ने उस बैगा परिवार का पर्याप्त मनोरंजन किया।

शाम को खापा पहुँचे। फेरीवाले आगे निकल गये। संन्यासी पीछे रह गये थे। हम आश्रय की तलाश में थे कि एक लुहार ने हमें अपने यहाँ ठहरा लिया। मैंने भी सोचा, इस ठंड में लुहार के घर से बढ़कर रैनबसेरा भला और क्या हो सकता है? भट्टी के पास ही सोये। रात को जो भी उठता, कोयले डाल कर धौंकनी चला देता।

सुबह आगे बढ़े। रास्ते में मैं एक जगह सुस्ताने बैठा। बैठते ही उछला। एक लाल चींटे ने डंक मारा था। गलती मेरी थी। मुझे ही देखकर बैठना था। सोचा, अब जब भी बैठूँगा, नीचे देखकर बैठूँगा।

जब दो पगडंडियाँ आतीं, तो हम असमंजस में पड़ जाते। सुनसान इलाके में किससे पूछते। डोकरघाट के निकट सामने जो पगडंडी थी, वह अस्पष्ट थी। पहाड़ पर जो जा रही थी, वह साफ थी। हम उसी पर चले। पहाड़ पर चढ़ते चले गये, पर कहीं कुछ भी नहीं दिखा तो संदेह हुआ कि कहीं भटक तो नहीं गये। यादवेन्द्र ने कहा, 'आप यहाँ पेड़ के नीचे बैठिए, मैं आगे जाकर पता लगाता हूँ।'

बैठने के पहले नीचे अच्छी तरह देख लिया। चींटा तो क्या, चींटी तक न थी। स्केच करने में मगन हो गया। पर कोई दस-पंदरह मिनट के बाद गंभीर स्वर सुनाई पड़ा। सोचा, दूर बहती नर्मदा का स्वर होगा। लेकिन स्वर तेज होता गया तो मेरा ध्यान गया। सामने तो कुछ नहीं था, पर ज्यों ही ऊपर देखा तो मेरे छक्के छूट गये। मेरे सिर पर मधुमक्खियों का झुंड मँडरा रहा था!

मैं सिर पर पैर रखकर भागा। थोड़ी देर और हुई होती, तो वीरगति को प्राप्त न भी होता, तो भी दुर्गति अवश्य होती। जिस पेड़ के नीचे बैठा था, उसमें मधुमक्खी का खासा बड़ा छत्ता लगा था। गाँठ बाँध ली कि अब बैठने के पहले नीचे भी देखूँगा और ऊपर भी देखूँगा!

वह पगडंडी जंगल को जाती थी, इसलिए वापस नीचे उतरे। कुछ दूर झोपड़ियाँ दिखाई दे रही थीं। वहाँ से पगडंडी मिल गयी। सिलगी नदी को पार करके आगे बढ़े। वहाँ नर्मदा-तट के भीमकाय अर्जुन वृक्षों को देखकर चकित रह गये। आगे एक बाबाजी की कुटी पड़ी। वहाँ से संन्यासी का फिर साथ हो गया। कुटरई में पटेल के घर रहने की व्यवस्था हो गयी। बैठे ही थे कि आवाज सुनाई दी, 'टूटू-फूटे बरतन गुड़ के बल्दी गो!' फेरीवाले भी आ पहुँचे।

आज शरद-पूर्णिमा थी— चंद्र के राज्याभिषेक की रात। लेकिन इस वीरान इलाके के टुइयाँ-से गाँव में किसी ने इसका उत्सव नहीं मनाया। न भजन-मंडली, न गीत-संगीत। मैं अकेला ही चाँदनी में नहाता रहा। देर तक चाँद को निहारता रहा। मुझे वह दुर्गा-प्रतिमा की तरह जान पड़ा। विधाता इसे आहिस्ता-आहिस्ता करके चौदह दिनों में गढ़ता है, पन्द्रहवें दिन इसमें प्राण-प्रतिष्ठा करता है, फिर अमावस्या को इसे नील गगन में सिरा देता है। सर्जन-विसर्जन का यह क्रम निरंतर चलता रहता है।

पौ फटते ही चल पड़े। शाम होते जैतपुरी पहुँचे— डूबते सूरज की मायावी किरणों से आलोकित छोटा-सा गाँव। गाँव के पटेल ने सोने के लिए एक कमरा दिया। लेकिन संन्यासी पैरा बिछाकर बाहर सोये। हमें घर के अंदर कंबल में ठंड लग रही थी, वे बाहर खुले में एक चादर में मजे से सो रहे थे।

यहाँ से फेरी वाले वापस चले गये। संन्यासी आगे निकल गये। कन्हैयासंगम में हम गोसाईजी के घर रुके।

नर्मदा के किनारे-किनारे चलने के आग्रह के कारण दूसरे दिन शाम को हम एक ऐसे गाँव जा पहुँचे, जहाँ कोई भूला-भटका ही जाता है। गाँव का नाम था छिनगाँव। गिनती के घर। थककर इतने चूर हो गये थे कि आगे जाने की हिम्मत नहीं थी और इस गाँव में आश्रय देने के लिए कोई तैयार न था। पता नहीं कैसे, यहाँ के लोग हमें चोर समझ बैठे थे। मैंने बहुत चिरौरी की, लेकिन किसी ने भी हमें आश्रय नहीं दिया।

आखिर एक गरीब दंपती से अनुमति लेकर उनके आँगन में सामान रखा। थोड़ी देर में रात हो गयी। घुप्प अँधेरा, अनजान जगह। इतने में दो आदमी आये। उनके मुँह से शराब की बास आ रही थी। आते ही हम से जवाब-तलब करने लगे— कौन हो, कहाँ से आये हो, क्यों आये हो। हमने समझाने की लाख कोशिश की, लेकिन व्यर्थ। जिसके आँगन में पड़े थे, उसे भी आड़े हाथों लिया। 'ये कौन हैं तुम्हारे, क्यों अपने यहाँ जगह दी, रात को अगर कोई वारदात हुई, तो इसका जिम्मेदार कौन होगा?'

हमारा पक्ष लेते हुए घर की स्त्री ने कहा, 'कोई आ ही जाये, तो क्या हम उसे भगा दें? फिर ये चोर नहीं हो सकते। चोर इतना बोझ लेकर नहीं चलते। चोर दिन को आकर टोह ले जाते हैं, फिर रात को चोरी करने आते हैं। ये बेचारे तो शाम को आये हैं, और जब से आये हैं, कहीं नहीं गये।'

लेकिन जो नशे में हो, उसे कोई क्या समझाये। धीरे-धीरे और भी लोग आ गये। उन शराबियों ने ऐसा माहौल बना दिया कि सभी को यह विश्वास हो गया कि हमारे गाँव में दो शातिर चोर आ गये हैं और आज रात सावधान नहीं रहे तो किसी के भी घर चोरी हो सकती है। हमारे ऊपर पहरा देने कुछ लोग वहीं जम गये।

ऐसे संदेह और भय के वातावरण में, अनजान जगह में ठंड में बाहर खुले में सोने का जीवन में यह पहला मौका था। चुप साधकर लेटे रहने के सिवा और कोई चारा न था। जागते हुए भी हम सोते बन गये। मन में यह आशंका बराबर बनी रही कि पता नहीं, कब क्या हो जाये।

चाँद निकला तो कुछ हिम्मत बँधी। कोई दो घंटे बीत गये। नींद तो क्या आती, किसी तरह पड़े थे। तभी हवा में थिरकती हुई मधुर स्वर-लहरी सुनाई दी— अद्भुत थी उसकी मिठास, दिव्य था उसका प्रभाव। ऐसे मीठे गीत तो सुने नहीं थे। कितने स्वाभाविक, कितने सहज, कितने कोमल! एक पल में मैं अपने सारे दुःख-दर्द भूल गया। अवहेलना, अपमान, ठिठुरन, हर चीज गायब हो गयी। बस, रह गये वे गीत और उनकी मिठास।

पड़ोस के आँगन में गाँव की किशोरियों ने अपने मीठे कच्चे स्वरों में रीना गीत शुरू किये थे— चोरों के भय से उन्हें सारी रात जागरण जो करना था! हल्की लयबद्ध तालियों के साथ गीत की एक पंक्ति एक टोली गाती, दूसरी पंक्ति दूसरी टोली गाती। बीच-बीच में हँसी-ठिठोली और हास-परिहास। कितना मधुर, कितना स्वप्निल लग रहा था यह सब!

अभिशाप को इस तरह वरदान में बदलते कभी नहीं देखा था। सुनते-सुनते कब नींद आ गयी, कुछ पता भी न चला।

4. छिनगाँव से अमरकंटक

सुबह उठे तो बिस्तर ओस से भीग गया था। आश्चर्य इस बात का हो रहा था कि ऐसी ठंड में भी नींद क्यों कर आयी। मन में वीना गीत के कोमल, मृदुल स्वर गूँज रहे थे। उस रात किसी के यहाँ भी चोरी होती, तो पकड़े हम ही जाते। लेकिन कहीं से कोई शिकायत नहीं आयी, तो फिर छिनगाँव में छिन भर के लिए भी रुके नहीं।

बरछा में एक पेड़ से डाकघर के डिब्बे को लटकते देखा, तो उसमें चिट्ठी छोड़ी। वह मिल तो गयी, लेकिन बुझे तारे के प्रकाश की तरह घर पहुँचने में उसने बहुत समय लिया। मेरे घर लौटने के बाद पहुँची।

बरछा से जो पहाड़ लाँघा, तो सामने नर्मदा। थोड़ा चलने पर जोगीटिकरिया पहुँचे। दूसरे दिन लुकामपुर। यहाँ इतनी साफ-सुथरी कुटी मिली कि दो दिन रहगये। नदी से पानी लाने के लिए बालटी की जरूरत पड़ी। पड़ोस में माँगने गया तो घर की स्त्री ने पूछा, "आप कै मूर्ति हैं, महाराज?"

तो अब हम मूर्ति हैं!

मैं समझ गया। मैंने कहा, 'हमें सीचा नहीं, बालटी चाहिए।' बालटी मिल गयी। पानी लेकर कुटी में आया। थोड़ी ही देर में एक ग्रामीण आकर कहने लगा, 'पहले इसमें एक पगली रहती थी। कुछ दिनों से कहीं चली गयी है। दरवाजा खुला देखा तो सोचा, कहीं वापस तो नहीं आ गयी।'

पहले तो पगली शब्द सुनकर चौंका। लेकिन बाद में सोचा कि पागलपन का कुछ छौंक हमारे अंदर भी जरूर होगा, नहीं तो घर की सुख-निंदिया छोड़कर पहाड़-जंगल की खाक क्यों छानते फिरते!

रात को नर्मदा की मर्मर ध्वनि बराबर सुनाई देती। प्रायः हर रात कल-कल बहती नर्मदा का रव सुनाई देता। दिन में वह भले ही नर्मदा हो, रात में रेवा है। दिन में वह दृश्य है तो रात में श्राव्य।

उस पार है डिंडौरी, बड़ा-सा कस्बा। आज रविवार है, यहाँ के साप्ताहिक बाजार का दिन। अनेक ग्रामीण नर्मदा को पार कर वहाँ बाजार करने आयेंगे। शाम को लौटेंगे। उनका यह पैदल नदी पार करना मुझे बड़ा भला लगता है। इसे आज जी भरकर देखूँगा।

सुबह से ही बैठ गया। शुरू-शुरू में तो छिटपुट लोग आते रहे, लेकिन दोपहर से तो ताँता लग गया। सबसे पहले वे माँ नर्मदा को प्रणाम करते, इसके बाद पानी में उतरते। मुख्य धारा के आने पर सिर की गठरी या गोद का बच्चा सँभालते, काँवर का संतुलन ठीक करते और एक-दूसरे का हाथ थाम कर उसमें उतरते। पानी गहरा नहीं है लेकिन प्रवाह तेज है, नीचे के पत्थर ऊबड़-खाबड़ हैं और काई के कारण पैर फिसलते हैं। बहुत सँभाल कर पार करना होता है।

किसी से पूछा, 'यह पैदल पार करना कब शुरू होता है?'

'बरसात के बाद मटमैला पानी साफ होता है, तभी से।'

आगे के रास्ते के बारे में पूछने पर बताया, 'आप सोचते होंगे, ज्यों-ज्यों अमरकंटक पास आता जायेगा, पहाड़ और जंगल घने होते जायेंगे। लेकिन है इसका ठीक उलटा। अब न तो जंगल है, न पहाड़। हाँ, आखिरी दिन अमरकंटक की चढ़ाई जरूर चढ़नी होगी।'

भिनसारा होते ही चल पड़े। रामघाट के प्रपातों को देखकर सहस्रधारा का स्मरण हो आया। अंतर यह है कि सहस्रधारा के प्रपात दूर-दूर तक बगरे हैं, जबकि यहाँ के प्रपातों का रेवड़ एक ही जगह इकट्ठा हो गया है। घोड़े के टाप के आकार की एक विस्तृत सपाट चट्टान से असंख्य जलधाराएँ गिरती हैं। मोर जैसे पंख फैलाकर नाचता है, उसी तरह नर्मदा ने यहाँ अपनी जलधाराएँ फैला दी हैं। वैसे प्रपात बहुत छोटे हैं, इक्के-दुक्के होते तो शायद ध्यान भी न जाता। पर ये तो हैं दल के दल, झुंड के झुंड। मृगछौनों की तरह हैं ये। लगता है, इन्हें गोद में ले लूँ, सहला लूँ, फिर कुलाचें भरने के लिए छोड़ दूँ।

यहाँ से चलते समय अचानक मेरा ध्यान आकाश की ओर गया और मैं ठिठक गया। देखा, भरी दुपहरिया में चाँद! धुंधला और क्षितिज के पास लेकिन मैदान में डटा हुआ। सूरज में यह दम-खम कहाँ कि आधी रात को दिखाई दे। चाँद रमता जोगी है, उसका कोई ठौर-ठिकाना नहीं। रात को गायब और दिन को हाजिर। कभी पूर्णकुंभ-सा भरा-पूरा, कभी रेखा-सा महीन। उसका बाँकपन कभी सीधा तो कभी उलटा। कभी सबेरे डूबता और शाम को निकलता, तो कभी शाम को डूबता और सबेरे निकलता। दिक्-काल के बंधन से परे जान पड़ता है यह चाँद!

हमारे जीवन में सूरज का अनुशासन भी हो और चाँद का स्वैरविहार भी हो। नियम का कठोर पालन भी हो और मौज-मस्ती की गुंजाइश भी हो।

शाम को दूधीसंगम पहुँचे। यहाँ एक बैगा वृद्धा ने परकम्मावासियों के लिए कुटी बना रखी है, उसी में रहे। वृद्धा के साथ थी उसकी नातिन— कोई दस बरस की बालिका। आसपास और कोई घर नहीं, इस निर्जन एकांत में उसका कोई हमजोली नहीं। अकेली गुमसुम बैठी रहती थी या किसी काम में लगी रहती थी। हँसने-खेलने की उम्र में ही कैसी गंभीर हो उठी थी। किसी प्राचीन कहानी की अभिशप्त बालिका-सी उस बच्ची का विशाल व उदास आदिवासी चेहरा आज भी भुलाये नहीं भूलता।

सुबह नर्मदा की बाँकी चितवन देखते हुए आगे बढ़े। शरद ऋतु के आकाश में सफेद बादलों के झुरमुट नजर आने लगे थे। उनकी परछाइयाँ मानो धरती को बुहार रही थीं। एकाकी निर्जन पथ। गाँव भी पड़ते तो नाममात्र के— पंदरह-बीस घर यहाँ, दस-पाँच घर वहाँ, बस हो गया गाँव! इसे टोला कहते हैं।

खेतों में बुवाई-गुड़ाई हो रही थी। कभी-कभी सिर पर मटकी लिये खेतों की ओर जाती ग्रामीण स्त्रियाँ दिख जातीं।

दोपहर को बीजापुरी पहुँचे। एक किसान की परछी में खाना बनाने के लिए रुके। चंदवेन्द्र खाना बनाने लगा। मैं थका-सा था, लेट गया।

सोकर जो उठा तो तेज बुखार लिये!

पिछले कुछ दिनों से हम दिन भर चलते ही रहते थे। इसी थकान का बुखार था यह। रात वहीं रहना पड़ा। खाना नहीं खाया। दूध पीकर सो गया। सुबह उठा तो बुखार चला गया था, लेकिन कमजोरी काफी आ गयी थी। पर ज्यों ही साथ में रखे तिल के लड्डू खाकर पानी पीया तो हिम्मत बँधी। बोहन लादा और आगे बढ़े।

बसंतपुर होकर कंचनपुर। पिछले कुछ दिनों से हम शहडोल जिले में चल रहे हैं। यहाँ के निवासियों की साहित्यिक रुचि की दाद देनी होगी। गाँवों

के नाम हैं- बसंतपुर, कंचनपुर, चंदनघाट, कस्तूरी और तहसील का नाम है पुष्पराजगढ़!

कंचनपुर में ठहरने की व्यवस्था हो पायेगी, इसमें संदेह था, तो पास के गाँव के एक लड़के ने कहा, 'आप चिन्ता न करें। यहाँ व्यवस्था होती है तो ठीक है, वरना मैं आपको अपने गाँव ले चलूँगा। बहुत बड़ा गाँव है मेरा— सत्ताईस घर हैं वहाँ!'

पर वहाँ व्यवस्था हो गयी।

दूसरे दिन एक फेरीवाले का साथ हो गया। उसके साथ एक स्त्री भी थी। दोनों बिलासपुर जा रहे थे। आज वहाँ साप्ताहिक बाजार है। फेरीवाला कपड़े की दुकान लगायेगा और स्त्री चूड़ियों की। हम चले थे भीमकुंडी जाने के लिए, लेकिन देहात का हाट देखने की इच्छा से इनके साथ हो लिये। लेकिन वे बहुत तेज चलते थे, आगे निकल गये।

हम तीसरे पहर पहुँचे। आज बीस किलोमीटर चले थे। परसों बुखार के कारण दस कदम चलना मुश्किल था, आज एकदम बीस किलोमीटर चला। इतनी शक्ति कहाँ से आ गयी?

प्रत्येक मनुष्य में शक्ति का एक ऐसा गुप्त भंडार होता है, जो खास-खास मौके के लिए सुरक्षित रहता है। ऐसे मौके पर हाजिर होता है और हमारी भरपूर मदद करता है। शक्ति का यही संचित कोष आज मेरे काम आया था।

छोटा-सा गाँव है बिलासपुर। चारों ओर पहाड़ियों से घिरा, हरियाली में डूबा। लेकिन कैसा बाजार! कपड़ों की चार-पाँच दुकानें छोड़ दें, तो पूरे बाजार में पाँच सौ रुपये का भी माल नहीं था।

सुबह चल दिये। ऊँची पहाड़ी पर से भीमकुंडी दिखाई देने लगा। नीचे के खेतों से कुहासा उठ रहा था और लहराती बदली-सा फैल रहा था। मानो पृथ्वी के थाल से धूप का धुआँ उठ रहा हो।

नर्मदा दिन पर दिन छोटी होती जा रही थी। भीमकुंडी की शिशु नर्मदा को देखकर चकित रह गये। इसे पार करने में आधा मिनट भी न लगता। पानी में घड़ा मुश्किल से डूबता था।

समझ गये कि अब अमरकंटक ज्यादा दूर नहीं।

अब हम बहुत सावधान होकर चल रहे हैं। कहीं ऐसा न हो कि नर्मदा को झरना समझकर पार कर बैठें।

रात घुघवा में रहे। यहाँ से जंगल विभाग की कच्ची सड़क मिल गयी। पहाड़ की तलहटी के शाल-वन में से जाती है। फरीसेमर में एक बैगा के

घर की दीवारों पर सुंदर कलाकृतियाँ देखने को मिलीं। बैगा स्त्रियों के शरीर गुदनों से छलक रहे थे।

दमगढ़ से मेकल पर्वत ने नर्मदा को मानो अपनी भुजाओं में उठा लिया है। यहाँ से अमरकंटक की चढ़ाई शुरू हो गयी। टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी से होते हुए कोई दो घंटे में हम ऊपर आ गये। छोटा-सा मैदान पार करके थोड़ा उतरे तो कपिलधारा पहुँच गये।

कपिलधारा! प्रपात-बाहुल्या नर्मदा का सबसे पहला और सबसे ऊँचा प्रपात। नीचे उतरकर प्रपात के पायताने खड़े होकर, इसे आपादमस्तक देखने लगे। प्रपात से उठती हुई झंकारमय ध्वनि घाटी को थपथपा रही थी। नीचे नदी की तेज धारा चट्टानों में से भागती चली जा रही थी। हम श्रद्धावनत यह देखते रहे।

सहसा मैं जोर से चिल्लाया, 'नर्मदा-आ-आ!'

समूची घाटी ने प्रतिध्वनि के रूप में उत्तर दिया, 'हां-आ-आ!'

कुछ लोग प्रपात के पीछे खड़े थे। नीचे जहाँ पानी गिरता है, वहाँ खोह है, इसलिए प्रपात के पीछे जाया जा सकता है। चारों ओर दर्शक, बीच में प्रपात! देखने की ऐसी सुविधा बहुत कम प्रपात देते हैं। नीचे जाकर दूधधारा भी देख आये। यहाँ का नैसर्गिक सौंदर्य इतना भा गया कि रात यहीं रह गये। सुबह नहाकर चले। अमरकंटक में कल्याणदासजी के आश्रम में रहे। सामान रखकर नर्मदा-कुंड गये।

कुंड को देखते ही मेरी आँखों में आँसू की दो बूँदें छलकीं। आखिर हम नर्मदा के उद्गम तक पहुँच गये थे।

तीसरे दिन दीवाली थी। हमने दीवाली यहीं मनाने का निश्चय किया। कल्याणदासजी ने अपने आश्रम में बड़े प्रेम से रखा। लाखों की लागत से आश्रम बन रहा है, लेकिन खुद केवल लँगोटी पहनते हैं। कहने लगे, 'यह लँगोटी ही मेरी जागीर है।' कई वर्ष हिमालय में रहे हैं। नर्मदा-परिक्रमा तो कब की कर चुके हैं। तीन दिन तक उनका स्नेहपगा आतिथ्य पाते रहे।

दीवाली की रात को स्त्रियाँ नर्मदा-कुंड में दीप छोड़ रही थीं। अँधेरी रात में कुंड में झिलमिलाते दीपों का केसरिया उजाला मैं देर तक देखता रहा।

आखिर मुझसे रहा न गया। एक स्त्री से एक दीया माँग लिया और अपने हाथ में जलाकर कुंड में छोड़ा। फिर मन ही मन बोला, 'माँ नर्मद, तेरी पूजा में एक दीप जलाया है। बदले में तू भी एक दीप जलाना— मेरे हृदय में। बड़ा अँधेरा है वहाँ, किसी तरह जाता नहीं। तू दीप जला दे, तो दूर हो जाये। इतनी भिक्षा माँगता हूँ, माँ। तो दीप जलाना, भला?

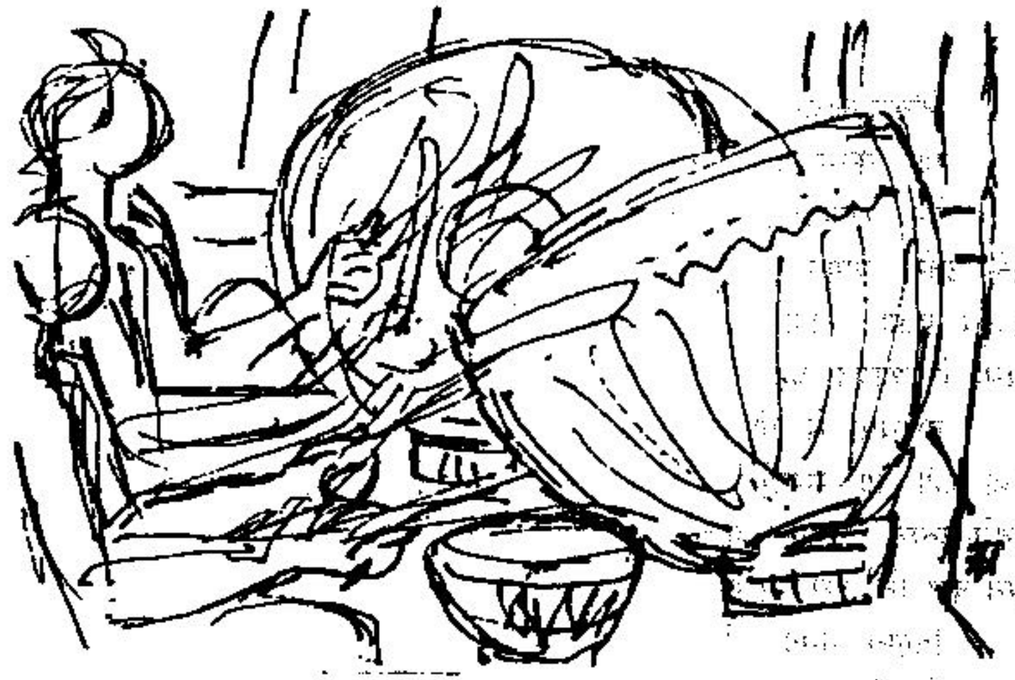

5. अमरकंटक से डिंडौरी

कोई छह महीने के बाद हम पुनः अमरकंटक के नर्मदाकुंड के सामने खड़े हैं।

गंगोत्री, यमुनोत्री या फिर नर्मदाकुंड— ये वे स्थान हैं, जहाँ नदी पहाड़ की कोख से निकलकर पहाड़ की गोद में आती है। पहाड़ के गर्भ में छुपा हुआ पानी यहाँ अवतरित होता है। नवजात शिशु की तरह नदी यहाँ धवल, उज्ज्वल और कोमल होती है।

यहाँ से हमारी यात्रा का नया अध्याय शुरू हुआ। अभी तक हम नर्मदा के उत्तर-तट पर थे, यहाँ से दक्षिण-तट पर आ गये। अभी तक उद्गम की ओर चलते थे, आज से संगम की ओर चलेंगे।

कोई दो घंटे में कपिलधारा पहुँच गये। अधिकांश परकम्माबासी यहाँ से सड़क पकड़कर कबीरचौरा होते हुए डिंडौरी निकल जाते हैं। लेकिन हमें तो नर्मदा के किनारे-किनारे ही जाना था। पर कपिलधारा के सामने की गहरी घाटी को देखकर ठिठक कर खड़े हो गये। वहाँ से कोई नहीं जाता। वहाँ पगडंडी तो क्या, पगडंडी की चुटिया तक नहीं थी। बहुत चिरौरी करने पर भी कोई हमारे साथ आने को तैयार न हुआ। उलटे डरा दिया कि गरमी के दिन हैं, साँप-बिच्छू नदी के किनारे आ जाते हैं, वहाँ से जाना खतरे से खाली नहीं। सामने की गहरी घाटी को देखकर वैसे ही डर लग रहा था, लोगों ने और डरा दिया।

लेकिन जायेंगे तो नर्मदा के संग-संग, इसी घाटी में से, चाहे जो हो।

रक्षा करना माँ।

ऐन कपिलधारा से नीचे उतरना संभव नहीं था। थोड़ा आगे बढ़कर नीचे उतरे। प्रपात के आसपास मधुमक्खी के सैकड़ों छत्तों को देखकर बड़ा ताज्जुब हुआ। दीपावली के समय एक भी छत्ता नहीं था। मधुमक्खियों को गरमी में शायद यहाँ की ठंडक भाती हो।

दूधधारा से भी नीचे उतरे। चट्टानों पर से धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। कहीं-कहीं तो समझ में नहीं आता था कि कहाँ से बढ़ें। गिरते-पड़ते, चढ़ते-उतरते, चप्पा-चप्पा आगे बढ़ रहे थे। थक जाते तो बैठ लेते, फिर तुरंत चल देते। इस सुनसान घाटी में हम अनावश्यक विलंब करना नहीं चाहते थे।

विलंब नर्मदा भी नहीं चाहती थी। तेज गति से कूदती-दौड़ती नीचे उतर रही थी। अमरकंटक कोई बड़ा पहाड़ नहीं। आते समय हम इसे दो घंटे में चढ़ गये थे। उस समय नर्मदा का साथ छोड़ दिया था, सीधे पगडंडी से चढ़े थे। इस बार नर्मदा के किनारे-किनारे, बिना पगडंडी के उतर रहे थे। समय ज्यादा लगेगा, फिर भी तीसरे पहर तक तो उतर ही जायेंगे।

नर्मदा की उँगली पकड़कर चल रहे थे। आमने-सामने ऊँचे हरे-भरे पहाड़ और बीच में गहरी और सँकरी घाटी में से बहती हुई तन्वंगी नर्मदा। तीसरे पहर घाटी चौड़ी होने लगी। मैं समझ गया कि पहाड़ खत्म होने को है, मैदान आ गया। हमारी खुशी का क्या कहना।

अमरकंटक का नाम मेकल भी है। इसलिए नर्मदा का नाम मेकलसुता भी है। मेकल अपनी बिटिया को वनाच्छादित घाटी में से किस हिफाजत से नीचे छोड़ गया है, इसे आज हमने अपनी आँखों से देखा।

आगे जाने पर पगडंडी मिल गयी। इक्के-दुक्के ग्रामीण भी दिखाई देने लगे। शाम होते-होते पकरीसोंढा पहुँचे। खूब सबेरे आगे बढ़े। सामने के सूखे खेतों में से बहती नर्मदा साफ दिखाई दे रही थी। अभी तक तंग घाटी के घने शाल वन में नर्मदा छुपी थी, मुश्किल से ही नजर आती थी, लेकिन यहाँ से वह दूर से भी साफ-साफ दिखाई देती है। नर्मदा का जन्म मानो गौरैया की तरह हुआ है। ऊपर कुंड के घोंसले में अंडे की तरह अवतरित हुई है। अंडे में से बाहर वह यहाँ नीचे निकली है।

आगे एक पेड़ की छाया में भोजन बनाने बैठे। पास में किंरगी गाँव है। वहाँ का एक ग्रामीण नहाने आया था। हमारे बारे में जानकर बहुत खुश हुआ। कहने लगा, 'गुरुजी, हमारे गाँव में अखंड कीर्तन हो रहा है, जरूर आइए, मेरे घर पर ही ठहरिए।'

उसके घर पहुँचे। पड़ोस में अखंड कीर्तन चल रहा था। दूसरे दिन आम का विवाह था, तो वहाँ दो दिन रह गये। उसके पड़ोसी ने घर के आँगन में आम का पेड़ लगाया था। दो साल से उसमें आम लग रहे थे। लेकिन जब तक वह उस पेड़ का विवाह नहीं कर देता, तब तक उसके फल नहीं खा सकता। ऐसा रिवाज है यहाँ। सो चमेली की बेल के साथ आम का विवाह रचाया है। पंडितजी आये हैं, विधिवत विवाह हो रहा है। हम यह सब रसपूर्वक देखते रहे। गाँव के कठोर जीवन में ऐसे अनुष्ठान रस घोलते हैं।

गारकामट्टा में गोपी कोटवार के घर रहे। गाँव में एक जगह शादी हो रही थी। हम भी शामिल हुए। भाँवरें पड़ रही थीं। सभी ने दूल्हा-दुलहन के पैर पूजे। मैंने भी पूजे। दुलहन के हाथ में दो रुपये रखे तो तहलका मच गया। सभी दस्सी-दस्सी जो दे रहे थे!

एक मजे की बात यह थी कि यह लड़की का नहीं, लड़के का घर था। यहाँ चार भाँवरे लड़की के घर पड़ती हैं, तीन लड़के के घर।

यहाँ से चलने पर नर्मदा का एक प्रपात देखने मिला। नर्मदा के बीसियों प्रपातों में सबसे लहुरा— कोई एक मीटर ऊँचा। पानी ने पथरीले पाट को काट-छाँट कर खोखला बना दिया है, मानो नदी में कोठियाँ बनी हों। इसलिए इसका नाम है कोठीघुघरा। घुघर या घुघरा यानी प्रपात।

श्रीहीन धरती पर से आगे बढ़ रहे थे। दीवाली के समय जब सामने तट से चले थे, तब कैसी हरियाली थी! उसकी जगह अब है सूरज की ज्वाला से चटखी हुई भूरी, सूखी जमीन। छाया के लिए कहीं पेड़ तक नहीं। डिंडौरी तक ऐसा ही उजाड़ रहेगा। इसलिए बड़े सबेरे चल देते और नौ-दस बजे तक जो गाँव आ जाता, वहीं ठहर जाते।

अगला पड़ाव बंजरटोला। इसके बाद सिवनीसंगम। यहाँ सिवनी नदी नर्मदा से आ मिली है। संगम पर बने मंदिर में रहने की बढ़िया व्यवस्था हो गयी और यहाँ का एकांत भी मन को छू गया, तो यहाँ चार दिन रह गये। शादियों के दिन थे। मंदिर के सामने की पगडंडी से बारातें निकलती रहती थीं। घोड़े पर कच्ची उम्र के दूल्हा-दुलहन और बाजे-गाजे के साथ पैदल चलते बाराती। एक बार एक बारात तो उस पार चली गयी, लेकिन अल्हड़ किशोरी दुलहन नर्मदा के शीतल जल को पाकर लगी उसके साथ खिलवाड़ करने। वह भूल ही गयी कि वह दुलहन है। दो-तीन हमउम्र सहेलियों के साथ पानी से खिलवाड़ करती रही। मुश्किल से गयी।

अद्‌भुत आकर्षण है माँ नर्मदा में।

बैसाखी पूर्णिमा के दिन खूब बारातें देखने को मिलीं। शहनाई, निशान, नगाड़े, टिमकी और झुमका के स्वर दिन भर गूँजते रहे। दूल्हा-दुलहन हाथ में पंखा लिये घोड़े पर सवार रहते। एक कौंवर में दहेज रहता। पगडंडी पर चलते एक के पीछे एक दस-पंदरह बाराती रहते। बस हो गयी बारात!

तोताराम पास के गोरखपुर में मनिहारी का सामान बेचता है। रोज नर्मदा नहाने आता है। साथ में रहता है उसका तोता— पिंजड़े में नहीं, उसके कंधे पर, लेकिन उड़ नहीं जाता। तोते से बड़ा प्यार है उसे। अकेला जीव, न घर न घाट। न कोई आगे, न पीछे। थोड़े-बहुत पैसे इकट्ठे होते ही तीरथ करने निकल पड़ता है। एक दिन मैंने पूछा, 'तोताराम, तुमने शादी नहीं की?'

'सगाई तो तीन बार हुई, लेकिन शादी एक बार भी नहीं हुई। किसी न किसी कारण से सगाई टूट जाती है।'

तीन-तीन सगाई के बावजूद कुँवारे तोताराम की व्यथा-कथा सुनकर मन उदास हो गया। लेकिन उसने अपने मन को मना लिया है। तोते में मन लगाया है।

एक दिन गोरखपुर का बाजार कर आये। फिर चल दिये। गरमी के दिन थे, खेतों में फसल नहीं थी। पहाड़ नहीं, जंगल नहीं। जंगल तो दूर, छाया के लिए एक पेड़ नहीं। सामने का गाँव दूर से ही दिखता रहता। रास्ता भटक जाने का कोई भय नहीं। सो पगडंडी की परवाह किये बिना नर्मदा के किनारे-किनारे ही चलते।

धूप के कारण बुरा हाल था। पर आज आकाश में बादल थे। पथरकुचा तक पहुँचते-पहुँचते आकाश बादलों से घिर गया। यहाँ नदी के पाट में बहुत-सी चट्टानें थीं। वरना यहाँ तक नदी केवल मिट्टी में होकर बहती है। कपड़े धोने तक के लिए पत्थर नहीं था। दोपहर का भोजन हमने नदी के पथरीले पाट में बनाया। भोजन करके चले ही थे कि तेज वर्षा के कारण भागकर गाँव में शरण लेनी पड़ी। थोड़ी देर की वर्षा में गाँव में इतना कीचड़ हो गया कि चलना मुश्किल हो गया। इसलिए रात वहीं रह गये।

पौ फटते ही आगे बढ़े। करबेमट्टा के पास एक टीला आसपास के मैदान से अलग पड़ता था, इसलिए ऊपर चढ़े। वहाँ छोटे-बड़े नाना आकार-प्रकार के सैकड़ों त्रिशूल जमीन में गड़े थे। इनमें से कई बड़े ही कलात्मक थे। जैसे तने में से डगाल और डगाल में से टहनी निकलती है, उसी प्रकार बड़े त्रिशूल में से छोटे और उनमें से और भी छोटे त्रिशूल फूटते थे। एक सादे आकार को कितने और कैसे-कैसे रूप दिये जा सकते हैं, इसे हम चाव से देखते रहे। कभी यह स्थान तांत्रिकों का अड्डा रहा होगा। अब उजाड़ हो गया है।

आगे लिखनी में एक वृद्धा से पीने के लिए पानी माँगा तो उसने कहा, 'आओ बेटा, पानी देती हूँ। लेकिन ऐसा करो, रोटी खाकर पानी पीओ। धूप में से आ रहे हो। खाकर पानी पीओगे तो ठीक रहेगा।'।

माँ जैसे बच्चे को फुसलाती है, दुलराती है, बिलकुल वही भाव। उसके नेह को टाल नहीं सके। वह रोटियाँ ले आयी, उन पर शक्कर रखी थी। 'लो, खा लो बेटा।'

कैसा तृप्ति का भाव था उसके चेहरे पर!

अगला पड़ाव मझियाखार। फिर गोमतीसंगम। फिर लछमनमड़वा। लछमनमड़वा में एक साध्वी रहती है। मैंने उनसे कहा कि नौकरी के कारण पूरी परिक्रमा एक साथ नहीं कर सकता, छुट्टियों में थोड़ी-थोड़ी करके करता हूँ, तो उन्होंने कहा, 'बेटा, बूँदी का लड्डू पूरा खाओ तो मीठा लगता है और चूरा खाओ तो मीठा लगता है। इसका दुःख न करना।

दोपहर को डिंडौरी पहुँचे। डिंडौरी बड़ा कस्बा है। यहाँ नर्मदा पार करने वाले ग्रामीणों का क्रम अबाध गति से चलता रहता है। सिर पर गठरी या कंधे पर कौंवर लिये पुरुष तथा सिर पर लकड़ी का गट्ठर और पीठ पर बच्चे को बाँधे स्त्रियाँ पहले 'नर्मदा मैया की जय!' बोलकर प्रणाम करतीं, फिर नदी में उतरतीं। फिसलन और तेज प्रवाह के कारण बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है। मुख्य धारा आने पर सभी चौकस और चौकन्ने हो जाते हैं, सधे हुए पाँवों से या एक-दूसरे की बाँह पकड़ कर धीरे-धीरे बढ़ते हैं। कैसा रोमांच है इसमें!

यह दृश्य मुझे मगन रखता है। तीन दिन तक यही देखते रहे। फिर आ गये। अमरकंटक से डिंडौरी तक की यह यात्रा सबसे कठिन होनी चाहिए थी। लेकिन यही सबसे आसान थी। आधे दिन का पहाड़, एक दिन का जंगल, फिर कुछ दिनों का सँकरा मैदान। नर्मदा जैसी असामान्य नदी भला सामान्य नियम को क्यों कर मानने चली।

6. डिंडौरी से महाराजपुर (मंडला)

नर्मदा पहाड़ी नदी है, पर आरंभ वह मैदान से करती है। अमरकंटक का लंबा पहाड़ वह आधे दिन में उतर जाती है। फिर शुरू होता है प्रायः पचहत्तर किलोमीटर लंबा डिंडौरी तक का मैदान। नर्मदा को मानो पहाड़ों से कोई सरोकार न हो। पर यह तो किसी शैतान बालक के मेहमान के आगे थोड़ी देर के लिए भोला-भाला बन कर बैठने जैसा है। डिंडौरी से पहाड़ों की भूलभुलैया शुरू होती है। अनेक छोटे-बड़े पहाड़ गति-अवरोधक बन कर नर्मदा को कभी दाँये तो कभी बाँये मुड़ने को मजबूर करते हैं। इसीलिए डिंडौरी और मंडला के बीच जितने घुमाव-फिराव हैं, उतने शूलपाण की झाड़ी को छोड़कर और कहीं नहीं। डिंडौरी से मंडला तक का मार्ग अत्यंत दुर्गम है तो अत्यंत सुंदर भी है। नर्मदा का यहाँ मानो बालकांड पूरा होता है और सुंदर-कांड शुरू होता है।

डिंडौरी से 8 अक्टूबर, 79 को चले। रात बंजरटोला में बितायी। दूसरी रात रमपुरी में। वहाँ के किसानों के चेहरों पर अकाल की काली छाया मँडरा रही थी। कहने लगे, 'हमारे यहाँ कहावत है— कुटकी रानी, तीन पानी। लेकिन इस बार तो तीन बार भी पानी नहीं बरसा। कोदो-कुटकी तक नहीं होगी। भगवान जाने क्या होगा।'

यहाँ से चले तो रास्ते में एक घुड़सवार मिला। हमारे बारे में जानकर खुश हुआ। कहने लगा, 'गुरुजी, मैं तो खेत जा रहा हूँ, लेकिन वह मेरा घर दिखाई दे रहा है, वहीं जाइए। मेरा लड़का आगे की सारी व्यवस्था कर देगा।'

लड़के ने बड़ा स्वागत किया। एक थाली में सीधा ले आया। आटा, चावल, दाल, घी, नमक, प्याज और लाल मिर्च। बहुत मना किया, पर नहीं माना। यही नहीं, आगे का रास्ता दिखाने साथ हो लिया।

हम ऊँचे पठार पर से जा रहे थे। आगे जाने पर नर्मदा का जो बंकिम रूप देखने को मिला, वह अनुपम था। बहती हुई नर्मदा सामने के पर्वत-खंड से टकराकर लचक के साथ मुड़ती है, फिर खुद से ही सटकर वापस बहती है। खिची हुई कमान-सी नर्मदा को कई बार देख चुके थे, लेकिन यहाँ तो वह एकदम दोहरी हो गयी है। घुड़सवार के लड़के ने कहा, 'बरसात में जब नदी उफान पर होती है, तब दो धाराओं के बीच एक दीवार भर रह जाती है।'

नर्मदा का वृंदावन है यह। खूब रास रचाया है उसने। खरमेर भी यहीं नर्मदा से आ मिली है। संगम के पास एक संन्यासी की कुटी थी। आज ही वे अपने गुरुभाई को कुटी सौंपकर नर्मदा-परिक्रमा पर निकलेंगे। लेकिन वे सीधे जायेंगे, हम देवनाला होते हुए, इसलिए हम लोगों का साथ नहीं होगा। यहाँ से घुड़सवार का लड़का लौट गया। लेकिन एक ग्रामीण हमें देवनाला ले जाने के लिए तैयार हो गया।

टेढ़ी-मेढ़ी खूबसूरत खरमेर को तीन बार पार करके जब हम देवनाला पहुँचे, तो दिन ढल चुका था। यहाँ की गुफा के बारे में काफी सुन रखा था, सीधे वहीं गये।

जिस झरने के संग-संग हम आये थे, वही झरना यहाँ एक सुंदर प्रपात रचता है। इस प्रपात के पीछे एक विशाल गुफा है। ऊपर झरना, झरने के नीचे गुफा और गुफा के द्वार पर प्रपात। अद्भुत दृश्य था। गुफा इतनी विशाल कि हजारों आदमी मजे से समा जायें। झरने के नीचे इतनी विशाल गुफा हमारे देश में शायद ही और कहीं हो। बरसात में यह पानी से लबालब भर जाती होगी।

रात हो चली थी। पास ही एक बाबा की कुटी थी। हमें वहाँ ले जाकर हमारे साथ आया ग्रामीण वापस चला गया। इस घुप्प अँधेरे में वह मजे से चला गया।

जंगली जानवर का डर था। हम कुटी के अंदर सोये। सबेरे यहीं स्नान किया। यह झरना खरमेर में मिलता है, खरमेर नर्मदा में मिलती है, इसलिए इस स्नान को हमने नर्मदा-स्नान के तुल्य माना।

दोपहर को मरवारीघाट पहुँचे। गाँव-गाँव से घी इकट्ठा करके शहर ले जाने वाले दो भाई नर्मदा तट पर गाकड़ बना रहे थे। उनसे आगे का रास्ता पूछा। रास्ता तो बताया ही, गाकड़ भी दिये और बहुत-सा घी भी। किसी तरह पैसे नहीं लिये।

शाम को कनईसंगम पहुँचे। तट पर एक छोटा-सा मंदिर है। उसी सुनसान मंदिर में रात रहे। सामने मालपुर दिख रहा था। जाते समय इसी गाँव में गोसाई जी के घर रूके थे। हमने उन्हें खबर भिजवा दी फिर भोजन बनाने में जुट गये।

घना अँधेरा हो गया था। सामने नदी में रोशनी नजर आयी। धीरे-धीरे रोशनी पास आती गयी। शायद गोसाई जी हों।

गोसाई जी तो नहीं, उनके भाई थे। गोसाई जी कहीं गये हुए थे, सो उनके भाई हमसे मिलने आये थे। तेज प्रवाह के कारण यहाँ दिन को भी नदी पार करना टेढ़ी खीर है, वे रात के सन्नाटे में आये थे। हम लोगों का कुशल-क्षेम पूछकर चले गये। उनका रात के अँधेरे में हहराती-लहराती नर्मदा को पार करना कैसा खतरनाक लग रहा था!

दिन पर दिन रास्ता मुश्किल होता जा रहा था। ऊँची-नीची पहाड़ियों और सूखे नालों को पार करते हुए हम आगे बढ़ रहे थे। सकरीघाट से एक ग्रामीण का साथ हो गया। आगे चलकर ऊँची कगार पर से नर्मदा का जो भव्य रूप देखा, तो बस देखते ही रह गये।

हमारी ओर का खड़ा, ऊँचा और चट्टानी किनारा किसी किले की दीवार-सा बहुत दूर तक चला गया था। सामने का किनारा नीचा और सपाट है। शिलाओं से मंडित और झाड़ियों से आच्छादित इस विशाल किनारे से सट कर बहती नर्मदा ऐसी लग रही थी, मानो शिव की गोद में पार्वती सो रही हों।

एक साध है कि जीवन में एक बार फिर यहाँ आऊँगा और इस अनुपम दृश्य को जी भर कर देखूँगा।

पास ही है छीरपानी। रात वहीं रहे। इसके बाद की रात नैझर में

बितायी। फिर मेंहदवानी के बाजार से राशन खरीद कर ठेलाघाट गये। एकदम निर्जन स्थान। एक बाबा जैसा किसान था। उसने बताया कि पहाड़ी पर एक कुटी है, रात को वह वहीं सोता है। हम लोग भी वहीं सो सकते हैं। भोजन से निवृत्त होकर टॉर्च की रोशनी में उसके साथ कंकड़-पत्थर वाली पगडंडी से ऊपर चढ़े। विकट चढ़ाई थी। पीठ पर बोझा लादे छिपकली की तरह दबे-दबे चढ़ रहे थे। जैसे-तैसे ऊपर पहुँचे। उस वीराने में कोई नहीं था। सन्नाटे का आलम, घुप्प अँधेरा। ऐसे स्थान में सोने का जीवन में यह पहला मौका था। नर्मदा के पाट में दूर आग दिखाई दे रही थी। ऐसी ही आग पीछे भी थी। कभी-कभी मछुआरे नदी में ही रात रह जाते हैं। उन्हीं की आग थी। पूछने पर बाबा ने कहा, 'सामने की आग तो मछुआरों की है, पर पीछे की आग उनकी नहीं।'

'तब?'

'वह सिद्धों की भूमि है। वहाँ अपने-आप दिये जलते हैं। अपने-आप आग जलती है। रात को आग दिखेगी, लेकिन सबेरे जली हुई एक भी लकड़ी या कंडा नजर नहीं आयेगा।'

ऐसे भयावह स्थान में मैंने चुप रहना ही ठीक समझा। सुबह उठकर आगे बढ़े तो थोड़ी दूर तक वह साथ चला। सिद्धों की भूमि में पहुँचे। रात को जहाँ आग दिखाई दी थी, वहाँ जले हुए कंडों का ढेर दिखाई दिया। मैंने पूछा, 'यह क्या है?'

वह असमंजस में पड़ गया। कहने लगा, 'किसी ने खाद के लिए कंडे इकट्ठे किये थे, पर किसी दूसरे ने ईर्ष्यावश आग लगा दी।'

प्रेम का दीप मुश्किल से जलता है, ईर्ष्या की आग आसानी से सुलगती है।

यहाँ से वह लौट गया। हम डोकरघाट के लिए चल दिये। सुनसान रास्ते से जा रहे थे। समझ में नहीं आ रहा था कि सही जा रहे हैं या गलत। काफी देर बाद एक आदमी मिला। उससे राम-राम हुई तो उसने कहा कि मैं डोकरघाट से ही आ रहा हूँ। अभी तो दूसरे गाँव जा रहा हूँ पर आप मेरे घर ही जाइए। मेरा बेटा आपकी पूरी व्यवस्था करेगा।

हम सूनी पगडंडी से आगे बढ़े। दोपहर को तीन स्त्रियों को लकड़ियाँ बीनते देखा। सोचा, उनसे डोकरघाट की राह के बारे में पूछेंगे। लेकिन हमें देखते ही उन्होंने भागना शुरू कर दिया। ऐसा पहले भी हो चुका था। हम थके-माँदे जा रहे होते, मुश्किल से कोई दिखाई देता, सोचते, इससे आगे के गाँव के बारे में पूछेंगे कि वह भाग खड़ा होता। यहाँ भी यही हुआ। लाचार हम आगे बढ़े। गाँव दूर नहीं था। ऊँची कगार से उतरे तो डोकरघाट

आ गया। उस ग्रामीण के घर का दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खुला। खोलने वाली स्त्री उन तीन स्त्रियों में से ही एक थी!

अच्छा हुआ कि डरकर वह दरवाजा बंद कर दे, इसके पहले ही घर का बड़ा लड़का आ गया। मैंने उससे कहा कि रास्ते में तुम्हारे पिता मिले थे। उन्होंने ही हमें तुम्हारे यहाँ ठहरने के लिए कहा है। तभी मुझे याद आया। उसके पिता का मैंने स्केच कर लिया था, वह दिखाया। सभी तुरंत पहचान गये, खुश हुए और रहने के लिए एक कमरा दिया। स्त्रियाँ कहने लगीं कि हमने आपको चोर-डाकू समझा था!

थोड़ी देर पहले जो चोर-डाकू थे, अब वे सम्मान्य अतिथि हैं!

नदी नहाने गये। सामने तट से जब चले थे, तब राह भटक गये थे। मैं मधुमक्खियों के हमले से बाल-बाल बच गया था। सारी बातें याद हो आयीं।

घर के लोगों ने कहा कि आगे की रात आप मुंडी में हमारे समधी के यहाँ ठहरिए। सो मुंडी में उसके समधी के घर रहे। उसके समधी ने कहा कि अगले गाँव में हमारे समधी रहते हैं, आप वहाँ रहें। गाँवों में शादी-ब्याह प्रायः पास-पास होते हैं।

मुंडी में देर रात तक लोक-नृत्य देखते रहे। पुरुष सैला नाच रहे थे। हाथ में लकड़ी के बने चटकोला बजाते हुए नाच रहे थे और गा रहे थे—

तरीना को नारा रे, मोर हारिल सुआ
तरीना को नारा रे, मोर हारिल सुआ
घरोली में बोले राजाराम
सोनचिरैया जाय बैठे अमवा की डार।

बहुत तेज नाच होता है, थका देने वाला। पुरुष थक गये तो स्त्रियों ने रीना शुरू किया। फिर दोनों ने मिलकर करमा नाचा। पुरुषों का सैला, स्त्रियों का रीना और दोनों का सम्मिलित करमा। आज हमें तीनों नृत्य देखने को मिले।

समधी के समधी का गाँव पास ही था, इसलिए वहाँ नहीं रुके। रात गोरखपुर में रहे। यहाँ से जंगल की कच्ची सड़क ने हमें देवगाँव पहुँचा दिया। यहाँ नर्मदा पर मानोट का पुल है। देवगाँव में एक मछुआरे की परछी में सोये। भोर वेला आँख खुली तो नजर सीधे चाँद पर पड़ी। पेड़ों की घनी काली कतार पर काजू के आकार का चाँद पूरी आभा के साथ दमक रहा था। चाँद मानो घुटने मोड़कर पालने में सो रहा था। ऐसा सलौना चाँद तो कभी देखा नहीं था।

यह चौदहवीं का चाँद था— घिस जाने पर बचे हुए चंदन के टुकड़े की तरह। बिस्तर में पड़ा-पड़ा देर तक चँदा के उस टुकड़े को निहारता रहा।

थोड़ी देर में सबेरा हो गया। पास ही बुढ़नेर संगम है। किस जोश-खरोश के साथ बुढ़नेर आ रही थी! उसकी धारायें चट्टानों में से मार्ग निकालती, उछलती और सबेरे की धूप में चमचमाती, नर्मदा की ओर तेजी से लपक रही थीं। ऐसी स्वच्छंद हिरनी-सी बाँकी नदी का नाम है बुढ़नेर। कम से कम युवनेर ही होता!

कल दीवाली है। कल शाम तक महाराजपुर (मंडला) पहुँच जायें, तो रात तक घर पहुँच सकते हैं। दीवाली घर में मना सकते हैं। चाल अपने आप तेज हो गयी। शाम तक रामनगर पहुँच गये। रात मंदिर में रहे। सुबह गमनगर का महल देखा। नर्मदा तट पर बने गोंड़ राजाओं के इस विशाल महल की रौनक कभी देखते ही बनती होगी।

रामनगर से सड़क मिल गयी। रास्ते से जा रहे थे कि सामने से आते हुए एक वृद्ध दिखाई दिये। वेशभूषा से परकम्मावासी जान पड़ते थे। परकम्मावासी ही थे। मैंने पूछा, 'आप उलटे कैसे चल रहे हैं?' उन्होंने कहा, 'मेरी जिलहरी-परिक्रमा है। इस परिक्रमा में समुद्र को नहीं लाँघते। इसमें दुहरी परिक्रमा होती है।'

मैं चकित। पचहत्तर वर्ष की उम्र के यह वृद्ध, बिना किसी संगी-साथी के कैसी कठिन परिक्रमा कर रहे थे! मैं नतमस्तक हुआ। शूलपाण की झाड़ी में भीलों ने उन्हें लूट लिया था। चश्मा तक उतार लिया। उन्होंने भीलों से कहा कि मेरी आँखों में मोतियाबिंद है, यह चश्मा तुम्हारे किसी काम का नहीं, इसे न लो, तो भीलों ने कहा कि हम इसे फोड़ डालेंगे, पर तुमसे तो ले लेंगे। कहने लगे, 'तब से चलने में बड़ी दिक्कत होती है। ऊँच-नीच का सही अंदाज नहीं हो पाता। कई बार गिर चुका हूँ।'

मैंने पूछा, 'क्या मैं आपकी कोई सहायता कर सकता हूँ? आपको कुछ पैसे दे सकता हूँ।'

उन्होंने कहा, 'पैसे को मैं हाथ नहीं लगाता।'

मैं हैरान। 'अनाज दे सकता हूँ।'

उन्होंने थोड़ा सोचकर पूछा, 'दाल कौन-सी है?'

मूँग की दाल जल्दी चुड़ जाती है। हम वही रखते हैं। बताया तो कहने लगे, 'मूँग की दाल जरूर दीजिए, मैं खुशी से लूँगा। मैं बूढ़ा आदमी, अरहर की दाल हजम नहीं होती। पेट खराब होता है।' दाल देकर कहा, 'पैसे भी ले लीजिए। इस दाल के खत्म होने पर दूसरी ले सकेंगे।'

वही बात— पैसे को मैं हाथ नहीं लगाता।

मैं थोड़े दिनों के लिए चलता हूँ तो पैसे रखता हूँ, अनाज रखता हूँ और साथ में यादवेन्द्र जैसा साथी रहता है। यह वृद्ध अकेले, एकाकी, निस्संग, अकिंचन चल रहे हैं। पता नहीं कब घर पहुँचेंगे। पहुँचेंगे या नहीं, क्या पता। फिर भी अपनी मस्ती में जा रहे हैं।

यह थी श्रद्धा। यह था संपूर्ण आत्म-समर्पण। ऐसे लोग अकेले होते हुए भी अकेले नहीं होते। पार्थसारथी चुपचाप आकर इनके रथ की लगाम अपने हाथ में ले लेते हैं।

मंडला दिखाई देने लगा। बंजर के चौड़े रेतीले पाट को पार कर हम महाराजपुर पहुँचे। इस बार की यात्रा पूरी हुई। मंडला से बस पकड़कर जबलपुर आ गये। आखिर दीवाली की रात को हम घर आ गये। भीड़-भाड़, शोर-गुल, धूल-धकड़ और चहल-पहल का क्या कहना! धर्मक्षेत्र से मानो कुरुक्षेत्र में आ गये।

रात को जब सर्वत्र लक्ष्मीपूजन हो रहा था, तब निर्जन पथ पर से आते हुए उस वृद्ध की वाणी मेरे अंतर में गूँज रही थी— पैसे को मैं हाथ नहीं लगाता...

7. महाराजपुर से ग्वारीघाट (जबलपुर)

क्या यह वही सहस्रधारा है?

सामने तट से जाते समय इसे दीवाली की छुट्टी में देखा था। सचमुच सहस्रधारा थी। नर्मदा की अजस्र जलधाराओं का सैलाब उमड़ रहा था। दूर-दूर तक फैले अनगिनत प्रपात नदी के वेग को चौबाला कर रहे थे। हहराती, उफनाती, बलखाती धारा के पास जाने में बड़ा भय लगा था।

और आज?

बहुत खोजने पर एक सूक्ष्म धारा मिली। नर्मदा का सूखा चट्टानी पाट गर्म कड़ाह की तरह खौल रहा था। जहाँ हमने भरी-पूरी नर्मदा को देखा था, वहाँ इस गरमी में उसकी साँस भर चल रही थी। सभी कुछ निर्जीव, सुनसान, नेत्रहीन और मूक...

और हो भी क्या सकता था? शताब्दी का भयंकर सूखा पड़ा था। कुएँ-तालाब, नदी-नाले प्रायः सूख चले थे। गाँव खाली हो रहे थे। पूरा उत्तर भारत अभूतपूर्व जल संकट का सामना कर रहा था। ऐसे में नर्मदा भी सूखकर काँटा रह जाये, तो क्या आश्चर्य?

27 मई 80 को महाराजपुर (मंडला) से चले। पहला दिन था और सुबह से ही धूप चटख हो चली थी, इसलिए अधिक नहीं चले। मानादेही में ही रुक गये। वहाँ से सहस्रधारा देखने गये। यह अंदाज तो था कि धारा सिमट कर रह गयी है लेकिन इस तरह उजड़ गयी होगी, यह कल्पना नहीं थी।

सहस्रधारा का एक वह राजराजेश्वर रूप देखा था- पानी से छलकता, चौकड़ी भरता, घन-घमंड घोषणा करता, और आज यह दलित द्राक्षा-सा रूप देखा— निर्जला, नीरव, मूक और चट्टानों का ढाँचा मात्र! उतार-चढ़ाव किसके जीवन में नहीं आते?

पानी के न रहने से एक फायदा था— नदी का पाट खुली किताब की तरह सामने था। वेगवती धाराओं ने चट्टानों को कैसा काटा व तराशा था, इसे हम अच्छी तरह देख सकते थे। तारों की शोभा हम तभी देख सकते हैं, जब चाँद न हो। पेड़ के गठन को तभी समझ सकते हैं, जब पतझड़ हो। आज हमें यही मौका मिला था। पानी ने चट्टानों को तराशा तो था ही, आश्चर्य यह देखकर हुआ कि उनमें बड़े-बड़े सूराख कर दिये थे— बिलकुल गोल। फिर उनको नीचे ही नीचे मिला दिया था। हम लोग एक सूराख से उतरे, दूसरे से बाहर निकले। नदी ने मानो पत्थर के कान बींधे थे। यहीं भँवर होती है। कोई इसमें फँस जाये, तो जिंदा बाहर नहीं निकल सकता। आज समझ में आया कि अच्छे से अच्छा तैराक भी अनजान पानी में क्यों नहीं उतरता।

दूसरे दिन पौ फटते ही चल दिये। दोपहर की दहकती गरमी में बुजबुजिया पहुँचे। इस सूखे में भी यह गाँव हरा-भरा था। यहाँ वन-विभाग की नर्सरी है। तरह-तरह के पौधे उगाये जाते हैं— खासकर सागौन के। दूर दूसरी तरह के पौधे थे। मैंने एक मजदूर से पूछा, 'वे काहे के पौधे हैं?'

'लिपिस्टिक के!'

'लिपिस्टिक के?' मैंने आश्चर्य से पूछा। उसने फिर वही जवाब दिया तो मैंने पास जाकर देखा। वे यूकिलिप्टिस के पौधे थे!

यहाँ नर्मदा में कुछ अधिक पानी था। प्रपात भी थे। पास ही वन-विभाग के कमरे का बरामदा मिल गया, तो वहीं टिक गये। कमरे में एक कंपाउन्डर रहता था। मंडला से आये उसे पंदरह दिन ही हुए थे। बेहद गरमी थी, रात को बाहर सोये। मैं और यादवेन्द्र नीचे जमीन पर, कंपाउन्डर चारपाई पर।

रात के कोई डेढ़ बजे बूँदाबाँदी हुई तो मैं बरामदे में आ गया, फिर यादवेन्द्र और अंत में कंपाउन्डर। हम जमीन पर सोये। कंपाउन्डर चारपाई पर। दरवाजे में पल्ले नहीं थे।

कोई आधा घंटा हुआ होगा कि कंपाउन्डर जोर से चिल्लाया, 'साँप! साँप!' हम लोग भी हड़बड़ा कर उठ बैठे। मेरे पास टॉर्च थी, तुरन्त जलायी। वह कहने लगा, 'साँप था। मेरी बाँह पर था। मुझे ठंडा-ठंडा लगा तो हड़बड़ा कर उठ बैठा।'

वह बुरी तरह से डर गया था। अटक-अटक कर बोल रहा था। डर हम भी गये थे। टॉर्च और लालटेन की सहायता से कोने-कोने की तलाशी ली, लेकिन साँप कहीं नहीं था। मैंने कहा, 'तुम्हें भ्रम हुआ है। साँप कहीं नहीं है। फिर तुम तो चारपाई पर लेटे थे, साँप उस पर कैसे चढ़ेगा?'

'साँप ही था। मैंने उसे अपनी आँखों से देखा।'

हमें विश्वास नहीं हुआ। लेकिन कोई दस मिनट के बाद देखा, दरवाजे में से साँप आ रहा है।

उसकी बात सच थी। एक लकड़ी की सहायता से मैंने उसे बाहर किया। एक पत्थर पर पानी था, देर तक पीता रहा, प्यासा था। फिर धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा।

कंपाउन्डर बोला, 'मारो!' मैंने कहा, 'तुम्ही मारो।' उसने कहा, 'मेरा शरीर तो क्या, आत्मा तक काँप उठी है। मुझसे यह नहीं होगा।'

'यादवेन्द्र, तुम ही मारो!'

'गुरुजी, आज तक साँप नहीं मारा। मुझसे भी यह नहीं होगा।'

मैंने कहा, 'आप जैसे रथी-महारथी इसे नहीं मार सकते, तो भला मेरी क्या बिसात!'

आगे एक शाल वृक्ष के नीचे जाकर वह रुका, फिर धीरे-धीरे ऊपर चढ़ने लगा। थोड़ी देर में काफी ऊपर पहुँच गया। साँप को पेड़ पर चढ़ते पहली बार देखा। कंपाउन्डर की बात पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं रहा।

दूसरी ओर एक दूसरा साँप, जो उससे मोटा था, दूसरे पेड़ पर चढ़ रहा था। हम शायद नागलोक में आ गये थे। रात का घना अँधेरा, सन्नाटे का आलम और पेड़ों पर चढ़ते साँप! बड़ा भय लगा।

इतने में कंपाउन्डर एक छोकरे को ले आया। उसी समय पहला साँप पेड़ पर से उतर रहा था। जमीन पर आते ही छोकरे ने दो डंडे जमाये तो साँप का काम तमाम हो गया। दूसरा साँप पेड़ में गायब हो गया, हाथ नहीं आया।

ऐसे में नींद कहाँ से आती। बाकी रात जागकर काटी। कंपाउन्डर कहने लगा, 'कल ही मंडला जाकर इस्तीफा दे दूँगा। बीस साल की नौकरी जाये भाड में।' हम भी सोच रहे थे, कब सबेरा हो और यहाँ से कूच करें।

सबेरा होते ही चल दिये। हवा एकदम बंद थी। पूरा भूखंड जल रहा था। पेड़ धूप से कुम्हला गये थे। भरी दोपहर को घाघा पहुँचे। गाँव न जाकर नदी-किनारे एक पेड़ के नीचे रुके। अब जोरों से लू चलने लगी थी। किसी तरह खाना पकाया, खाकर वहीं लेटे। ज्यों-ज्यों पेड़ की छाया सरकती, त्यों-त्यों हम सरकते। आँधी उठती तो सारी देह धूल से अट जाती। पर हवा का हिनहिनाना और पेड़ों का रँभाना सुनने में मन रम गया, तो लू के थपेड़े खाते वहीं पड़े रहे।

शाम तक हमारे ऊपर धूल की चार-छह पर्तें जम गयीं। मैं मानो मोहें-जो-दड़ो होऊं और यादवेन्द्र हड़प्पा हो, ऐसा हाल हुआ। फर्क यही था कि उन प्राचीन नगरों को दूसरों ने खोद निकाला था, जबकि हम स्वयं उठ खड़े हुए और चलते बने। घाघा में रहने की व्यवस्था हो गयी, तो घूमने निकले। पास ही दूसरा गाँव है— घाघी। वहाँ नर्मदा-तट गये। नदी की धारा उस तट पर थी, इसलिए सूखे रेतीले पाट को पार कर सामने तट गये। वहाँ जाकर चकित रह गये। वहाँ कोई धारा ही नहीं थी।

आँखों को विश्वास न हुआ। लेकिन पानी नहीं था, तो नहीं था। नर्मदा की धारा टूट गयी थी।

पिछले साल भी गरमी में चले थे। लेकिन ऐसा कहीं नहीं देखा था। दाहिनी ओर पतली धारा थी, दूर बाँयी ओर भी थी, लेकिन बीच में अचानक गायब हो गयी थी।

नर्मदा की गागर एकदम खाली थी।

पिछली यात्राओं में हमने नर्मदा का वनवास देखा था, इस बार की यात्रा में उसका अज्ञातवास देखा।

हम चाहते तो दस कदम चलकर उस तट पर पहुँच जाते। लेकिन नहीं गये। नर्मदा ऊपर नहीं है तो क्या हुआ, रेत के नीचे जरूर बह रही है। इसलिए हमने उसे हाजिर-नाजिर माना और वहीं से लौट आये।

अगला पड़ाव बुदेहरा। नर्मदा की धारा यहाँ भी टूट गयी थी।

बुदेहरा से झुरकी। झुरकी के पटेल बड़े विनोदप्रिय थे। हम लोगों का स्वागत करते हुए किसी से कहा, 'आप लोगों के लिए वही प्रागैतिहासिक शरबत ले आओ।'

शरबत आया, बड़ा ही स्वादिष्ट था। कहने लगे, 'यह आँवला, पुदीना आदि से बना है, इसलिए इसे प्रागैतिहासिक शरबत कहता हूँ।'

मैंने देखा, इस विनोदप्रिय आदमी को भी विषाद की काली छाया ने ग्रस लिया था। पास ही बरगी में नर्मदा पर एक विशाल बाँध बन रहा है।

उनका यह गाँव और आसपास के कई गाँव उस बाँध की डूब में आ जायेंगे। तब वे कहाँ जायेंगे, क्या करेंगे, यही चिंता उन्हें सता रही थी। दरअसल बेघर होने की यह चिंता उनकी ही नहीं, सारे इलाके की थी।

पद्मीघाट में एक अच्छा आश्रम है, रात वहाँ रहे। भोर होते ही चल दिये। पेड़ ऐसे काले दीख रहे थे, मानो झुलसे हुए हों। शाम को बखारी पहुँचे। गाँव के पटेल के यहाँ रहने को तो मिल गया, लेकिन पानी माँगा, तो उसने रस्सी-बालटी थमा दी और कुआँ बता दिया। पानी लेने गये तो रस्सी मुश्किल से बीच कुएँ तक पहुँची! पानी पाताल को चला गया था। पास की झोपड़ी का ग्रामीण हमारी परेशानी समझ गया। अपनी रस्सी ले आया, दोनों को जोड़ा, तब पानी निकला। गाँव के इसी एक कुएँ में पानी था, बाकी सब सूख चुके थे।

यहाँ से छिंदवाड़ा। नर्मदा के संग-संग चले। रोटो पहुँच कर एक वन-रक्षक की झोपड़ी में डेरा डाला। वह यहाँ के पेड़ कटवा रहा था। यह इलाका बाँध में डूब जाये, इसके पहले पेड़ों को कटवा लेना जरूरी था।

सुबह नदी में से चले। दिन बेहद गर्म था और हवा ने अपने पंख समेट लिये थे। दोपहर को एक जगह बहुत-से मजदूर स्त्री-पुरुष एक पेड़ के नीचे आराम कर रहे थे। पास ही राहत कार्य में सड़क बन रही थी। इसी में लगे थे। कुछ सो रहे थे, कुछ गा रहे थे। उनका अधेड़ उम्र का मुखिया मौज में आकर नाच रहा था। इनके गीतों ने मन मोह लिया तो गोपीटोला में इन्हीं में से एक के घर रात रह गये। रात को वे और भी गीत सुनायेंगे और नाचेंगे।

यादवेन्द्र भोजन बनाने की तैयारी करने लगा, तो हमारे मजदूर यजमान ने मना कर दिया— भोजन आपका हमारे यहाँ होगा।

यह आदमी, जिसे हमने चार रुपये रोज पर जेठ की तपती दुपहरिया में हाड़तोड़ मेहनत करते देखा था, कहता है कि भोजन आप हमारे यहाँ करेंगे।

भाई मजदूर! मैं जरूर तुम्हारी रोटी खाऊँगा। महाभारत के नेवले की तरह इससे शायद मेरा शरीर सोने का हो जाये!

देर रात तक लोकगीत व लोकनृत्य का आनंद लेते रहे। सुबह बीजासेन के लिए चल दिये। रात को यहाँ भी नृत्य देखने मिले। दिन भर कड़ी मेहनत करने के बाद और रूखा-सूखा खाने के बाद भी ये लोग जीवन का रस लेना जानते हैं।

दूसरे दिन खुशक पहाड़ियों से होते हुए पायली पहुँचे। पायली में जिनके यहाँ ठहरे थे, वे विधुर थे। मैंने पूछा, 'आपने दोबारा शादी क्यों नहीं की?' उन्होंने कहा, 'मेरे बच्चे छोटे थे। मैंने सोचा, दोबारा शादी करूँगा तो ये बच्चे

माँ से तो गये, बाप से भी जायेंगे। इसलिए नहीं की। अब तो बच्चे बड़े हो गये हैं। बड़े बेटे की बहू भी आ गयी है।'

शाम को नर्मदा-तट गये। पचीस बरस पहले भी यहाँ आया था। तब यहाँ कैसा घना जंगल था! विशाल वृक्षों से लिपटी सुदीर्घ लताएँ मुझे आज भी याद थीं। पर अब कुछ भी नहीं बचा था। इनसान की कुल्हाड़ी ने सर्वनाश कर डाला था।

बड़े सबेरे बरगी कालोनी के लिए चल दिये। मेरी चाल अपने आप तेज हो गयी। उन दिनों मेरा बड़ा लड़का चि. शरद वहाँ रहता था। चंड सूर्य के प्रचंड ताप में उसके द्वार पर खड़े होकर कहा, 'भिक्षां देहि!'

यहाँ नर्मदा पर एक विशाल बाँध बन रहा है। शाम को उसे देखने गये। हजारों मजदूरों और सैकड़ों यंत्रों से यह स्थान जीवंत हो उठा है। बाँध की दीवार बहुत-कुछ हो चुकी थी। एक सीढ़ी से अंदर उतरे तो मैं चकित रह गया। बाँध की ठोस नजर आती दीवार में, इस छोर से उस छोर तक, बिजली की रोशनी से जगमगाती सुरंग थी! देख-रेख के लिए बड़े बाँध में ऐसी सुरंग रहती है, यह तभी जाना।

जब यह बाँध बन जायेगा, तो यहाँ का नक्शा ही बदल जायेगा। यहाँ एक विशाल झील बनेगी। मैं सोचने लगा, इस झील का नाम क्या होना चाहिए।

याद आया, कभी यहाँ एक स्त्री रहती थी। एक दिन उसने सुना, राम आ रहे हैं। स्वागत के लिए उसके पास बेर के सिवा और था ही क्या? राम आये तो चख-चख कर मीठे बेर देती रही। प्रेम में विह्वल शबरी को इस बात का ध्यान ही न रहा कि वह राम को जूठे बेर खिला रही है। सोचा, इसी प्रदेश की उस सरला आदिवासी नारी की याद में इस झील का नाम शबरी झील रखा जाये, तो क्या ही अच्छा हो।

शबरी के बेर, सुदामा के चावल, विदुर की भाजी। क्या इनका कोई मोल हो सकता है? महत्त्व इस बात का नहीं है कि हम क्या दे रहे हैं, महत्त्व इस बात का है कि हम जो दे रहे हैं उसमें अपना हृदय उड़ेल रहे हैं या नहीं।

यहाँ से पारा पास ही है, पर गाँव की गलियाँ पा गयीं, तो रात यहीं रह गये। भिनसारे चल दिये। आगे टेमर-संगम पड़ा। टेमर किस ठस्से के साथ नर्मदा से मिल रही थी! इस सूखे में भी उसमें पानी था। संगम में देर तक स्नान करते रहे। तभी आकाश में बादल घिर आये। बूँदाबाँदी होने लगी। मैं बहुत खुश हुआ। सोचा, आज त्रिवेणी-स्नान हुआ। दो धारायें पहले से थीं, तीसरी ऊपर से आ मिली!

जब से बरगी कालोनी से चले हैं, तब से एक नया दृश्य बराबर

देखने को मिल रहा है। बारूद से चट्टानें तोड़ी जा रही हैं, बड़ी बड़ी नहरें खोदी जा रही हैं। बाँध के बन जाने पर ये नहरें खुशहाली की सौगात लायेंगी। सारा इलाका धन-धान्य से लहलहा उठेगा।

लेकिन परकम्मावासियों का क्या होगा? नदी के दोनों ओर जब इन नहरों का जाल दूर-दूर तक फैल जायेगा और उनमें नर्मदा जल प्रवाहित होगा, तब परकम्मावासी भारी धर्मसंकट में पड़ जायेंगे। इन नहरों को लाँघा जाये या नहीं? नहरों को लाँघना नर्मदा लाँघने जैसा होगा। नहीं लाँघने पर इतना बड़ा चक्कर लगाना पड़ेगा कि फिर वह नर्मदा परिक्रमा ही नहीं रहेगी। तब क्या किया जाये?

मेरा विचार है कि जब नर्मदा का स्वरूप बदलेगा, तब नर्मदा-परिक्रमा के नियमों का स्वरूप भी बदलेगा। नहर, नदी की दूसरी पीढ़ी हुई। छोटी नहरें, तीसरी पीढ़ी। परकम्मावासी का दायित्व नदी के प्रति है, उसकी दूसरी-तीसरी पीढ़ी के प्रति नहीं। इसलिए इन नहरों को लाँघने में कोई दोष नहीं।

रात खमरिया में रहे। यहाँ से सड़क मिल गयी। दोपहर को ग्वारीघाट (जबलपुर) आ गये। इस बार की यात्रा पूरी हुई। यात्रा का शुभारंभ इसी ग्वारीघाट से हुआ था। उस तट से गये थे, इस तट से लौटे थे। लौटते समय सामने तट के गाँवों को देखते ही पूर्व-स्मृति के तार झनझना उठते। जिनके यहाँ ठहरे थे, उनकी याद आ जाती। खबर भिजवा देते, तो मिलने आ जाते। पाठा के शिक्षक, सहजपुरी के संन्यासी, छेवलिया का तुलाराम कोटवार, सभी बड़े प्रेम से आये थे। तुलाराम तो स्त्री-बच्चों को लेकर आया था। सभी हमारे लिए सीधा लाये थे।

तो उस तट के पाठा, सहजपुरी, छेवलिया, बरहइयाखेड़ा; और इस तट के घाघी, झुरकी, बखारी, रोटो, पायली— तुम्हें जुहार! अब तो तुम थोड़े ही दिनों के मेहमान हो न? नर्मदा के लुभावने किनारो, तुम्हें भी अलविदा! और सौंदर्य-सरिता नर्मदा! तुम्हें भी अलविदा, क्योंकि यहाँ तुम भी तो उस विशाल झील में उसी तरह खो जाओगी, जिस तरह दूध के बरतन में पड़ती धारोष्ण दूध की धार खो जाती है!

8. ग्वारीघाट से बरमानघाट

यादवेन्द्र अपनी नवोढ़ा पत्नी के साथ हमें विदाई देने आया है।

हमारी पिछली यात्रा को कोई ढाई बरस बीत चुके हैं। किसी न किसी कारण से निकलना न हो सका। इस बीच यादवेन्द्र की शादी हो चुकी है, अब वह हमारे साथ नहीं चल सकता। इसका उसे बहुत रंज है। उससे अधिक रंज मुझे है, क्योंकि जिस यादवेन्द्र के बल-बूते पर मैंने अभी तक की दुर्गम पदयात्रा की थी, मेरा वही विश्वस्त साथी अब मेरे साथ नहीं होगा।

विदाई देने कान्ता भी आयी है। छोटे भाई की पत्नी नीता और उनके दो बच्चे नम्रता और अमित भी आये हैं। नौ बरस के अमित के उत्साह का क्या कहना! उसका बस चले तो साथ चले।

17 नवम्बर 82, भाईदूज। जबलपुर के ग्वारीघाट में हमने नाव से नर्मदा पार की और ठीक उसी बिन्दु से चल पड़े, जहाँ पिछली यात्रा समाप्त की थी। साथ आये स्वजन हमें देर तक देखते रहे, फिर लौट गये।

इस बार हम चार हैं। दुल्हानी और साठे मेरे छात्र हैं। पंडित नामक एक साथी और है। बहुत अच्छा दल बन पड़ा है हमारा। पंडित की मातृभाषा हिन्दी है, दुल्हानी की सिंधी, साठे की मराठी और मेरी गुजराती। चार भाषाओं के जल से माँ नर्मदा के पैर पखारने हम चल पड़े।

दो घंटे में तिलवाराघाट आ गये। यहाँ नर्मदा पर सड़क का पुल है। जब बाढ़ आती है, तब डूब जाता है। लेकिन अब पास में ही नया पुल बन रहा है। यह बहुत ऊँचा होगा। यही नहीं, इस पर से नर्मदा के दक्षिण तट की नहर का पानी उत्तर तट को जायेगा। नर्मदा को नर्मदा की नहर पार करेगी।

रात सिवनी में रहे। सुबह चल दिये। लम्हेटी के पास नदी-तट पर चट्टानें पसलियों की तरह उभर आयी हैं। तीसरे पहर डुंड्वारा पहुँचे। नर्मदा का प्रसिद्ध जलप्रपात धुआँधार यहाँ से पास है। यहाँ रात्रि-विश्राम की व्यवस्था हो गयी तो धुआँधार चल दिये। चौड़ी नर्मदा यहाँ हठात् सँकरी हो गयी है और एक खड्ड में प्रचंड वेग के साथ गिरती है। दूर से ही जलबिन्दुओं का धुआँ-सा उठता दिखाई देता है, इसलिए इसे धुआँधार कहते हैं।

दूर से दबी-दबी सी सुनाई देने वाली गड़गड़ाहट पास जाने पर कर्णभेदी घोष में बदल गयी। यहाँ का तांडव देखते ही बनता है। चट्टानों पर मानो हजारों मूसल बरस रहे हैं। पानी बड़े वेग से गिरता, लहरिये बनाता आगे बढ़ जाता है। नर्मदा पर यहाँ मस्ती का कैसा अलबेला नशा छाया है!

नदी में खूब पानी था और धुआँधार यौवन और जीवन से भरपूर था। देर तक हम उसके आबो-ताब को देखते रहे, उसकी धमक को सुनते रहे और उसकी फुहार में भीगते रहे।

इसी धुआँधार से नर्मदा संगमरमर की कुंजगली में प्रवेश करती है। संगमरमर की चट्टानों को चीरती हुई तंग घाटी में से बहती है और एक अद्भुत सौंदर्य-लोक की सृष्टि करती है। कनक छरी-सी इकहरे बदन की नर्मदा एक जगह इतनी सिमट गयी है कि इस स्थान को बंदरकूदनी कहते हैं। यहाँ नर्मदा मानो सुस्ता रही है या अत्यंत मृदु गति से बह रही है। संगमरमर की विशाल दूधिया चट्टानें, अलस गति से बहती नीरव नर्मदा और निपट एकांत— लगता है किसी नक्षत्र लोक में आ गये हैं।

धुआँधार में गुस्से में उबलती-उफनती नर्मदा ने मानो यहाँ मौन की दीक्षा ले ली है। धुआँधार के गर्जन-तर्जन के बाद यहाँ नर्मदा की शांत जलधारा— मानो रौद्र के बाद शांत रस!

चाँदनी रात में यहाँ नौकाविहार होता है। दिन को भी होता है लेकिन दूधो नहाती रात को यहाँ सौंदर्य की कैसी लहाछेह वर्षा होती है!

और कोई तीन किलोमीटर लंबा और सौंदर्य से छलकता यह स्वप्नलोक हमारे जबलपुर के पास है। नर्मदा ने जो किसी को नहीं दिया, वह जबलपुर को दिया— अपने गले का हार दिया!

पंचवटी में यह सौंदर्य-लोक समाप्त हो जाता है। यहाँ से चट्टानें खत्म। नर्मदा अब मिट्टी या रेत में से ही बहती है। भेड़ाघाट में मानो नर्मदा का पाषाण-युग समाप्त हो गया और बालू-युग शुरू हो गया!

मजे की बात यह है कि यहाँ संगमरमर के जिस भूखंड में से नर्मदा बहती है, उसकी चौड़ाई मुश्किल से आधा किलोमीटर है। अब नर्मदा यदि थोड़ा दाँयें या थोड़ा बाँयें से निकल जाती, तो कहाँ होता यह सौंदर्य-लोक!

नर्मदा पहले ऐसा ही करती थी। धुआँधार से उत्तर की ओर मुड़ जाती थी और चौसठ योगिनी मंदिर वाली टेकरी का लपेटा लगाती आगे बढ़ती थी। उसका सूखा चौड़ा पाट आज भी मौजूद है। तब कहाँ था यह सौंदर्य-लोक और कहाँ था यह दिव्य-लोक!

लेकिन नर्मदा उन चट्टानों को शिल्पी की ललक भरी निगाह से देखती जरूर रही होगी और एक दिन उसने शुरू कर ही दिया उन्हें काटना-छाँटना और तराशना। इसमें उसे लाखों वर्ष लग गये क्योंकि चट्टानें फौलाद की थीं और यह काम वह केवल बरसात में ही कर सकती थी। आखिर उसने अभेद्य संगमरमर को भेद कर अपनी राह बना ली और धरती पर स्वर्ग उतार कर रख दिया!

इसीलिए मैं कहता हूँ कि यह सौंदर्य-लोक प्रकृति की देन नहीं है। प्रकृति का दिया रूखा चौड़ा पाट आज भी देखा जा सकता है। यह तो नर्मदा के अनन्य सौंदर्य-बोध और उसकी सुदीर्घ तपस्या का सुफल है! यह उसके चित्त के उच्छल आनंद की मनभावन उपलब्धि है!

डुंड़वारा से चले थे तो सुबह तड़के, लेकिन नर्मदा के साथ रमते-बिलमते चल रहे थे, इसलिए दोपहर तक विशेष चलना नहीं हुआ। चलना तीसरे पहर ही हुआ। रात बगरई में रहे। यह मूर्तिकारों का गाँव है। भेड़ाघाट में संगमरमर की जो मूर्तियाँ आती हैं, वे यहीं से आती हैं। कुछेक मूर्तिकारों को मूर्तियाँ तराशते देखा। उनकी आधी-अधूरी मूर्तियाँ ज्यादा सुंदर लग रही थीं। सौंदर्य सादगी और सरलता में विराजता है। बहुत अधिक कारीगरी से कलाकृति दम तोड़ देती है।

इसके बाद की रात धरतीकछार में रहे। जिस ग्रामीण के बरामदे में रहे, उसके घर की दीवार पर मृदंग टँगा था। मैंने कहा, 'जान पड़ता है,

यहाँ भजन-कीर्त्तन होता है।' उसने कहा, 'कल ही हुआ था, आज भी होगा।' रात को बहुत से ग्रामीण जुटे। एक ने इकतारे पर बड़े अच्छे भजन सुनाये। दूसरे उसका साथ दे रहे थे। मैंने उनके स्केच उतारे और तारीफ की। तारीफ कुछ ज्यादा ही हो गयी। अब वे उठने का नाम नहीं ले रहे थे, इ.. नींद के मारे हमारा बुरा हाल था। बड़ी मुश्किल से सोने को मिला।

यहाँ से चले तो दोपहर को भीकमपुर पड़ा। एक जगह सुस्ताने बैठे तो कुछ ग्रामीण इकट्ठे हो गये। इनमें गाँव का कोटवार भी था। मैंने हमारे बारे में संक्षेप में बताया और कहा कि हम एक साथ अखंड परिक्रमा नहीं कर सकते, इसलिए थोड़ी-थोड़ी करके खंड परिक्रमा कर रहे हैं। फिर पूछा, 'सुबह धरतीकछार से चले हैं, कितना चले होंगे?' कोटवार ने कहा, 'यही कोई पाँच-छह मील।' मैंने पूछा, 'मील या किलोमीटर?' उसने कहा, 'मील और किलोमीटर एक ही बात है!'

तब तक और भी लोग आ गये थे। वह उन्हें हमारे बारे में बताने लगा। कहने लगा, 'ये नर्मदा की अखंड परिक्रमा कर रहे हैं।' मैंने घबराकर कहा, 'अखंड नहीं, खंड।' उसने तपाक से कहा, 'खंड-अखंड एक ही बात है!'

मुझे जोर की हँसी आ गयी। वह बुरी तरह झेंप गया। मैंने तुरंत अपनी गलती महसूस की। कोटवार यानी गाँव का सबसे बड़ा हाकिम। मुझसे उसका अनादर हो गया, यह ठीक नहीं हुआ।

दूसरे ही क्षण वह गरज कर बोला, 'यहाँ क्यों बैठे हो?' 'सुस्ताने और रास्ता पूछने।' 'चलो, मैं रास्ता बताता हूँ।'

वह हमें नर्मदा तट ले आया। हम वहीं बैठने ही वाले थे कि उसने ललकारा, 'यहाँ नहीं, वहाँ। सनेर के उस पार।'

हम वहाँ गये। बाद में दुल्हानी ने कहा, 'अब समझ में आया कि वह हमें यहाँ तक क्यों ले आया। सनेर के उस पार जबलपुर जिला है, इस पार नरसिंहपुर। उसने हमें जिलाबदर कर दिया है!'

अपराध के साथ ही दंड! काश, हमारा दंड-विधान इतना त्वरित होता!

झांसीघाट के पास दो परकम्मावासी मिले। माँ-बेटा थे। माँ-बेटे को परकम्मा करते पहली बार देखा। रात हम बेलखेड़ी में रहे। वे आगे निकल गये। माँ-बेटे खूब चलते हैं।

सुबह गाँव में स्त्रियों को दही बिलोते देखा। नरसिंहपुर दूध-घी का जिला है। अब यह दृश्य हमें रोज दिखाई देगा।

दोपहर को झलोनघाट में विश्राम के लिए रुके। पास ही नर्मदा की रेत में बीस-बाईस ग्रामीणों का दल था। साथ में बाजे-गाजे भी थे। पता

चला कि एक वृद्ध यहाँ से परकम्मा उठा रहे हैं, ये उन्हें विदा करने आये हैं। रात को ही आ गये थे, यहीं खुले में सोये थे। सुबह वृद्ध का मुंडन हुआ, कढ़ाई हुई, प्रसाद बँटा और अब जाने की घड़ी आ गयी है। बाजे बजने लगे। एक-एक करके सभी स्त्रियाँ नाचीं, अंत में वृद्ध भी नाचे। फिर बारी-बारी से सभी उनके पाँव पड़ने और रोने लगे। लेकिन वृद्ध सभी से कहते, 'नहीं, रोओ नहीं, मुझे हँसी-खुशी से विदा करो।'

मैंने कहा, आज तो हम अभी चले आ रहे हैं, लेकिन कल आपको मिला लेंगे।

'मैं जमुनिया में रुकूँगा। आपके आने पर ही चलूँगा।' फिर चल पड़े।

एक स्त्री ने रोते हुए कहा, 'आप उनका ध्यान रखना। वे मेरे चाचा हैं।'

जब सब चले गये तो गाँव के एक लड़के ने कहा, 'आप उनके साथ न जाना।'

'क्यों?'

'वे चमार हैं, मांस-मगरा खाते हैं।'

रात मुआर के मंदिर के चौतरे पर काटी। काफी ठंड थी। सबेरे चल दिये। थोड़ी देर में जमुनिया आ गये। वृद्ध के बारे में पूछा तो गाँववालों ने कहा कि वे चमार-मुहल्ले में मिलेंगे। वहाँ गये। यह उनके दामाद का घर था। साफ-सुथरा, लिपा-पुता। वृद्ध नर्मदा नहाने गये थे। अधेड़ उम्र के दामाद हमसे कहने लगे, 'मुझे भी लालच हो आया है। मेरा मन भी जाने को कर रहा है।'

'बहुत अच्छा। ससुर-दामाद का साथ रहेगा।'

लेकिन, बड़े भैया कहते हैं कि ऐसे चुपचाप नहीं जाते। सभी रिश्तेदारों को खबर करेंगे, सबसे मिल कर जाना।'

'तब कल या परसों निकलिए।'

पंचांग दिखाते हुए उन्होंने कहा, 'देखिए, कल से पंचक शुरू हो जायेगा। पूर्णमासी तक निकलना नहीं होगा।' तब तक वृद्ध नहा कर आ गये। हमें देखकर बहुत खुश हुए। 'मैं इनसे कहता हूँ कि मुझे मत रोको। लेकिन ये मेरी सुनते नहीं।' आखिर यह तय हुआ कि दोनों पूर्णमासी के बाद निकलेंगे। गाँव के और दो-एक लोग साथ चलेंगे।

तभी मुझे याद हो आया—ये चमार हैं। भिक्षा हम माँगते नहीं, पर यहाँ जरूर माँगेंगे। बरामदे में एक स्त्री दही बिलो रही थी। भिक्षा में हमने मठा माँगा। घर के लोगों को आश्चर्य हुआ। बेहद खुश भी हुए। हमें देर न हो, इसलिए दो स्त्रियाँ मिल कर बिलोने लगीं। रस्सी का एक छोर एक स्त्री के हाथ में, दूसरा छोर दूसरी स्त्री के हाथ में! इस रस्सा-कशी को हम बड़े चाव से देखते रहे।

मठा पीकर आगे बढ़े। थोड़ी देर में अग्निकुंड आ गये। नर्मदा के मोड़ पर और खूब ऊँचे कगार पर है यह। नर्मदा यहाँ से कितनी सुडौल दिखाई दे रही थी! मानो अभी तक वह दुबली-पतली मुस्कराती लड़की थी, अब सुडौल बदन वाली युवती हो गयी है! धूप से नहायी नर्मदा को शुभ्र रेतीले पाट का परिधान खूब फब रहा था। गोरी रेत के पास नीली जलधारा—हृदय माधुर्य से भर गया।

हमारी पगडंडी नर्मदा में से ही है। जब रेत में से जाती है, तब पैरों के नीचे रेत चुरमुराती है और चाल धीमी हो जाती है। जब कछार में लगे गेहूँ-चने के पौधों में से जाती है, तो लगता है किसी बगिया में से जा रहे हैं। नदी-तट की पगडंडी बनती-बिगड़ती रहती है। ज्यों ही पानी नीचे उतरा, इस नयी मिट्टी में फसल बो दी जाती है और पगडंडी नीचे खिसक आती है।

पगडंडी लोकगीत की तरह होती है। इसे बनाने वाला अज्ञात होता है। कोई एक इसे बनाता भी नहीं। यह समूह का सृजन है।

रात सांकल में रहे। पास के घर के ग्रामीण ने हमें कंडे दिये। कंडे देखकर मैंने कहा, 'पंडित, आज गाकड़ बनाओ।' लेकिन पंडित को गाकड़ बनाना नहीं आता। तब वह ग्रामीण विस्तार से बताने लगा कि गाकड़ कैसे बनाये जाते हैं। थोड़ी देर तक तो उसकी पत्नी यह सुनती रही, फिर बोली, 'तुम बना क्यों नहीं देते?'

आज्ञाकारी पति ने तुरंत कंडे सुलगाये। जब वे पूरी तरह जल चुके, तब उनके अंगार पर उलट-पुलट कर गाकड़ सेंकता हुआ बोला, 'सिक जाने पर ये फूल जायेंगे और फट जायेंगे। घी होगा तो खाने में और मजा आयेगा।'

याद आया, एक दिन हम लोग जा रहे थे। रास्ते में पति-पत्नी का साथ हो गया। बातें होने लगीं। हम सामान से लदे-फँदे थे। पत्नी ने यह देखा तो पति से कहा, 'तुम इनका थोड़ा-सा सामान उठा क्यों नहीं लेते?' आज्ञाकारी पति ने तुरंत हमारे झोले ले लिये।

मेरा विचार है कि पतियों के सेवाकार्य के पीछे प्रेरणा प्रायः पत्नियों की रहती है।

अंगार पर गाकड़ सिकते देख कर मुझे लगा कि प्रकृति के बीच रहने वाला आदि-मानव अपने खाद्य-पदार्थ इसी प्रकार आग पर भून कर खाता होगा। थोड़ी अतिशयोक्ति करके हम कह सकते हैं कि गाकड़ प्रकृति है, रोटी संस्कृति है और पूरी-पराठे विकृति है।

उधर कंडों पर गाकड़ सिक रहे थे, इधर स्टोव पर दुल्हानी दाल बना रहा था। दुल्हानी स्टोव जलाने से लेकर खाना तैयार हो जाने तक जुटा रहता, लेकिन साठे की दिलचस्पी केवल बघार में थी। करीने से मसाले निकालता,

देर तक तेल में भूनता, फिर बघारता या छौंकता। एक दिन खीर बनाने का आयोजन हुआ, तो वह इसे भी बघारने की तैयारी करने लगा! बड़ी मुश्किल से समझाया कि खीर को नहीं बघारते।

वैसे, उसके बघार के कारण भोजन सुस्वादु बनता था। पर मिर्च काफी देता था। एक दिन उसने ढेर सारी हरी मिर्च काटी। मैंने घबराकर कहा, 'इसकी आधी ही छोड़ना।'

उसने आधी से भी कम मिर्च छोड़ी। उसकी आज्ञाकारिता पर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। लेकिन थोड़ी ही देर में यह कहते हुए कि टमाटर डालने से मिर्च का तीखापन आधा रह जायेगा, उसने बाकी की मिर्च भी झोंक दी!

घुघरी के पास चट्टानों में से बहती नर्मदा का शोर सुनाई दिया। कितने दिनों बाद सुनाई दिया!

यहाँ से पिपरिया। मंदिर में आश्रय माँगा तो पंडितजी ने टका-सा जवाब दिया— यहाँ कोई जगह नहीं। कहीं कोई व्यवस्था नहीं हो रही थी और अँधेरा घिरने लगा था। तभी एक वृद्ध आये और कहने लगे, 'चलो, मेरे घर चलो।' रास्ते में लोगों से कहते हैं, 'पाहुने आये हैं, घर ले जा रहा हूँ।'

एक साधु को उन्होंने पहले से ही आश्रय दे रखा था, हम चार को और ले आये। मैंने कहा, 'आप हमें बिलकुल अपने जान पड़ते हैं।' उन्होंने कहा, 'इस संसार में कोई अपना नहीं।' फिर रुककर बोले, 'और कोई पराया भी नहीं। है न उलझन की बात!'

सुबह चले तो गरारू के पास नर्मदा चट्टानों में शोर करती मिलीं। समनापुर के बाद हथिया में वह संगमरमरी चट्टानों में से बहती है। अपने संगमरमरी लिबास में वह हमेशा अच्छी लगती है।

रात चिनकी में रहे। सुबह चले तो धुआँधार पड़ा— छोटा धुआँधार। छोटा है तो क्या हुआ, है तो शेर का बच्चा! लहरों का वही एक दूसरे को धकियाना, छल्ले बनाना, उमड़ना-घुमड़ना और चट्टानों को तराशना।

दोपहर को पड़ी शेर नदी। नर्मदा से वह कैसी चुपचाप मिल रही थी! दोनों रेत में बहती हैं, इसलिए कोई शोर नहीं। पानी इतना साफ कि यदि धूप में झिलमिलाता न होता, तो नदी में पानी न होने का धोखा हो सकता था।

हम भोजन से निवृत्त हुए ही थे कि परकम्मावासियों का एक दल आया। उसमें दो स्त्रियाँ भी थीं। खाते-पीते घर की जान पड़ती थीं। पता चला कि दोनों बहनें हैं। अमरकंटक से चली हैं। बेलखेड़ी में चातुर्मास किया था। मैंने पूछा, 'रास्ते में कोई तकलीफ?'

बड़ी बहन ने कहा, 'कैसी तकलीफ! मैया ने हमें फूल की तरह रखा है।' वे यहीं रुकेंगे। 'सोयेंगे कहाँ?'

उनके एक साथी ने कहा, 'ये बहनें साथ में हैं इसलिए ऊपर कुटी में चले जायेंगे, वरना यहीं रेत में सो जाते।'

'ऐसी ठंड में?'

'ठंड अभी पड़ ही कहाँ रही है!'

हम ठंड से परेशान हैं, ये कह रहे हैं कि ठंड शुरू ही कहाँ हुई! इस दल में भी वे माँ-बेटे नहीं थे। खूब चलते हैं।

शाम को सतधारा पहुँचे। चारों ओर चट्टानें छितरी हुई थीं। कहीं-कहीं ऐसा लगता था, मानो नदी में कुंड बन गये हों। अत्यंत मनोरम दृश्य था। यहाँ नर्मदा पर सड़क का पुल है। बहुत कम पुल ऐसे सुन्दर स्थान पर होंगे।

थोड़ी ही देर में शाम हो गयी और अँधेरा फैलने लगा। लेकिन यहाँ से बरमान ज्यादा दूर नहीं, इसलिए अँधेरे में ही आगे बढ़े।

आकाश के कछार में तारों के पौधे निकल आये। दूर मंदिरों से आरती का स्वर सुनाई देने लगा। आखिर अँधेरे में ऊँची, अटपटी और खड़ी कगार पार कर धर्मशाला पहुँचे। वहाँ पहले से ही बहुत से परकम्मावासी ठहरे थे और एक भी कमरा खाली नहीं था। आखिर एक वृद्ध भिक्षुक ने हमें अपने कमरे में ठहरा लिया।

हमें विश्वास था, वे माँ-बेटे यहाँ जरूर मिलेंगे, क्योंकि आज हम कोई बीस किलोमीटर चले थे। लेकिन वे यहाँ भी नहीं थे। ओह, वे चलते हैं या उड़ते हैं!

9. बरमानघाट से सांडिया

ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों में सबसे उपेक्षित हैं ब्रह्मा। मनुष्य सर्वाधिक भयभीत मृत्यु से रहता है, इसलिए संहार के देवता शिव की बड़ी भक्ति करता है। विष्णु पोषण करते हैं इसलिए उनके अवतार राम और कृष्ण की पूजा भी कम नहीं होती। ब्रह्मा सृष्टि के देवता हैं। उन्हें जो सृष्टि करनी थी, कर चुके। अब उनसे क्या लेना-देना! अतः बूढ़े ब्रह्मा का कोई नाम नहीं लेता।

यह देख कर भला लगा कि इस स्थान का नाम ब्रह्मा के नाम पर से है— ब्रह्माणघाट। अब बरमानघाट हो गया है। हम छोटी बरमान में हैं, सामने बड़ी बरमान है। वहाँ काफी बड़े घाट हैं। यहाँ आने से पहले नर्मदा दो धाराओं में बँट जाती है। बीच में बड़ा द्वीप है। रात को अँधेरे में आये थे, इसलिए ध्यान नहीं गया था। अब साफ दिखाई दे रहा है। इतना बड़ा द्वीप नर्मदा में इसके पहले कहीं नहीं है।

आज एकादशी है। दोनों तटों पर स्नानार्थियों की भीड़ है। बरमान में हर एकादशी, पूर्णिमा या अमावस्या के दिन छोटा-मोटा मेला भरता है। सबसे बड़ा मेला संक्रांत से भरता है जो एक महीने तक चलता है। नर्मदा-तट पर भरने वाले मेलों में यह शायद सबसे बड़ा है।

तीसरे पहर चल दिये। एक ग्रामीण का साथ हो गया। नर्मदा की खड़ी कगार पर पगडंडी सँकरी हो गयी, सँकरी और फिसलन भरी। जरा चूके और गये। मैंने कहा, 'यह तो बड़ी खतरनाक है।'

'एक बार एक बाबा यहीं लुढ़क गया था। सीधे पानी में गिरा।'

'फिर?'

'उसे तैरना आता था, निकल आया। सामान बह गया। लोगों ने दूसरा सामान दिला दिया। दूसरे दिन ही आगे बढ़ गया, रुका नहीं।'

थोड़ी देर में बरिया आ गया। रहने की अच्छी व्यवस्था हो गयी तो यहीं रुक गये। ठंड अचानक बढ़ गयी। देर तक अलाव के पास ही बैठे रहे। कंडे देखकर पंडित ने गाकड़ बनाये। अब वह बढ़िया गाकड़ बनाने लगा है।

भिनसारे चल दिये। रास्ते में एक किसान के घर ताजे टमाटर थे तो हमने टमाटर खरीदे। उसकी स्त्री भैंस लगा रही थी तो दूध भी खरीदा और वहीं पी गये। अभी-अभी जो दूध भैंस के पेट में था, अब वह हमारे पेट में है। मनुष्य की एक परिभाषा यह भी हो सकती है कि जो दूसरे के पेट की चीज को निकालकर अपने पेट की पिटारी में ठूँसने में माहिर हो, उसे मनुष्य कहते हैं।

किसान से हमने पूछा, 'आगे तुम्हारे किसी रिश्तेदार को कोई समाचार देना हो तो कहो।' उसने कहा, 'ढाना में मेरे समधी रहते हैं। नाम है धन्नू। गांव में जाते ही घर पड़ेगा। अमरूद और नीबू के बहुत-से पेड़ लगे हैं। उन्हें हमारे कुशल-मंगल कहना।'

तीसरे पहर ढाना पहुँचे। धन्नू के घर गये तो नब्बे वर्ष के वृद्ध से भेंट हुई। वे धन्नू के पिता थे। उनके समधी के समाचार देकर कहा कि अगर आपके यहाँ जगह हो तो रात यहाँ रुकें, नहीं तो आगे बढ़ें। सुनते ही वृद्ध ने कहा, 'क्या कहा? जगह न हो तो आगे बढ़ें? राम राम! यह क्या कहा। घर में भला जगह न होगी? ऐसा कहीं हो सकता है? फिर तुम तो हमारे समधी का नाम लेते हुए आये हो। अब तो समधी बाद में, तुम पहले। बहू, आँगन बुहारो, दरी बिछाओ, ठंडा जल लाओ, पाहुने आये हैं!'

वृद्ध आँखों से लाचार हो गये हैं। मोटे काँच का चश्मा पहने हैं। चश्मे में कमानियाँ नहीं हैं, धागे से कानों में लपेटे हैं। इतने खुश हैं मानो

उन्हीं के नाती-पोते आये हों। एक बच्चा पेड़ से तोड़ कर अमरूद दे गया। घर की बहू ने आँगन में रखे चूल्हे को गेरुए रंग की मिट्टी से पोत दिया, कंडे और लकड़ियाँ रख दीं। पानी से भरी कसेड़ी रख दी, भटे और टमाटर दिये। बहू को जब पता चला कि हम सांडिया जा रहे हैं, तो उसकी खुशी का क्या कहना! वहाँ उसका मायका जो है।

मैंने पूछा 'जिस मिट्टी से तुमने चूल्हा पोता, वह कहाँ से आती है?' उसने घूँघट में से ही कहा, 'यहीं मिल जाती है, खोद कर ले आते हैं। आप सांडिया जायेंगे, तो माँ के लिए दूँगी। आप ले जाना, वहाँ नहीं मिलती।'

पतोहू के भोलेपन पर मुस्कराते हुए वृद्ध ने कहा, 'ये लोग मैया के किनारे-किनारे जायेंगे, इन्हें वहाँ पहुँचने में समय लगेगा। फिर ये सामान से वैसे ही लदे हैं, मिट्टी कैसे ले जायेंगे?'

खेत से आते-आते धन्नू को अँधेरा हो गया। साथ में उसका जवान बेटा भी था। रात को अँगीठी के पास की जगह दे दी, तो अच्छी नींद आयी। सुबह वृद्ध इस बात का बराबर रंज करते रहे कि हमने उनके घर का आटा-चावल नहीं लिया, अपने ही राशन से भोजन बनाया। चलने लगे तो अपनी करीब-करीब अंधी आँखों से हमारी ओर स्नेह से देखते रहे। उनके चरणों में माथा टेक कर ही हम आगे बढ़े।

यहाँ से रास्ता खेतों में से था। दूर-दूर तक फैले खेत बड़े ही प्यारे मालूम होते थे— कुछ इतने शान्त, इतने मधुर थे वे। ओस से भीगे अरहर के खेतों की कोमल सुमिष्ट सुगंध हमें पुलकित कर रही थी। खेतों में सियारी और उन्हारी— रबी और खरीफ— दोनों फसलें खड़ी थीं। ज्वार और अरहर सियारी फसल थी जो अभी भी कई खेतों में खड़ी थी। गेहूँ और चने की उन्हारी फसल धरती में से सिर निकाल रही थी। छोटे-छोटे पौधों की समानान्तर पंक्तियों के कारण ये खेत किसी विशाल दस्तावेज की तरह जान पड़ते थे। धरती ने मानो मनुष्य के नाम हरी स्याही से लिख दिया कि तुम्हारा दिया चार महीने में चौबीस गुना करके लौटा दूँगी। बच्चों के प्रति इतनी उदार कोई माँ नहीं।

रास्ते में आम के नीचे सुस्ताने बैठे तो साठे का ध्यान पेड़ में लगे गुब्बारों जैसे आकारों पर गया। ध्यान से देखने पर पता चला कि वे लाल चींटों के घर थे। पेड़ के पत्तों और टहनियों को इनमें चिन लिया गया था और मोम जैसे किसी पदार्थ से जोड़ दिया गया था। क्या मजाल कि पानी की एक बूँद भी अंदर जाये। उत्सुकतावश एक गुब्बारे में एक छोटा-सा छेद किया तो अंदर छोटे-छोटे कई खंड नजर आये। इनमें कोई मंडप होगा, कोई महामंडप, तो कोई गर्भगृह। शायद रंगशाला भी हो। तभी कुछ चींटे इकट्ठे

हो गये, देख-दाख कर चले गये और दूसरे चींटों को बुला लाये। ये शायद उनके मिस्त्री थे। छेद होने के कारण जो परत लटक गयी थी, उसे उन्होंने भीतर से खींचा और देखते ही देखते इस सफाई से जोड़ दिया कि पता तक न चले।

यह भले ही उनकी 'पर्णकुटी' हो, पर चींटों के हिसाब से बहुत बड़ी थी और भवन-निर्माण-कला का अद्‌भुत नमूना थी।

भटेरा का मंदिर नर्मदा-तट पर है। वहाँ कमरा मिल गया तो निश्चिंत हो गये। यहाँ नर्मदा में बड़ी नाव चल रही थी। नाव से बैलगाड़ियाँ पार हो रही थीं। बैलगाड़ियाँ आधी नाव में और आधी नदी में रहतीं, बीच में अनाज के बोरे और सवारियाँ, कोने में बैल। एक मल्लाह केवल एक बाँस के सहारे पूरे काफिले को एक पार से दूसरे पार कर देता।

मंदिर के पुजारी के परिवार में कोई नहीं। सामने तट के गाँव से उनके भाई की बच्ची नाव से आती है और खाना बना जाती है। बातें होने लगीं तो उन्होंने एक संस्मरण सुनाया, 'कोई दस बरस पहले की बात है। इसी कमरे में एक परकम्मावासी बाबा ठहरा था। एक दिन उसे तेज बुखार आया और उसका कोई इलाज हो सके, इसके पहले ही मर गया। उस दिन होली थी, फागुन की पूर्णमासी। यहाँ अच्छा मेला भरा था। मेले में खबर फैल गयी कि बाबा मर गया। देखते-देखते मेला उजड़ गया, अकेला मैं रह गया। कोटवार थाने में रिपोर्ट लिखाने गाडरवारा गया था। यहाँ मौत का सन्नाटा। रात को अकेले सोने की हिम्मत नहीं हुई तो गाँव चला गया। दूसरे दिन दोपहर को कोटवार आया, पंचनामा हुआ और कोई चौबीस घंटे बाद दाह-संस्कार हुआ। उसके झोले में उसका पता था, घर वालों को खबर भिजवायी। वे रोते-कलपते आये और रोते-कलपते चले गये।'

घर से दूर, अपरिचितों के बीच, मरना कैसा लगता होगा। मरना सुखद तो नहीं, फिर भी अपने घर में कुटुंबियों के बीच मरना सुखद होता है। नयी जगह में, यहाँ तक कि अच्छे से अच्छे अस्पताल में भी, कोई मरना नहीं चाहता। जन्म चाहे अस्पताल में हो, मृत्यु लेकिन घर में हो।

सुबह उठे तो मंदिर का आँगन स्त्री, बच्चों और पुरुषों से भर गया था। कई खुले में रजाई ओढ़े सो रहे थे, कुछ आग ताप रहे थे। किनारे बैलगाड़ियाँ खड़ी थीं और बैल पगुरा रहे थे। रातोंरात यह क्या हो गया?

आज पूर्णिमा है— कार्तिक पूर्णिमा। आज यहाँ मेला भरेगा। सिर्फ यहीं नहीं, समूचा नर्मदा-तट आज छोर से छोर तक हजारों मेलों से गूँज उठेगा। शोकलपुर में बहुत बड़ा मेला भरेगा। आज हम वहीं जा रहे हैं। दोपहर तक पहुँच जायेंगे।

मैं और पंडित आगे थे। साठे और दुल्हानी पीछे रह गये। ऐसा हो जाता था, लेकिन फिर मिल जाते थे। पर आज नहीं मिले। हम रुक जाते, देर तक इन्तजार करते, फिर भी वे न आते तो आगे बढ़ जाते।

ज्यों-ज्यों शोकलपुर पास आता गया, मेले में जाने वालों की भीड़ बढ़ती गयी। हँसते-चहकते लोगों के दल के दल चले जा रहे थे। रंग-बिरंगे वस्त्र पहने स्त्रियाँ मोरनियाँ-सी बाँकी चाल से जा रही थीं। सभी बहुत खुश थे, निश्चिंत और उमंग-तरंग भरे। केवल मैं ही चिंतित था।

दोपहर को शोकलपुर पहुँचे। यहाँ शक्कर नर्मदा में मिलती है। इसी संगम पर मेला भरता है। नर्मदा के दोनों तट पर भारी भीड़ थी। साठे और दुल्हानी अभी तक नहीं आये थे, इसलिए मन व्यग्र था। मेरा विचार था कि वे हमारे बिना शक्कर पार नहीं करेंगे, इसलिए हम वहीं बैठ गये। पंडित से कहा कि तुम जाकर मेला देख आओ, यदि वे आये होंगे, तो मिल जायेंगे।

कोई एक घंटे के बाद पंडित खाली हाथ लौटा। मेरी चिन्ता बढ़ गयी। तभी एकाएक सभी नावें तेजी से नदी में एक जगह इकट्ठी होने लगीं। मछुए जाल फैलाने लगे, गोताखोर गोते लगाने लगे। पता चला कि नहाते समय दो युवक डूब गये हैं, उन्हीं को बचाने के प्रयास किये जा रहे हैं।

मेरा दिल बैठ गया। अपने आपको कोसने लगा। क्यों साठे और दुल्हानी को पीछे छोड़ आया, थोड़ी देर रुक जाता तो कौन-सा अनर्थ हो जाता। आखिर रहा न गया तो मेले की पुलिस चौकी की ओर चला। शक्कर में उतरा। धारा के मध्य तक पहुँचा ही था कि सामने दुल्हानी!

मानो दीपक जल उठा और अँधेरा दूर हो गया। शक्कर मुझे शक्कर से भी मीठी जान पड़ी। साठे सामान के पास बैठा है, दुल्हानी बड़ी देर से हमें खोज रहा है। वे शक्कर के उस पार थे, हम इस पार, और भीड़ भी खूब थी, इसलिए ढूँढ़ने में इतना समय लगा। चारों इकट्ठे हो गये। ऊँची कगार पर बैठकर मेला देखने लगे।

डूबने वाले दो भाई थे। इस बीच गोताखोरों ने छोटे भाई को बचा लिया था। लेकिन बड़े भाई का शव ही निकला। उसके परिवार की स्त्रियों का क्रन्दन देखा नहीं जाता।

रात संस्कृत पाठशाला में रहे। वहीं पूरी बात का पता चला। पास के गाँव का एक परिवार मेले में आया था। इस तट पर नदी एकदम गहरी है। तैरना कोई जानता न था, इसलिए उस पार गये। वहाँ रेत है, नदी भी गहरी नहीं। वहीं दो भाई नहा रहे थे। इतने में छोटे भाई का पैर चोर-रेता में धँसने लगा। ज्यों-ज्यों वह निकालता, त्यों-त्यों अधिक धँसता। वह चिल्लाया,

तो बड़ा भाई बचाने दौड़ा। इसी में डूब गया। विदिशा के इंजीनियरिंग कॉलेज के तृतीय वर्ष का छात्र था।

मौत की घड़ी कभी-कभी रात के चोर की तरह आती है और पलक झपकते अपने शिकार को ले जाती है।

आज तक हम रेत को सुरक्षित समझते थे। पर आज पता चला कि रेत में भी एक चोर-रेत होती है, जो अंदर से पोली होती है और प्राणलेवा हो सकती है।

यहाँ से चले तो मन उदास था। पहले कभी इतने बोझिल मन से नहीं चले थे। दोपहर को खिरैटी पहुँचे। नर्मदा के किनारे एक पेड़ के नीचे खाना बनाने बैठे तो पानी की जरूरत पड़ी। लेकिन नदी की धारा उस तट पर थी और बीच में रेत का विस्तृत पाट। जब भी हमें पानी की जरूरत होती तो नदी की धारा बराबर उस तट पर होती!

दो स्त्रियाँ नहाकर लौट रही थीं। मंदिर में चढ़ाने के लिए एक स्त्री लोटा भरकर जल ला रही थी। सोचा, इस लोटे का जल मिल जाये तो दाल चढ़ा दी जाये। उस स्त्री से पानी माँगा, तो उसने तुरंत दे दिया। थोड़ी देर के बाद इसी तरह एक पुरुष निकला। मुझे उम्मीद थी कि वह भी हमें पानी दे देगा। लेकिन उसने दो टूक जवाब दिया— मुझे मंदिर में जल चढ़ाना है— और आगे बढ़ गया।

बहन! उस दिन तूने भगवान को जल नहीं चढ़ाया। पर मेरे भीतर से कोई कहता है कि तेरा नागा नहीं हुआ।

नदी से एक बैलगाड़ी आती दिखी। उस पर पानी से भरा बड़ा ड्रम रखा था। साथ में कसेड़ी भी थी। गाड़ीवाले से कहा तो उसने पानी से भरकर कसेड़ी दे दी। हमारा काम बन गया।

रात गाँव के मंदिर में रहे। रात को सोते समय याद आया कि आज से दिसंबर शुरू हो गया। अक्टूबर, नवम्बर में चल चुका हूँ। मन में साध थी कि एकाध बार दिसंबर की ठंड में भी चलना हो। इस बार यह इच्छा अनायास पूरी हो गयी।

सुबह चल दिये। दोपहर का खाना दूधी-संगम के मंदिर में बना। नर्मदा की धारा उस तट पर है। नर्मदा के चौड़े रेतीले पाट को चीरती हुई दूधी उस तट पर जाती है, संगम तभी होता है। पाट नर्मदा का, प्रवाह दूधी का! नर्मदा का कोमल रेतीला पाट पाकर दूधी खूब पसर गयी है।

दूधी को पार करते ही हम नरसिंहपुर जिले से होशंगाबाद जिले में आ

गये। नरसिंहपुर जिले में हम किस तरह एक ही धक्के में आ गये थे, यह सहज ही याद हो आया।

रात खैराघाट की पांथशाला में रहे। बरामदे में सामान रखा। वहाँ एक नागाबाबा बैठा था। दूर एक औरत सिर झुकाये बैठी थी। वह थकी और परेशान लग रही थी, मानो लंबी बीमारी के बाद उठी हो। थोड़ी देर में उसने सिर ऊँचा किया तो— यह तो वही माँ थी!

हम माँ-बेटे को प्रायः भूल चुके थे। तभी माँ से मिलना हुआ। 'तुम्हारा बेटा कहाँ?'

'वह मुझे छोड़कर चला गया।' कहकर सुबकने लगी।

बेहद ठंड थी। हम कमरे में भी ठीक से सो नहीं सके। बार-बार नींद खुल जाती। एक बार नींद खुली तो नजर सीधे चाँद पर गयी। छप्पर में एक छेद था, उसी में से दिखाई दे रहा था। परसों पूर्णिमा थी, लेकिन ठंड के मारे चाँदनी को भूल ही गया था। किन्तु आज तो भक्त के घर भगवान आये हैं। मैं शर्मिन्दा हुआ। क्षमा याचना के साथ उस आसमानी जादूगर को निहारने लगा। पूर्णमासी जैसा ही पूर्णकुंभ था, केवल ठोड़ी पर खरोंच खा गया था। एक झलक दिखा कर वह खिसक गया तो मैंने भी मुँह ढाँप लिया। ठंड के कारण मेरा सौंदर्य-बोध मंद पड़ गया था।

नागाबाबा ने बाहर धूनी रमा रखी थी। लेकिन वह स्त्री मामूली चादर ओढ़े रात भर पड़ी रही। जाने कैसे नींद आयी होगी। सबेरे नागाबाबा उससे कह रहा था, 'पशु-पक्षी भी अपना हित-अहित समझते हैं, घोंसला बनाते हैं। तू तो अपना हित-अहित भी नहीं समझती। शाम को लकड़ियाँ बटोर कर रात को आग जलाती, तो ठंड में ठिठुरना न पड़ता।' लेकिन वह हाथ-पैर हिलाना नहीं चाहती थी। उसकी एक ही टेक थी— मेरा बेटा मुझे छोड़कर चला गया।

रोज सुबह सबको जगाना पड़ता था। आज सभी अपने-आप उठ बैठे। थोड़ी देर में सांडिया पहुँच जायेंगे। हमारी इस बार की यात्रा वहाँ समाप्त हो जायेगी। सभी को घर याद आ रहा था।

सांडिया दिखाई देने लगा। नर्मदा की मुख्य धारा जो इस ओर थी, उस तट को जाने लगी। लेकिन एक छोटी-सी धारा इसी तट पर रह गयी। हम इसी के साथ आगे बढ़े। थोड़ी देर के बाद ध्यान में आया कि यह धारा जा नहीं रही है, आ रही है! मतलब यह कोई दूसरी नदी है। एक ही पाट में विरुद्ध दिशाओं में बहती दो नदियाँ! नदियों की ऐसी आवा-जाही तो देखी नहीं थी। नर्मदा की इस नन्ही सहेली का नाम है अंजनी। नर्मदा से

मिलने उस तट पर नहीं जाती। इसी तट पर बहती है और इसी तट पर मिलती है।

यहीं वह बेटा मिल गया। हमने बताया, तुम्हारी माँ तुम्हारे लिए रो रही है, तुम उसे छोड़कर चले आये।

किसी बात पर दोनों में झगड़ा हो गया था। नाराज होकर वह माँ को छोड़कर चल दिया था। लेकिन अब उसका अपराध-बोध जागा है। माँ को लेने वापस जा रहा है।

सांडिया में नर्मदा पर लकड़ी का कच्चा पुल बन रहा था। वहीं स्नान किया, इस बार की यात्रा समाप्त की और घर के लिए रवाना हुए। जाने के पहले विदा लेते हुए मैंने कहा, 'माँ नर्मदे! रोज सुबह उठकर तुम्हें प्रणाम करता हूँ। लेकिन आज नहीं किये। आज तीन दिसम्बर है— मेरे गुरु आचार्य नन्दलाल वसु का जन्म-दिवस। जन्म-दिवस ही नहीं, आज से उनका जन्म-शताब्दी वर्ष शुरू हो रहा है। शांतिनिकेतन में उन्हीं के चरणों में बैठकर कला की शिक्षा ग्रहण की। उन्हीं से प्रकृति को प्यार करना सीखा। यदि उनसे शिक्षा न मिली होती, तो तेरी परिक्रमा करना मुझे शायद ही सूझता। इसलिए आज तो 'बलिहारी गुरु आपकी, जिन नर्मदा दीनी दिखाय!'

10. सांडिया से होशंगाबाद

नर्मदा भरपूर बह रही है। खूब पानी बरसा है इस साल। कहते हैं, ऐसी वर्षा पिछले सौ सालों में नहीं हुई। वर्षा अभी-अभी समाप्त हुई है। नर्मदा का पानी अभी भी मटमैला है। यहाँ नर्मदा पर लकड़ी का कच्चा पुल बनता है। लेकिन अभी उसके बनने में देर है। पानी कम हो, तो बने।

नारियल फोड़ने तक के लिए पत्थर नहीं था। एक नाव पर नारियल फोड़ा और 'नर्मदे हर!' के घोष के साथ सांडिया से चल पड़े। दिन था 19 अक्टूबर 1983 और साथी था फूलसिंह। फूलसिंह गोंड़ नौजवान है— ऊँचा-पूरा, हट्टा-कट्टा। शायद ही कभी बोलता है, मानो बोलना जानता ही न हो।

रात माछा के मंदिर में रहे। मंदिर नर्मदा की कगार पर है, गाँव दूर है। शाम को मैं कगार पर खड़ा नर्मदा को देख रहा था। पास के पेड़ों में पक्षी चहचहा रहे थे। देखने को नर्मदा का विस्तृत प्रवाह, सुनने को पंछियों का समवेत गान और चुपचाप ढलती शाम। खूब अच्छा लग रहा था। तभी दूर से कुत्तों का भौंकना सुनाई दिया। वे इस बुरी तरह से भौंक रहे थे, मानो एक-दूसरे को चीरकर रख देंगे। सारा मजा किरकिरा हो गया। खुशी के साथ प्रायः दुःख का पुछल्ला लगा रहता है।

सुबह आगे बढ़े। थोड़ी देर में कुब्जा आ गयी। कुब्जा और नर्मदा के ऐन संगम पर है अजेरा। एकदम खड़ी कगार पर होने के कारण यह गाँव किसी हवामहल-सा जान पड़ता था। लगता था, फूँक मारते ही झोपड़ियाँ नीचे पानी में लुढ़क जायेंगी— कुछ कुब्जा में, कुछ नर्मदा में।

हमने कुब्जा पार करनी चाही, लेकिन कैंपा या कीच-कादा इतना अधिक था कि पैर रखते ही अंदर धँसते। नर्मदा से मिलने और उसके संग हो लेने की उतावली में कुब्जा मानो अपना असबाब यहीं भूल गयी है!

पास में एक किसान हल चला रहा था। उसने बताया कि दूर वह जो नीम का पेड़ दिखाई दे रहा है, लोग वहाँ से कुब्जा पार करते हैं। बरसात में नर्मदा और कुब्जा की धाराएँ एक हो जाती हैं और इन खेतों की जगह पानी ही पानी लहराता है। अजेरा बरसात में टापू बन जाता है।

उन खेतों में से, यानी नर्मदा और कुब्जा के दोआब में से चल कर, लंबा घेरा लगा कर, हमने कुब्जा पार की, तब अजेरा आ सके।

शाम को गजनई पहुँचे। सामान से लदे-फँदे थे। गाँव में घुसते ही एक ग्रामीण ने कहा, 'बड़ा आडंबर रखे हो!'

सारा आडंबर एक किसान के घर रखकर नर्मदा तट गये। वहाँ बैठकर नर्मदा की शोभा देखने लगे। थोड़ी देर में सामने से एक नाव आयी और उसमें से एक सज्जन उतरे। उनसे बातें होने लगीं तो कहने लगे कि गजनई में मेरी ससुराल है। चलिए, वहाँ आपके रहने की व्यवस्था हो जायेगी।

हम खेतों में से जा रहे थे। मैंने कहा, 'खेत कितने अच्छे लग रहे हैं!'

'खेत अच्छे लग रहे हैं क्योंकि खेतों में हल चल रहे हैं, बोनी हो रही है। अलसाये खेत जाग उठे हैं। अभी खलिहान अच्छे नहीं लगेंगे, वे सोये पड़े हैं। जब फसल कटकर खलिहान में पहुँचेगी, तब खलिहान अच्छे लगेंगे। उस समय खेत बेढंगे लगेंगे।' इतना कहकर ऋतु-वर्णन संबंधी एक कविता धाराप्रवाह सुना दी। मैंने कहा, 'आप पढ़े-लिखे जान पड़ते हैं।'

'चौथी तक पढ़ा हूँ।'

'कुछ और सुनाइए।'

'पाठ एक : ईश-प्रार्थना' कहकर उन्होंने पूरी प्रार्थना सुना दी। 'पाठ चौदह : मूर्ख लड़का' कहकर मूर्ख लड़के की कहानी सुना दी। 'पाठ चवालीस : रामायण के दोहे' और दोहे सुना दिये। एक लंबी कविता के रूप में शेखचिल्ली की कहानी सुनायी। हर बार पहले पाठ का क्रमांक, फिर पाठ का शीर्षक, फिर पूरा पाठ! कोई चालीस बरस पहले पढ़े पाठ उन्हें क्या खूब याद थे!

'आपको तो पाठों के क्रमांक तक याद हैं!'

'शुरू में मैंने जो ऋतु-वर्णन सुनाया था, वह पाठ चौसठ है!'

अब, पलट कर वे यदि मुझसे कहते कि आप तो पढ़े-लिखे हैं, अब आप ही कुछ सुनाइए, तो मैं उन्हें– कवि के आश्रम में पांच वर्ष रहने के बावजूद— एक भी कविता न सुना पाता। अच्छा हुआ कि उन्होंने मुझसे ऐसा कुछ नहीं पूछा और मैं शर्मिन्दा होने से बच गया।

मेरी मानसिकता कुछ ऐसी रही है कि जल्दी-जल्दी पढ़ो, पढ़कर आगे का पढ़ो और जब यह सब पढ़ना पूरा हो जाये, तो दिमाग खाली का खाली! पर अब सोचता हूँ कि बहुत उदरस्थ करने के बजाय थोड़ा कंठस्थ करना ज्यादा अच्छा है।

जिस घर में हम सामान रख कर गये थे, वही उनकी ससुराल थी। वहाँ हमारा रहने के साथ-साथ भोजन का प्रबंध भी हो गया।

सुबह आगे बढ़े। रेवावनखेड़ी में नर्मदा में एक नाव देखते ही सदा चुप रहने वाला फूलसिंह बोल उठा, 'अरे, इसमें तो परदा लगा है!'

परदानशीन नाव! इस गोंड़ नौजवान ने कभी ऐसी नाव नहीं देखी थी। मैंने कहा, 'इस परदे को पाल कहते हैं। इसमें हवा भरती है तो नाव चलती है, फिर खेना नहीं पड़ता।'

इसके बाद पड़ा ईश्वरपुर। ईश्वरपुर को राइन नदी ने तीन ओर से घेरा है। राइन को दो बार पार करके हम आगे बढ़े। तीसरी बार संगम के पास पार करना था। लेकिन कैंपा देखकर छक्के छूट गये। होता यह है कि नर्मदा में जब बाढ़ आती है, तो सहायक नदी का पानी थम जाता है। इस रुके हुए मटमैले पानी की मिट्टी धीरे-धीरे प्रवाह के दोनों ओर नीचे बैठती जाती है और कैंपा या कीच-कादा बनकर रह जाती है। यह प्रायः संगम-स्थल पर होता है। तब फेरा लगाकर नदी पार करने के सिवा और कोई चारा नहीं।

देनवा पार करते समय तीन परकम्मावासियों का साथ हो गया। पचहत्तर साल के वृद्ध दादू, पचपन के अधेड़ कक्का और अट्ठाइस का नौजवान रम्मू। दादू और कक्का मामा-फूफा के लड़के भाई हैं, रम्मू इनका भतीजा है। खाते-पीते किसान हैं। उनके मुँड़े हुए सिर बता रहे थे कि परकम्मा इन्होंने अभी-अभी उठायी है। ज्यों-ज्यों परकम्मा आगे बढ़ती है, जटाजूट भी बढ़ते जाते हैं।

अभी तक हम दो थे, अब पाँच हो गये— पाँच पांडव! तीन कुंती के, दो माद्री के!

और दोपहर को हम जिस गाँव में पहुँचे, उसका नाम था पांडवद्वीप!

नर्मदा-तट पर बड़ी चहल-पहल थी। यहाँ से तीन वृद्ध परकम्मा उठा

रहे थे। उन्हीं को विदा करने आये थे उनके सगे-संबंधी। हम बैठे कि एक स्त्री ने कहा, 'महाराज, भोजन तैयार है, आप नहा आइए।'

भोजन हुआ। फिर चलने का समय हुआ। नाते-रिश्तेदार रो-रोकर तीनों को विदाई दे रहे थे। एक बच्ची अपने दादा से लिपट कर सुबकियाँ भर-भर कर रो रही थी और किसी तरह अलग नहीं हो रही थी।

मैंने देखा, हमारा नौजवान साथी रम्मू अपनी आँखें पोंछ रहा है।

रम्मू बाँका नौजवान है। लंबा, सुगठित और खुशमिजाज। बातूनी हद दर्जे का। उतना ही मिलनसार। रास्ते में कहने लगा, 'मेरे दो बच्चे हैं— सात बरस की बेटी, चार बरस का बेटा। उनकी माँ अब नहीं है। बच्चों को भाई के घर छोड़ आया हूँ। उन्हें छोड़ते समय उतना कष्ट नहीं हुआ था, जितना आज हुआ। उस दिन जी कड़ा कर लिया था, बच्चों को सोते हुए छोड़ आया था। आज उस बच्ची को अपने दादा से लिपटकर रोते देखकर मुझे मेरे बच्चे याद हो आये। मैं अपने को रोक न सका, आँसू ढुलक ही आये।'

सप्ताह भर से थमे आँसू मौका पाते ही बाहर आ गये। आँसू को कोई कब कैद कर पाया है।

मारू कब आ गयी, कुछ पता भी न चला। हम अभी किनारे पर ही थे कि रम्मू मारू में उतर गया। कैंपे में चार-छह डग चला ही था कि एकाएक धँसने लगा। जाँघ तक धँसता चला गया। वह बेहद डर गया। उसके मुँह से आवाज तक नहीं निकल रही थी।

अच्छा हुआ कि धँसना रुक गया। हम लोग भी उसे हिम्मत दिलाते रहे। धँसना रुका तो हिम्मत बढ़ी। पहले उसने लाठी निकाली। धीरे-धीरे एक पैर निकाला, फिर दूसरा और वापस आ गया।

'आज मरते-मरते बचा। अंदर ही अंदर चला जा रहा था। रेवामाई ने बचा लिया, वरना मारू तो मुझे मारे डाल रही थी।'

लंबा चक्कर लगाकर मारू पार करने के सिवा और कोई चारा न था। किनारे-किनारे ऊपर की ओर चले। गीले में जो कैंपा मक्खन-सा मुलायम था, सूखने पर वही कच्चे लोहे-सा कड़ा हो गया था, तड़ककर टुकड़ों में टूट गया था और पैरों में काँटों की तरह चुभ रहा था। पचहत्तर साल के वृद्ध दादू का इस सूखी पपड़ियायी धरती पर चलना देखा नहीं जाता। पर उनके मुँह में उफ् तक नहीं।

तभी एक ग्रामीण मिला। उसने कहा कि इतना लंबा घेरा क्यों लगा रहे हैं, उधर मारू जहाँ नर्मदा से मिल रही है, वहाँ जाइए। वहाँ आसानी से पार हो जायेंगे।

असंभव! जब यहाँ इतना कीच-कादा है, तब संगम पर तो और भी अधिक होगा। वहाँ जाना व्यर्थ है। लंबा घेरा लगाकर मारू पार की। फिर पड़ा सतवांसा। इस गाँव में हमारे साथियों के परिचित रहते थे, उन्हीं के घर ठहरे। उन्हें जब मारू-प्रसंग सुनाया, तो हँसकर कहने लगे, अभी दो रोज पहले ही गाँव वालों ने संगम पर बेशरम की डगालें बिछाकर रास्ता बनाया है। आपने नाहक चक्कर लगाया।

एक तो इतना बड़ा चक्कर लगाया, ऊपर से मूर्खों में नाम लिखाया!

शाम को नर्मदा-तट पर पूनो का भरा-पूरा चाँद निकला। धरती दूध से नहा उठी। कौन कहेगा कि दिन की धूप और रात की चाँदनी मूलतः एक है! सूर्य-प्रकाश जब सीधे आता है तो धूप कहलाता है, जब चंद्र-ताल में नहाकर आता है तो चाँदनी कहलाता है!

भोर होते ही चल दिये। नदी-तट की उपजाऊ मिट्टी देखकर मेरे किसान साथी कहते हैं, 'यह मिट्टी सोना उगलती है, सोना!'

इस तरफ बबूल बहुत हैं। रम्मू या कक्का बबूल की पतली डगाल को पकड़कर झटके से खींचते हैं तो डगाल पेड़ से अलग। फिर हाथ से ही काँटे निकाल देते हैं, दतौन तैयार! खाना भले ही रूखा-सूखा मिलता हो, दतौन रोज ताजादम मिलती है!

शाम को बछवाड़ा पहुँचे। गाँव के चबूतरे पर सामान रखा। परकम्मावासी साथी सदाव्रत लेने निकल गये। मैं आश्रय की खोज में था। तभी एक शिक्षक आये। उनकी गोशाला खाली पड़ी थी— लिपी-पुती और साफ-सुथरी। वह हमें दे दी।

शाम को बातें होने लगीं। कहने लगे, 'आप अच्छा काम कर रहे हैं। लेकिन आपको अपने साथ एक टेप-रिकार्डर जरूर रखना चाहिए। जहाँ कहीं अच्छे लोकगीत सुनने मिले, तुरंत टेप कर लिया।' इतने में घर से बुलौआ आया तो घर चले गये। हम लोगों के लिए चाय-दूध ले आये। फिर कहने लगे, 'आप स्कैच करते हैं यह ठीक है, पर आपको एक कैमरा भी रखना चाहिए। हर बार स्कैच करने का समय कहाँ!'

बीच-बीच में उठकर घर चले जाते। जब भी आते नया सुझाव लेकर आते। इस बार आये तो कहने लगे, 'आप जब परिक्रमा कर रहे हैं, तो कम से कम तीन घर से भिक्षा जरूर माँगनी चाहिए।'

कैमरा और टेपरिकार्डर भी रखूँ और भिक्षा भी माँगू- भला कौन देगा भिक्षा!

लेकिन अबकी जो सुझाव लेकर आये, वह तो एकदम दिव्य था। 'आप राशन लेकर चलते हैं यह ठीक है, लेकिन आपको थोड़े काजू-किशमिश

लेकर चलना चाहिए। खूब भूख लगी हो और भोजन बनने में देर हो, तो पचास-पचास ग्राम काजू-किशमिश खा लिये।'

क्या ही अच्छा हो यदि भिक्षा में लोग हमें काजू-किशमिश ही दें! तब इनके दो सुझावों का एक साथ पालन हो जायेगा। हालाँकि काजू-किशमिश खाये इतना अरसा हो चुका है कि अब तो यही समझ में नहीं आयेगा कि इनमें कौन काजू और कौन किशमिश!

सबेरे चल दिये। गनेरा के बाद नर्मदा का साथ छूट गया। अब कोई दस किलोमीटर तक नर्मदा का साथ नहीं रहेगा। उसने अपना पाट बदल दिया है, दूर चली गयी है। मानो पुराना घर छोड़कर नये घर में रहने गयी है। लेकिन परकम्मावासी इस पुराने सूखे पाट को लाँघते नहीं। इसलिए हमने भी इसे लाँघा नहीं, इसी के संग-संग चले। इसे बूढ़ी नर्मदा कहते हैं। बरसात अभी अभी खत्म हुई है, इसलिए इस पुराने पाट में कहीं-कहीं पानी भरा था तो कहीं खेती हो रही थी।

दोपहर को गौघाट पहुँचे। कैसा एकांत स्थान! वृक्षों की घटा के कारण यह स्थान किसी आश्रम-सा लगता था। पेड़ों पर हजारों तोते मंडरा रहे थे। नहाने के लिए कुंड था। यहाँ परकम्मावासियों का अच्छा जमघट था। लेकिन ये सभी यहाँ से सीधे होशंगाबाद चल देंगे। नर्मदा के किनारे-किनारे जाने से बड़ा फेरा लगाना पड़ता है।

हम बूढ़ी नर्मदा के संग आगे बढ़े। बाँयी ओर लाल-पीली या कत्थई रंग की उठती-गिरती टेकरियाँ साथ चल रही थीं। दाहिनी ओर नर्मदा का पुराना पाट था जो अब सपाट हो गया था। मन में कैसा-कैसा लग रहा था— नर्मदा नहीं भी है और है भी!

रात बीकोर में रहे। अहारखेड़ा से नर्मदा फिर मिल गयी। उस तट से पहाड़ियों ने झाँकना शुरू कर दिया। अब हमारी पगडंडी ऊबड़-खाबड़ टीलों में से थी और झाड़ी भी शुरू हो गयी थी। सूरजकुंड पहुँचते दोपहर हो आयी। मोहक मोड़ लेती नर्मदा मानो यहाँ एकांतवास कर रही है। नदी-तट पर पटिया टमटनाते पशुओं के झुंड और दो-तीन ग्वालों के अलावा और कोई नहीं था।

ऊपर एक कुटी में सौम्य स्वभाव के एक युवा संन्यासी रहते थे। उनसे बातें होने लगीं तो कहने लगे, 'छह-सात बरस पहले की बात है। एक दिन एक संन्यासी आये और एक पेड़ के नीचे आसन जमाया। मैं नहाकर आ रहा था। मैंने उन्हें देखा, पर वे कुछ नहीं बोले तो मैं भी चुप रहा। शाम हो गयी। अब मुझे चिंता हुई। जाकर देखा तो वे वैसे ही बैठे थे। मैं उन्हें

आदरपूर्वक यहाँ लिवा लाया। उनकी सारी व्यवस्था की। वे यहाँ कोई पांच-छह दिन रहे। बंगाल के थे और वेदान्त के प्रकांड विद्वान थे। मैं भी वेदान्ती साधु हूँ। मुझे उनसे बहुत कुछ सीखने को मिला। लेकिन मैं न जाता, तो वे स्वयं न आते। किसी से कुछ माँगते नहीं थे, भिक्षा तक नहीं।'

शाम को गोरा पहुँचे। बाढ़ में यह गाँव दो बार तबाह हो चुका है। अब नदी से दूर चला गया है, नदी किनारे छह-सात घर बचे हैं। नर्मदा-तट पर बनी कुटी में रात रहे। सुबह उठकर देखा, नर्मदा का पानी सुनहरा हो रहा था। थोड़ी देर में सूरज का ललछौहां गोला निकला। ज्यों-ज्यों वह ऊपर चढ़ता गया, पानी में उसके प्रतिबिंब की चौड़ाई तो वही रही आयी, लेकिन लंबाई बढ़ती चली गयी और देखते-देखते उसने एक दमकते स्तंभ का रूप ले लिया।

यह तो मानो सूर्य का कीर्त्ति-स्तंभ! फिर तो मैं रोज सुबह-शाम सूर्य-चंद्र के सद्यनिर्मित कीर्त्ति-स्तंभ देखता। संसार के सभी कीर्त्ति-स्तंभ एक न एक दिन ढह आयेंगे, केवल यही दो हैं, जो 'यावच्चंद्रदिवाकरौ' रहेंगे।

यहाँ से आगे बढ़े। खेतों में ज्वार इतनी ऊँची थी कि पूरा हाथी गायब हो जाये। चांदला के बाद तवा नदी आयी। हम तवा के किनारे-किनारे आगे बढ़े। तवा और नर्मदा के संगम के निकट एक मंदिर दिखाई दे रहा था। पास लगता था लेकिन वहाँ पहुँचते पसीना आ गया। यहाँ नर्मदा में खूब चट्टानें हैं। कितने दिनों के बाद जलरव सुनाई दिया! उस तट के पहाड़ एकदम पास आ गये हैं। पहाड़ की छत्रछाया में दो बड़ी नदियों का संगम बड़ा मनोरम लग रहा था।

तवा का पाट बहुत चौड़ा है, नर्मदा से भी चौड़ा और उसमें पानी भी काफी था। बड़ी मुश्किल से तवा पार की, संगम में स्नान किया और बांद्राभान पहुँचे। यहाँ से सड़क मिल गयी। होशंगाबाद अब ज्यादा दूर नहीं। बाँयी ओर तवा, दाहिनी ओर नर्मदा, बीच में सड़क। दो तरफ दो नदियाँ— एक आ रही है दूसरी जा रही है— और बीच में हमारा रास्ता।

होशंगाबाद पहुँचते-पहुँचते साँझ हो आयी। सीधे यहाँ के सुप्रसिद्ध सेठानीघाट गये। यहाँ बहुत सारे परकम्मावासी थे, कई तो बाहर पेड़ के नीचे ठहरे थे। हमें एक धर्मशाला में अच्छी जगह मिल गयी तो यहाँ हमने दो रात के लिए लंगर डाल दिया।

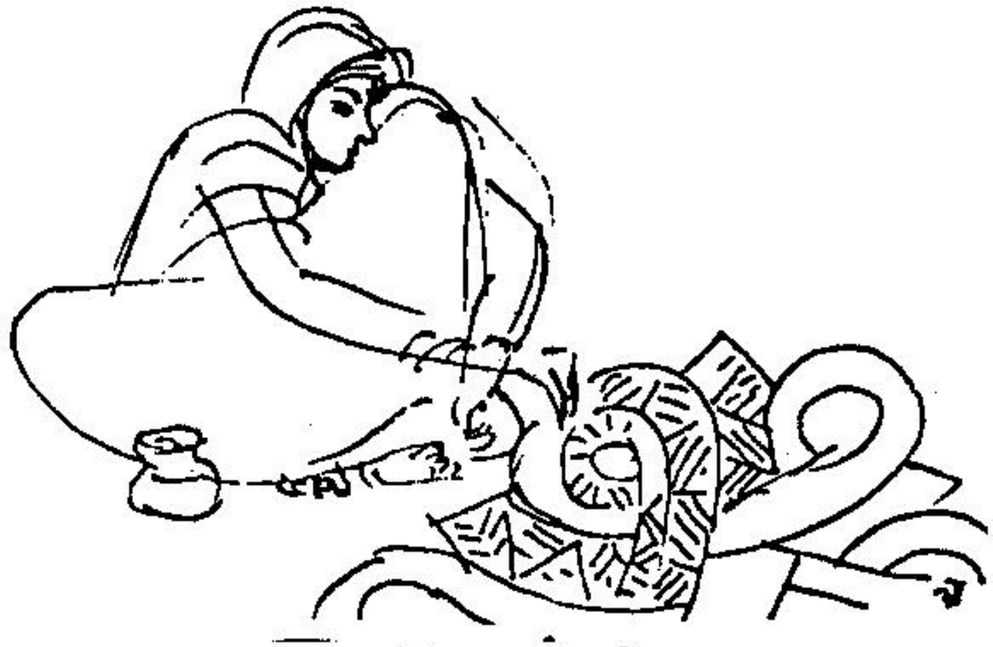

11. होशंगाबाद से हंडिया

होशंगाबाद लम्बोतरा शहर है, यहाँ के घाट हमारे देश के सर्वोत्तम घाटों में से हैं। नर्मदा का पाट जितना चौड़ा है, घाट उतने ही विशाल हैं, मानो उसके नाप के बने हों। नदी में हिचकोले खाते डोंगे या पालवाली नावें इस तट से उस तट चक्कर लगाती रहती हैं।

आज से कोई बीस बरस पहले जब यहाँ आया था, तब घाट पर कितनी पनिहारिनें नजर आती थीं। अकेली या झुंड में सिर पर तीन-तीन गगरी रखे जब वे एक-एक सीढ़ी चढ़तीं तो पानी छलक-छलक कर गिरता और उनके अंग-अंग से लावण्य झरता। प्रायः दिन भर उनका ताँता लगा रहता। तब ये घाट कितने सजीव लगते थे!

अब शहर में नल आ गया है, पनिहारिनें इक्की-दुक्की ही नजर आती हैं। दिन की रौनक में कमी आ गयी है लेकिन साँझ के समय स्त्रियाँ जब दीप जला कर नर्मदा में प्रवाहित करती हैं, या मन्दिरों की आरती का स्वर पानी पर तैरता हुआ दूर-दूर तक फैल जाता है, या कहीं कथा-वार्ता या भजन-कीर्त्तन की ध्वनि गूँजती है, या कहीं कोई भक्त 'त्वदीय पाद पंकजं नमामि देवि नर्मदे' का स्तोत्र-पाठ करता है, तो पुरानी रौनक लौट आती है।

रात को घाट पर किसी का प्रवचन हो रहा था। पास बहती नीरव नर्मदा और घाट की सीढ़ियों पर बैठकर शांतिपूर्वक सुनते श्रोता। मुझे लगा, यहाँ तो नाटक भी खेला जा सकता है, नृत्य का आयोजन भी हो सकता है। इन घाटों से बढ़कर खुला रंगमंच और क्या हो सकता है।

और सामने तट का पहाड़ मानो मंच के पीछे का रेशम का परदा है।

यहाँ दो रात का विश्राम मिल गया तो दूसरे दिन खूब चले। शाम को केवलारी और नर्मदा का संगम पड़ा। इसी संगम पर है खोकसर। यहाँ मंदिर में रहने की व्यवस्था हो गयी। मंदिर के आँगन में गौरीशंकर महाराज की समाधि बनी है। गौरीशंकर नर्मदा के परम भक्त थे। उन्होंने नर्मदा परिक्रमा की महिमा को खूब बढ़ाया। नर्मदा-खंड में आज भी उनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

सुबह आगे बढ़े। इस ओर नर्मदा खूब फैल गयी है। किनारों की ऊँचाई कम है। बाढ़ के समय पानी दूर-दूर तक फैल जाता है। पिछली बाढ़ों में कई गाँव तबाह हो चुके हैं। कुछ नदी-तट से दूर चले गये हैं।

तीसरे पहर की बात है। नानपाघाट पार कर चुके थे। फूलसिंह, कक्का और दादू आगे थे। मैं थोड़ा पीछे था, रम्मू मेरे साथ था। मैंने कहा, 'रम्मू, आओ, जरा नर्मदाजी के प्रवाह को देखें।' पर वह नहीं आया, आगे बढ़ गया। मैं अकेला कगार तक गया, नर्मदा-प्रवाह को एक झलक देखा और वापस पगडंडी पर आकर आगे बढ़ा।

थोड़ा ही चला था कि सामने पगडंडी पर ही एक मगर को पड़ा पाया। मैं ठिठककर खड़ा हो गया, उसे एकटक देखता रहा। वह निश्चेष्ट पड़ा था। मैं समझा कि वह मरा पड़ा है, इसलिए उसकी ओर बढ़ा। लेकिन बढ़ा ही था कि वह चारों पैर से नर्मदा की ओर तेजी से भागा और झाड़-झंखाड़ में ओझल हो गया। वह जमीन से घिसटता हुआ भागा था इसलिए बड़ा शोर हुआ था।

मैं बेहद डर गया। मगर के पानी से इतनी दूर, ऊँचे कगार पर आने की बात मैं सोच ही नहीं सकता था। जमीन पर वह ऐसी तेज दौड़ लगा सकता है, यह भी कल्पना से परे था। वह मुझ पर झपट सकता था या अपनी पूँछ के एक ही वार से मुझे ध्वस्त कर सकता था। लेकिन वह तो डर कर भागा था! मेरा डर खुशी में बदल गया। इतना दुबला हूँ कि मुझसे घर के चूहे तक नहीं डरते। लेकिन आज तो मुझसे डर कर महाबली मगर भाग खड़ा हुआ था! चूहे न डरें, मगरमच्छ तो डरता है!

मगर के भागने से जमीन पर बनी रेखा को— मकर रेखा को— देखता रहा। कर्क रेखा पर रहता हूँ, मकर रेखा तक कैसे जा सकता हूँ।

लेकिन नर्मदा जी की कृपा से आज मकर रेखा अनायास देखने को मिल गयी।

मैं आगे बढ़ा। मैंने सोचा कि मेरे साथियों ने भी इसे जरूर देखा होगा क्योंकि कोई दस मिनट पहले ही तो वे यहाँ से निकले थे। वे हथेड़ नदी की चट्टानों पर बैठे मेरी बाट जोह रहे थे। मैंने जब उन्हें मगर के बारे में बताया, तो वे हैरान रह गये। उन्होंने कोई मगर नहीं देखा था। यह सुनकर मुझे भी कम हैरानी नहीं हुई।

अब रम्मू पछताने लगा। कहने लगा, 'यह तो मगर के रूप में नर्मदा माई ने आपको दर्शन दिये। मैं बड़ा अभागा हूँ। आपका कहना मानता तो मुझे भी मैया के दर्शन होते।'

थोड़ी देर में आँवरीघाट पहुँचे। गाँव तो दूर है, पर नर्मदा-तट पर मंदिर है, वहीं रात रहे। वहाँ रम्मू ने सबसे पूछा, दूध लेने गाँव गया तो वहाँ भी पूछ आया, पर किसी ने नहीं कहा कि यहाँ नर्मदा में मगर है। अब तो उसे पक्का विश्वास हो गया कि वह नर्मदा मैया ही थी, जिसने मगर के रूप में मुझे दर्शन दिये थे।

ऐसी बातों में मेरा जरा भी विश्वास नहीं। मैंने उसे बहुतेरा समझाया कि वह मगर ही था, और कुछ नहीं, लेकिन वह नहीं माना। वैसे मुझे भी इस बात का अचरज हुआ कि जब यहाँ कोई मगर नहीं, तो वह आया कहाँ से?

लेकिन रम्मू के लिए जो चमत्कारिक घटना है, मेरे लिए जो आश्चर्यजनक घटना है, एक प्रकृतिविद् के लिए वही एक बिलकुल सामान्य घटना होगी।

यहाँ से चले। तड़के ही इंदनासंगम पड़ा। रोज दोपहर को स्नान करते थे, लेकिन आज संगम-स्नान के लालच को रोक नहीं सके। बड़ी ठंड थी, फिर भी स्नान किया और आगे बढ़े। घुघरा के पास नर्मदा के बाहुपाश में दो टापू दिखाई दिये। बड़े का नाम जुगला, छोटे का नाम जुगली।

रात पथोरा में रहे। जिस कुटी में हम रुके थे, वहीं सागर-निवासी पति-पत्नी भी रुके थे। वे नर्मदा-परिक्रमा कब की कर चुके हैं, अब ओंकारेश्वर जल चढ़ाने जा रहे हैं। परिक्रमा के दौरान इस गाँव में चातुर्मास किया था, इसलिए गाँव वालों से स्नेह हो गया है। गाँव वालों ने इन्हें रोक लिया है। गाँव की लड़कियाँ पत्नी को घेरे रहती हैं। वह मुझसे कहने लगी, 'मैं जब घर पर थी, तो कोई न कोई बीमारी लगी रहती थी। कभी सिर में दर्द, तो कभी पेट में दर्द। जरा सा पैदल चलती, तो पाँवों में दर्द, फिर बुखार। लेकिन जब से परिक्रमा पर निकली हूँ, सारी बीमारियाँ गायब हो गयी हैं। सारा दिन चलती रहूँ, तब भी कुछ नहीं होता। खूब स्वस्थ-प्रसन्न हूँ। हाँ, दो

छोटे-छोटे बच्चों को घर छोड़ आये हैं, उनकी याद जरूर आती है।'

अगर मैं डॉक्टर होता, तो अपने आधे से अधिक मरीजों को, उनके रोग के मुताबिक, पंदरह दिन से लेकर तीन माह तक की नर्मदा-परिक्रमा प्रिस्काइब करता। कहता, 'आपको दवाई की कोई जरूरत नहीं। ये फायदे के बजाय नुकसान ज्यादा करेंगी। आप नर्मदा-परिक्रमा पर या किसी भी पदयात्रा पर निकल जाइए। इससे आपके तन के साथ मन का स्वास्थ्य भी सुधरेगा।'

रात को पड़ोस के किसी घर से लोकगीत के स्वर आने लगे। सागर-निवासी सज्जन से मैंने कहा, 'चलिए, गीत सुनने चलें।' वे हँसने लगे। 'लगता है, ये गीत यहीं कहीं से आ रहे हैं, लेकिन वे नदी के चौड़े पाट के उस पार से आ रहे हैं। कभी-कभी तो उस तट की बातें तक हवा के साथ बहकर यहाँ आती हैं और साफ सुनाई देती हैं।' उन गीतों की स्वर-लहरियों ने थपकियाँ देकर हमें कब सुला दिया, कुछ पता भी न चला।

भोर होते ही चल दिये। होशंगाबाद से चले आज चौथा दिन है। वहाँ से चलते समय मैंने एक अखबार खरीद लिया था। जान-बूझकर पढ़ा नहीं था, सहेज कर रख लिया था। अब आठ दिन तक अखबार नहीं मिलेगा। इस अवधि को आधा करने के लिए आज चौथे दिन मैंने उसे निकाला और इतमीनान से पढ़ने लगा। वह मुझे ऐन आज का जान पड़ा! यह तो चार दिन पुराना था, नाम और तारीख पर ध्यान न दें, तो दस साल पुराना अखबार भी हमें आज का ही जान पड़ेगा। डकैती, लूट, अपहरण, हत्या, बलात्कार, सत्ता की छीना-झपटी— खबरों की यही तो वह अमरबेल है जो सदा अखबारों पर छायी रहती है।

अगर मैं किसी अखबार का संपादक होता, तो मेरा अखबार रोज न निकलता। जिस दिन ढंग का समाचार न होता, उस दिन अखबार बंद रहता। एक स्थायी सूचना छाप देता कि जिस दिन अखबार न आये, उस दिन समझ लीजिए कि कोई समाचार नहीं। बिना किसी समाचार के अखबार के 12 या 16 पृष्ठ छाप देना मूल्यवान अखबारी कागज की, और पाठकों के समय की, बरबादी ही कही जायेगी।

किन्तु, विडंबना यह है कि यह सब जानते हुए भी हमारे घर में अखबार पढ़ने के लिए मैं ही सबसे अधिक व्यग्र रहता हूँ! होशंगाबाद पहुँचने पर उस दिन का अखबार तो पढ़ा ही, पिछले तीन-चार दिन के अखबार भी देख लिये थे।

शाम को भिलाड़िया पहुँचे। है तो छोटे कद का गाँव, पर काठी उसकी राजधानी की है। बीच में राजपथ जैसा सीधा चौड़ा समतल रास्ता और दोनों

ओर घर। नर्मदा पर छोटा-सा घाट, उसी से लगा मंदिर। मंदिर की परछी में रहे। मंदिर में ही सदाव्रत मिल गया। हमारे साथियों को द्वार-द्वार माँगने जाना नहीं पड़ा।

प्रायः हर गाँव में सदाव्रत मिल जाता है। हाँ, दूध के लिए जरूर माँगने जाना पड़ता है। हमारे तीनों साथी चाय के आदी हैं, कक्का सबसे अधिक। वे रम्मू को दूध के लिए रवाना कर देते हैं। मिलनसार रम्मू कहीं न कहीं से दूध ले ही आता है। रम्मू है भी बड़ा मजेदार, जब देखो तब नाचता रहता है। पगडंडी पर चलते-चलते सहसा नाचने लगता है। गाँव वालों के आगे नाचने में भी उसे कोई संकोच नहीं। कक्का और रम्मू के स्वभाव में बड़ा अंतर है। कक्का गंभीर और कामकाजी हैं, रम्मू फक्कड़ और मस्तमौला। दादू की वजह से दोनों का साथ निभ रहा है, वरना दोनों कब के अलग हो गये होते। दादू बहुत कम बोलते हैं, लेकिन जब बोलते है तो लगता है कोई संत बोल रहा है। 'बढ़िया, ठम्दा, बहुत ठम्दा' यही बोल उनके मुँह से निकलते हैं। मोटी और कच्ची या फिर जली रोटी पाकर भी वे कहते हैं— बहुत बढ़िया।

रात गोदागाँव में रहे। यहाँ गंजाल नर्मदा में आ मिली है। इसी संगम के पास बनी है महंतों की छतरियाँ। यहाँ से नर्मदा बहुत सुंदर दिखाई देती है। यहाँ एक धर्मशाला है, रात उसी में रहे।

छोटी छीपानेर के बाद दोपहर को बजरंगकुटी पड़ी। रात समसाबाद में रहे। यहाँ से आगे बढ़े तो हंडिया में नर्मदा पर बना सड़क का पुल दिखाई देने लगा। पास लगता था, पर काफी दूर है। मार्ग में बहुत से परकम्मावासियो का साथ हो गया। इनमें स्त्रियाँ भी थीं। कहीं सुस्ताने बैठते तो परकम्मावासी सूई या चिमटी से पैरों में लगे काँटे निकालते। कुछेक के खून भी निकल आता, लेकिन दूसरे ही क्षण वे नंगे पैर चल देते।

शाम को बम्होरी पहुँचे। सभी सदाव्रत लेने गये। कुछ दिनों से फूलसिंह भी सदाव्रत लेने चला जाता है। यदि दाता उदार जान पड़ा तो खुद का माँग लेता है और अति उदार लगा तो मेरा भी ले आता है।

सभी बम्होरी में रह गये लेकिन हम पाँच नर्मदा तट पर बनी कुटी में रहे। सुबह आगे बढ़े। हंडिया पहुँचते हमें दोपहर हो आयी। इस पार हंडिया, उस पार नेमावर। यह नर्मदा का मध्य है, नर्मदा के उद्गम और संगम के मध्य में है, इसलिए नर्मदा का नाभि-स्थान कहलाता है। आखिर थोड़ा-थोड़ा करके मैं नर्मदा के मध्य तक पहुँच गया था! मेरी खुशी का क्या कहना।

मन में यह आशा भी बलवती हुई कि जब नर्मदा के मध्य तक पहुँच चुका हूँ, तो नर्मदा मुझे अधबीच नहीं छोड़ेगी। एक न एक दिन समुद्र तक भी पहुँचा देगी।

कल दीवाली है। दीवाली यहीं मनायेंगे। परसों घर लौटेंगे। दादू, कक्का और रम्मू आगे बढ़ जायेंगे। बिछोह का विचार अच्छा नहीं लगता। दो दिन से रम्मू का नाचना-गाना बंद हो गया है। कभी चुप न रहने वाला रम्मू कुछ बोलता ही नहीं। यही हाल हमारा है। पंदरह दिनों के साथ में वे मेरे कितने सगे हो गये हैं।

शाम को पड़ोस के आँगन में घर की बहू रांगोली सजा रही थी। सुहाने आकारों और मधुर रंगों वाली रांगोली से उसका आँगन जगमगा उठा।

दीवाली के दिन सबेरे से ही छकड़ों में बैठकर आसपास के हजारों ग्रामीणों का आना शुरू हो गया। बैलों के झुंड के झुंड आने लगे। ऊँचे-पूरे शानदार बैल। किसान अपने-अपने बैलों को नर्मदा में ले जाते और रगड़-रगड़ कर नहलाते। किसानों की चीख-पुकार, बैलों के गले में बजती घंटियाँ और पानी की छप-छप के कारण वातावरण कैसा गूँज रहा था!

तीसरा पहर होते ही छकड़े, बैल, किसान सब गायब हो गये। शाम का अँधेरा घिरने लगा। मैं नर्मदा तट पर चट्टान पर अकेला बैठा था। दिन को यहाँ कैसा मेला भरा था। शाम होते-होते सब सूना हो गया। इक्का-दुक्का आदमी ही नजर आता था।

तभी दादू आये। साथ में दीये लाये थे। एक दीया जलाकर नर्मदा में प्रवाहित किया। एक मुझे दिया— लो, एक तुम छोड़ो।

यह मेरी पसंद का काम था। दीया लिया, प्रवाह तक गया और प्रज्वलित करने ही वाला था कि अचानक मुझे कुछ याद हो आया। दीया जाकर दादू को वापस कर दिया।

'क्यों?'

'बस, यों ही।'

'फिर भी?'

दादू के बहुत कहने पर मैंने कहा, 'सुनिए दादू जी। आज दीवाली है। ठीक इसी तरह एक दीवाली को मैं अमरकंटक में था। रात के अँधेरे में एक दीया जलाकर नर्मदा कुंड में प्रवाहित किया था और माँ नर्मदा से कहा था— एक दीप तू जलाना, मेरे हृदय में, ताकि भीतर का अँधेरा दूर हो जाये। आज इसे ठीक पाँच साल हो गये। पाँच साल का समय कम नहीं होता। लेकिन नर्मदा ने दीप नहीं जलाया! जलाने की कोई तैयारी भी नजर नहीं आती। इसलिए अब मैं भी दीप नहीं जलाऊँगा। नर्मदा से मैं रूठ गया हूँ।'

दादू हँस पड़े। 'अरे पगले, भीतर का दीया क्या इतनी आसानी से जलता है? एक बार कह देने से जलता है? इसमें पाँच साल क्या, सारा जीवन लग सकता है, नया जन्म भी लेना पड़ सकता है।'

थोड़ी देर के लिए सन्नाटा छा गया। कोई कुछ बोला नहीं। फिर दादू ही बोले, 'बाहर का दीया चट जलता है तो पट बुझता भी है। भीतर का दीया देर से जलता है तो आसानी से बुझता भी नहीं। उसका उजाला देर तक रहता है और दूर तक फैलता है। इसलिए धीरज रखो, जल्दबाजी ठीक नहीं। हिये में उस दीये को पाने की ललक हो, और कदम उस दीये की ओर बढ़ रहे हों, तो इतना काफी है। उठो बेटे, अच्छा काम कभी व्यर्थ नहीं जाता।'

रात्रि की निस्तब्धता में दादू की वाणी किसी मंत्र की तरह गूँज उठी। मुझे मेरी गलती का भान हुआ। मैं रूठता जल्दी हूँ, तो मान भी जल्दी जाता हूँ। अत्यंत प्रसन्न मन से दीप जलाया, भक्ति-पूर्वक प्रवाहित किया और... मेरा आँसुओं से भीगा चेहरा नर्मदा के आँचल में छुपा लिया।

दादू मंद-मंद मुस्करा रहे थे।

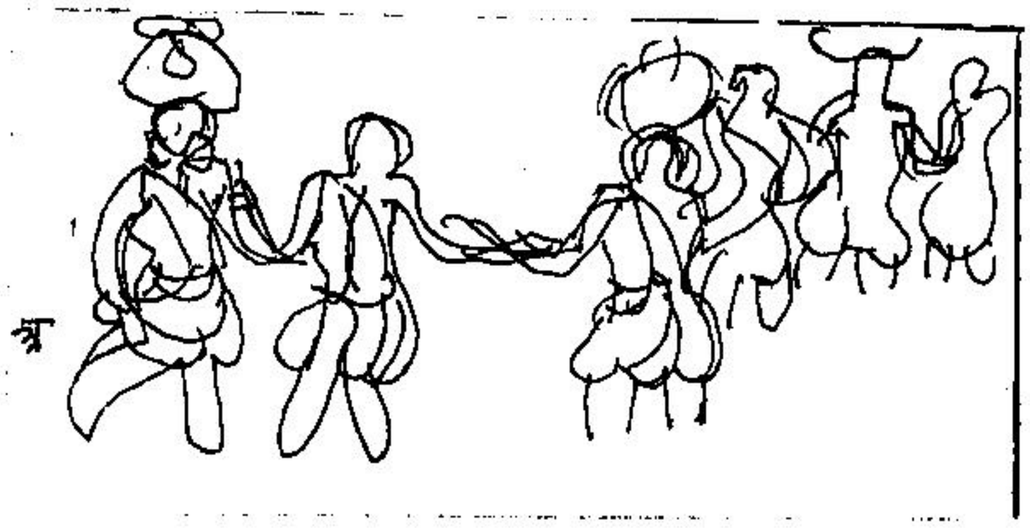

12. हंडिया से ओंकारेश्वर

परिक्रमा दिन पर दिन महँगी होती जा रही है। ज्यों-ज्यों जबलपुर से दूर होता जा रहा हूँ, खर्च बढ़ता जाता है। जिसे साथ ले जाता हूँ, उसका पूरा खर्च और अच्छा पारिश्रमिक देना पड़ता है। और इस साल जेब बिलकुल खाली है। परिक्रमा पर कैसे जा सकूँगा?

भिक्षांदेहि! परकम्मावासी को भिक्षा माँगने में शर्म कैसी? भिक्षा कोई भीख नहीं। इसलिए भिक्षा माँगकर भी परिक्रमा पर जाऊँगा।

किससे माँगू? कान्ता से ही! अग्नि को साक्षी मानकर जिसका हाथ पकड़ा है, उसके आगे हाथ पसारने में झिझक जरूर हुई, पर वाणी में जितनी बन सकी उतनी मिठास लाते हुए बोला, 'तुम तो बहुत उदार हो। चि. शरद की शादी के समय बहू के गहने बनवाने के लिए तुमने अपने गहने बिना माँगे दे दिये थे। इस बार परिक्रमा पर जाने के लिए पैसे की सुविधा नहीं हो रही है। तुम अपनी अँगूठी दे दो, तो मेरा काम बन जाये।'

मेरी आँखों में याचना की झलक देखकर कान्ता हँस पड़ी। बोली, 'इत्ती-सी बात के लिए ऐसा स्तुतिगान!' फिर तो—

कान्ता ने मुझे अँगूठी दी,
अँगूठी मैंने सुनार को दी,
सुनार ने मुझे रुपये दिये,
रुपये मैंने अंटी से बाँधे
और परिक्रमा पर निकल पड़ा!

ठीक दशहरे की सुबह हंडिया से चले। तारीख है 4 अक्टूबर, 1984 और साथी हैं अनिल और श्यामलाल। अनिल मेरा छात्र है, उन्नीस बरस का लंबा, छरहरा नौजवान। श्यामलाल लंबा, तगड़ा गोंड़ नौजवान है। दोनों ही लाभ और शुभ जैसे दुर्लभ साथी हैं।

यात्रा आरंभ करते समय ज्ञानी दादू, कर्मठ कक्का और फक्कड़ रम्मू की याद सहज ही हो आयी।

हंडिया नर्मदा का मध्य है, इसलिए नर्मदा का नाभि-स्थान कहलाता है। अभी तक हमें अमरकंटक पास था, अब समुद्र पास होता चला जायेगा।

रात सीगोन में रहे। यहाँ से हमारा मार्ग झाड़ी में से है। ओंकारेश्वर की झाड़ी शुरू हो गयी है। सागौन के काफी पेड़ हैं। इनके बड़े-बड़े पत्ते फीके और फटे-पुराने लग रहे हैं।

तीसरे पहर जोगा पहुँचे। यहाँ नर्मदा में एक टापू पर किला है। इस ओर की धारा बंद हो चुकी थी। चट्टानों पर से होते हुए किले में आ गये। नदी के मध्य में स्थित यह किला किसी परीकथा के किले की याद दिला रहा था। किसी गोंड़ राजा द्वारा निर्मित इस किले के स्थापत्य में एक प्रकार की बलिष्ठता झलक रही थी। किले के ऊपर से दूर-दूर तक नर्मदा दिखाई दे रही थी। आज सुबह से हम नर्मदा के बीच काफी झाड़ियाँ देखते आ रहे थे। यहाँ भी खूब झाड़ियाँ हैं। पानी के बीच उगी झाड़ियों और अस्पष्ट किनारों के कारण नर्मदा यहाँ अस्त-व्यस्त नजर आती है।

सुबह गड़वाट पकड़कर शाम को पुनघाट आ गये। शाम का अँधेरा उतरने लगा तो मछुआरों के कई जोड़े अपने-अपने डोंगों में मछली पकड़ने चल दिये। मछुआरा जाल फैलाता, स्त्री नाव खेती। नदी में ये दूर-दूर तक निकल जाते, रात किसी टापू पर बिताकर सुबह घर लौटते। दिन हो या रात, हर पल कोई न कोई मछुआरा कहीं न कहीं मछली की टोह में बैठा दिखाई दे जाता।

सुबह चले। हमारी गड़वाट नदी के पास ही है। झाड़ी में से नर्मदा झाँक रही है और यदि दिखाई नहीं देती है, तो सुनाई बराबर पड़ रही है।

दोपहर को पड़ा मौला। यहाँ जामदी नदी नर्मदा से मिली है। एक किसान ने अपनी झोपड़ी के आसपास साग-सब्जी लगा रखी थी। हमने उससे सब्जी माँगी। लेकिन वर्षा न होने के कारण उसकी बगिया सूख रही थी। उसने पूरी बगिया खखोरी, तब कहीं तीन गिल्की, दस भिंडी, और बीस बरबटी मिलीं।

शाम को बड़केश्वर घाट पहुँचे। यहाँ लोगों ने बताया कि अब नर्मदा छूट जायेगी, अब ओंकारेश्वर के पास ही मिलेगी। नर्मदा का किनारा इतना दुर्गम है और झाड़ी इतनी सघन कि वहाँ से कोई नहीं जाता। आप जायेंगे तो परेशान हो जायेंगे।

लेकिन हम नहीं माने। बलड़ी और बंधानिया के बाद परकम्मावासियों का आसान मार्ग छोड़कर सरई आ गये। यहाँ से नर्मदा के किनारे-किनारे चले। छोटी तवा पार करके शाम को जमोटी पहुँचे। चट्टानों में से बहती नर्मदा यहाँ कितनी सँकरी हो गयी है! यही तो नर्मदा की विशेषता है। वह कब विराट में से वामन, द्रुत में से विलंबित, गहरी में से उथली, चौड़ी में से सँकरी या नन्ही-नाजुक में से जुझारू हो जाये, कुछ कहा नहीं जा सकता। हल्ला-गुल्ला उसे पसंद है, लेकिन कोमल और शांत बनते भी देर नहीं लगती। बड़ी अप्रत्याशित नदी है यह— आज कुछ, कल बिलकुल दूसरी।

यहाँ नर्मदा के मध्य में एक विशाल शिलाखंड ऐसा लग रहा था, मानो कोई प्रागैतिहासिक पशु पूँछ दबाकर बैठा हो।

जमोटी गाँव क्या, गँवई भी नहीं। चरवाहों के छह-सात छप्पर भर हैं। दूर-दराज के इस भूले-बिसरे वनग्राम में शायद ही कोई आता होगा। यहाँ किसी के यहाँ ठहरने की कोई जगह नहीं थी। जायें तो कहाँ जायें?

एक ग्रामीण ने कहा, 'आइए, जगह बताता हूँ।'

वह हमें इमली के एक पेड़ के नीचे ले गया। 'यहीं रहिए।'

वहाँ गोबर का ढेर लगा था और हजारों मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। यहाँ कैसे सो सकेंगे?

'जगह पसंद नहीं?'

'नहीं।'

'आइए, दूसरी बताता हूँ।'

वह हमें इमली के एक दूसरे पेड़ के नीचे ले गया। जब पेड़ के नीचे सोना है, तो हम अपनी पसंद का पेड़ क्यों न चुनें! सो एक तीसरे पेड़ के नीचे डेरा डाला। वहीं सोये। 'करतल भिक्षा, तरुतल वास।' करतल भिक्षा की नौबत तो नहीं आयी, पर तरुतल वास तो आज है।

रात का तीसरा पहर था। दो भैंसे लड़े। एक भागा, दूसरे ने पीछा किया। दोनों मेरे पैर के बिलकुल करीब से भागे। इनसे रौंदे जाने से मैं बाल-बाल बच गया। मुँह ढाँपकर सोया था, इसलिए इस भयंकर दृश्य को देखने से बच गया। वृद्धावस्था में जब पुत्र-परिवार से घिरा बैठा होऊँगा, तब अनायास हो गया यह पराक्रम उन्हें जरूर सुनाऊँगा!

सुबह चले। यहाँ से हमें गड़वाट मिली। लेकिन थोड़ी ही देर में वह सँकरी होते-होते पगडंडी में बदल गयी और आगे जाकर पगडंडी भी गायब हो गयी। हम घने जंगल में घुस आये थे। कभी इधर जाते, कभी उधर और घूम-फिर कर वहीं वापस आ जाते। कभी-कभी तो यही समझ में न आता कि हम जा रहे हैं या आ रहे हैं! हमारे चारों ओर अपना चौड़ा सीना ताने घना एकांत जंगल खड़ा था।

बड़ी मुश्किल से एक पगडंडी मिली। काफी दूर जाने के बाद गायों के गले की घंटियों की आवाज सुनाई दी। कोमल सुरीली आवाज! वहाँ जरूर कोई चरवाहा होगा। उससे राह पूछेंगे।

गायों का झुंड तो मिला, पर कोई चरवाहा नहीं था। फिर भी आशा बँधी कि गायें हैं तो गाँव भी होगा। काफी चलने के बाद जंगल कम घना हो चला। अचानक पेड़ों में से झाँकती नर्मदा दिखाई दी। थोड़ी देर में रामघाट के मंदिर पहुँचे। पास में ढालेकोठड़ा गाँव है। एक छोटी-सी नदी आकर यहाँ नर्मदा से मिली है। उसी संगम पर है यह मंदिर। नदी की रेत में चीते के पैरों के निशान दिखाई दिये। कुटी के बाबा ने बताया कि रोज रात को ये पानी पीने आते हैं।

पिछले तीन-चार दिनों से बादल हो रहे हैं। इस साल यहाँ पानी खूब कम बरसा है। फसलें सूख रही हैं। किसान बड़ी आस लगाये आसमान की ओर जोह रहे हैं। लेकिन पानी है कि बरसने का नाम ही नहीं ले रहा।

आज शरद पूर्णिमा की रात है। लेकिन न शरद है, न पूर्णिमा। बेहद गरमी है और चारों ओर अमावस की रात-सा घुप्प अँधेरा छाया हुआ है।

सुबह उठे तो प्यारी-प्यारी बूँदाबाँदी शुरू हो गयी थी। मिट्टी में से सौंधी सुगंध आ रही थी। आज जा न सकेंगे, यहीं रुकना होगा। शाम तक बूँदाबाँदी थम गयी।

सुबह देखा, रेत में चीते के पैरों के ताजे निशान बने हुए हैं। रेत मानो नदी-तट की विजिटर्स-बुक है, उसमें हर यात्री का नाम अपने आप दर्ज हो जाता है।

आसमान बिलकुल साफ हो गया है— शीशे की तरह। बोझा लादा

और चल पड़े। नदी के दोनों ओर चट्टानें ही चट्टानें हैं। नदी मानो अनंत पथरीले जंगल में से होकर बह रही है।

कल तक नर्मदा वनबाला थी, अब शैलबाला है।

ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गये, नर्मदा सँकरी होती गयी। तीसरे पहर असिंदर आ गये। पास में है पुनासा कालोनी। यहाँ भी चट्टानें मानो नर्मदा के चारों ओर घेरा बनाकर खड़ी हैं। बाँध के लिए यह सबसे उपयुक्त जगह है। यहाँ नर्मदा पर बड़ा भारी बाँध बनने जा रहा है। उसके बन जाने पर प्यासी धरती को जीवनदायी जल मिलेगा, वह धन-धान्य से लहलहा उठेगी।

यहाँ नर्मदा तट पर किसी बाबा की कुटी खाली पड़ी थी। रात उसी में रहे। अब चट्टानें बड़ी विकट हैं, खड़ी और ऊँची, और पानी उनसे सटकर बहता है। बहुत सँभलकर चलना पड़ता है, जरा चूके और गये। फूँक-फूँक कर और तौल-तौल कर हम एक-एक कदम रख रहे थे। कहीं पर्वतारोहियों की तरह सधे पाँव ऊपर चढ़ते, तो कहीं चोरों की तरह दबे पाँव नीचे उतरते। चिलचिलाती धूप और तप्त चट्टानों के कारण पसीने से नहा उठते। लेकिन मन के उल्लास का क्या कहना।

और नर्मदा— कितनी लचीली है यह नदी! कैसा मोड़ लिया है उसने यहाँ!

चारों ओर चट्टानों की मानो गड्डी की गड्डी रखी है। एक जगह चट्टानों की उठती-गिरती कतार बंदनवार-सी लहराती चली गयी है। पर अब नदी के किनारे-किनारे आगे जाना संभव नहीं, ऊपर झाड़ी में से जाने के सिवा कोई चारा नहीं। इसलिए झाड़ी में से चले। बढ़ी हुई जंगली घास में कमर तक धँस जाते। घास की नोकें कपड़ों में भिद जातीं और काँटों-सी गड़तीं। बड़ी मुश्किल से एक पगडंडी मिली। लेकिन वह हमें नर्मदा से दूर ले गयी। एक ही नाले को सात बार पार करके एक गाँव पहुँचे। वहाँ से हमें टकारी की गड़वाट मिल गयी। हमारे दोनों ओर घना जंगल था।

श्यामलाल कहता है, जंगल भगवान के लगाये बाग-बगीचे हैं। मार्ग में एक पेड़ के नीचे छह-सात भील बड़े-बड़े कुल्हाड़े लिये बैठे थे। वे हमें टकारी का मार्ग समझा ही रहे थे कि एक भील स्त्री अपने बच्चे को लिये वहाँ से निकली। 'लीजिए, यह उसी ओर जा रही है, आप इसी के साथ हो लीजिए।'

इस बियाबान जंगल में इस स्त्री को अकेले जाने में डर नहीं लगता होगा? हम उसके साथ हो लिये। चारों ओर ऐसी निविड़ निस्तब्धता थी कि हमें लगा, हमारे कानों ने काम करना ही बंद कर दिया है।

टकारी काफी दूर था। पहुँचते-पहुँचते साँझ हो गयी। नर्मदा में डुबकी लगा ली, तो थकान दूर हो गयी। गाँव में छह-सात झोपड़े ही हैं। एक स्त्री

ने हमें आश्रय दिया। झोपड़े में वह थी और उसके वृद्ध पिता थे।

सामान रखा ही था कि बड़े-बड़े चूहे आ गये और हमारे सामान की तलाशी लेने लगे। दो-एक ने तो हमारे ऊपर भी छलाँग लगा दी। रात में सोयेंगे कैसे! स्त्री ने कहा, 'बाहर खुले में सोइए, वहाँ उतना परेशान नहीं करेंगे। सामान सिरहाने रख लीजिए।'

मैंने पूछा, 'तुम्हारा पति कहाँ?'

'वह गाँव पर है। वहाँ हमारी खेती है। यहाँ हम गाय-भैंस चराने आये हैं। यहाँ चारा अच्छा है। खूब दूध होता है, घी बनाकर बेचते हैं।'

'तुम्हारे बच्चे भी गाँव पर हैं?'

उसका चेहरा कुम्हला गया। गहरी साँस लेकर बोली, 'मेरे दो बच्चे थे बाबा, दोनों मर गये।'

अनजाने ही मैंने उसकी दुखती रग को छू दिया था। उसकी सूनी गोद की उसे याद दिला दी थी। आर्द्र वाणी में वह बोली, 'बच्चा होने की कोई गोली हो तो दो न, बाबा।'

कैसी अन्तर्वेदना थी। मन को छू लेने वाली गहराई थी। वह मेरी ओर देख रही थी और जवाब माँग रही थी, अच्छा-सा जवाब, जो उसके जीवन में आशा जगा सके। मैं सहसा बोल उठा, 'तुम दूध पीती हो या चाय?'

'चाय।'

'बस, यही तो गलती करती हो। तुम्हारे घर ढेरों दूध उतरता है, फिर भी तुम चाय पीती हो? दूध पीयो, दूध। तुम पति-पत्नी खूब दूध पीयो, भगवान जरूर भला करेगा।'

'सच?'

'सच, बेटी, सच।'

उसकी आँखों में चमक दौड़ गयी। प्रकाश की किरण जैसे उसके हाथ लग गयी।

मैं झूठ बोला था। लेकिन उस दिन भी मुझे लगा था और आज भी लगता है कि मेरे इस झूठ में भी सच है।

सुबह चले। दोपहर तक धाराक्षेत्र पहुँच जायेंगे। इस तट पर धाराक्षेत्र, उस तट पर धायड़ीकुंड। यहाँ नर्मदा में छोटे-बड़े कई प्रपात हैं। उनकी आवाज सुनाई देने लगी तो ललचायी अधीरता से आगे बढ़ने लगे। थोड़ी देर में प्रपातों के पास आ गये। यहाँ बड़े-बड़े शिलाखंडों से टकराता हुआ पानी तेज गति से बह रहा था। एक युवा प्रपात के पास अड्डा जमाया। इसमें

से उठते हुए जलकणों में इन्द्रधनुष दिखाई दे रहा था। कैसा छोटा-सा इन्द्रधनुष! जापान में विशाल वृक्षों को बौने कद का बनाकर गमलों में उगाते हैं। इसे बोनसाई कहते हैं। नर्मदा ने जैसे यहाँ अपने गमले में बोनसाई इन्द्रधनुष उगाया है।

हवा के झोंकों के कारण इन्द्रधनुष झूलता-सा प्रतीत होता था। इसी लहराते इन्द्रधनुष के पास हमने खाना बनाया। क्या ठाठ हैं हमारे!

ये प्रपात पर्वतीय घाटी को शोर और फुहार से भर देते हैं। लेकिन हम कानों से जितना सुन नहीं रहे हैं, उससे ज्यादा लोभी आँखों से देख रहे हैं।

उस तट के प्रपात बड़े हैं, लेकिन यहाँ से दिखाई नहीं देते। प्रपातों के मध्य में एक विशाल चट्टान पर एक मछुआरा जाल फैला रहा था। मैं सोच रहा था कि वह वहाँ कैसे पहुँचा होगा कि हमारे पास खड़े मछुआरे ने छलाँग लगा दी और उफनती धाराओं को चीरता हुआ वहाँ जा पहुँचा।

मछुआरे नदी की पहलौठी की संतान होते हैं।

मछुआरों ने हमसे कहा कि अब नर्मदा तट छोड़ना होगा। दूर तक चली गयी किले की दीवार-सी खड़ी चट्टानी कगार भी मानो हमसे यही कह रही थी— यहाँ मनुष्य के लिए प्रवेश निषिद्ध है।

एक ग्रामीण वहाँ आया था। उसने कहा, 'यहाँ से गड़वाट से पुनासा जाइए। वहाँ से इन्धावड़ी होते हुए सातमात्रा जाइए। वहाँ फिर नर्मदा मिल जायेगी।'

तो हम अब भी पुनासा के ही इर्द-गिर्द घूम रहे हैं! पुनासा जाने की हमारी अनिच्छा देखकर उसने कहा, 'चलिए, मेरे गाँव ही चलिए, मेरे घर रहिए। वहाँ से इन्धावड़ी और भी पास पड़ेगा।'

उस ग्रामीण के साथ घने जंगल में से होते हुए उसके गाँव भँवरला पहुँचे। उसके घर जाकर आश्चर्यचकित रह गये। जिप्सियों जैसे बड़े घेर के पिंडलियों तक के लहँगे, रंग-बिरंगी चोली, छोटी-सी ओढ़नी और बड़ी-बड़ी चूड़ियों के कारण इनकी स्त्रियाँ कितनी आकर्षक लग रही थीं!

तो ये बनजारे थे। पुरुषों की पोशाक में तो बनजारों की एक भी विशेषता नहीं रह गयी थी, लेकिन स्त्रियों ने अपना पहनावा ज्यों का त्यों रखा था। इस गाँव में यह नस्ल कहाँ से आ टपकी थी!

एक आँगन को घेरकर इनके छह-सात घर थे और आज हम इन्हीं के अतिथि थे।

सुबह चल दिये। चिलचिलाती धूप के कारण इन्धावड़ी पहुँचते-पहुँचते पसीने से नहा उठे। सूरज मानो भूल गया है कि अभी गरमी नहीं, शरद है, और ताकत से तप रहा है। आज का ही दिन था, जब सारा दिन नर्मदा के दर्शन नहीं हुए थे। रात इन्धावड़ी में रहे।

दूसरे दिन दोपहर के पहले सातमात्रा पहुँच गये। यहाँ फिर नर्मदा मिल गयी। ऊँचे किनारे के भग्न मंदिर से मैं देखने लगा, कहीं काजलरानी दिखाई तो नहीं देती। नर्मदा-तट का बस यही एक गाँव हमसे छूट गया था। लेकिन वहाँ घनी झाड़ी के सिवा और कुछ न था। लोग भी कहाँ-कहाँ अपने घोंसले बना लेते हैं!

यहाँ से फिर किनारे-किनारे चले। चट्टानें विकट थीं और कई बार लगता कि अब किनारा छोड़ना पड़ेगा। लेकिन अनिल और श्यामलाल कहीं न कहीं से राह निकाल ही लेते।

कावेरी संगम पहुँचते दोपहर हो आयी। अब ओंकारेश्वर बिलकुल पास है।

थोड़ी देर में मांधाता आ गये। ठीक सामने है ओंकारेश्वर, नर्मदा-तट का सबसे बड़ा तीर्थ। ओंकारेश्वर एकदम सामने है, दो मिनट का भी रास्ता नहीं, फिर भी नर्मदा के मध्य में एक टापू पर स्थित होने के कारण परकम्मावासी वहाँ जा नहीं सकता।

ओंकारेश्वर— कितना पास, फिर भी कितना दूर!

मांधाता छोटी-सी जगह है। मकान कम, धर्मशालाएँ अधिक। हम एक धर्मशाला में ठहरे। यहाँ कल भी रहेंगे। बारह दिनों के वनवास के बाद आराम का एक दिन मनाया जा सकता है।

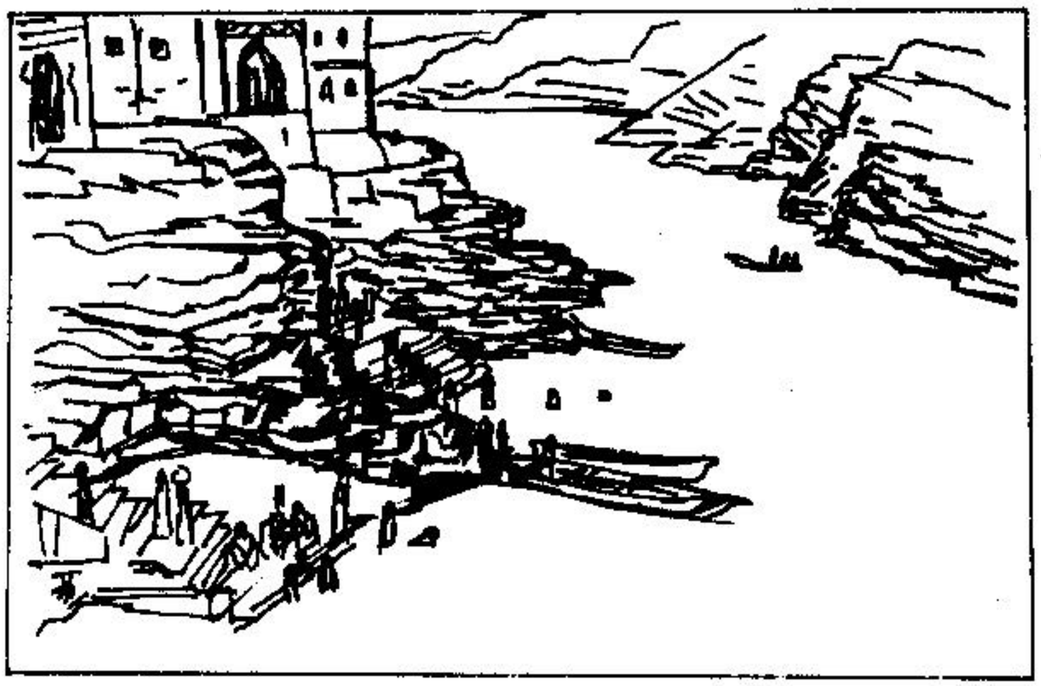

13. ओंकारेश्वर से खलघाट

सुबह विष्णुपुरी घाट पर बैठा था। सुबह की गुनगुनी धूप बड़ी प्यारी लग रही थी। सामने है ओंकारेश्वर— पहाड़ी नदी का पहाड़ी तीर्थस्थान। नर्मदा यहाँ गर्भस्थ शिशु-सी जान पड़ती है। सँकरी नर्मदा के दोनों ओर खड़ी चट्टानी कगारें हैं। इस तट पर मांधाता, उस तट पर ओंकार, दोनों मिलकर ओंकार-मांधाता और बीच में अलस गति से बहती शांत, नीरव नर्मदा। नदी बहती हुई भी रुकी-सी जान पड़ती है।

सुदूर केरल से आकर बालक शंकर ने यहाँ गुरु गोविन्दपाद के आश्रम में रहकर विद्याभ्यास किया था। वे हमारे देश के सर्वश्रेष्ठ परिव्राजक हैं। भारत की भावनात्मक एकता के लिए उन्होंने जो किया, वह अनुपम है। ऐसे आद्य शंकराचार्य की पावन स्मृति इस ओंकारेश्वर से जुड़ी हुई है। फिर कमलभारती जी, रामदासजी और मायानंदजी सदृश संतों के आश्रम भी यहाँ रहे। आज भी नये-नये आश्रम बनते जा रहे हैं।

नर्मदा-तट के छोटे से छोटे तृण और छोटे से छोटे कण न जाने कितने परिव्राजकों, ऋषि-मुनियों और साधु-संतों की पदधूलि से पावन हुए होंगे। यहाँ के वनों में अगणित ऋषियों के आश्रम रहे होंगे। वहाँ उन्होंने धर्म पर विचार किया होगा, जीवन-मूल्यों की खोज की होगी और संस्कृति का उजाला फैलाया होगा। हमारी संस्कृति आरण्यक-संस्कृति रही। लेकिन अब? हमने उन पावन वनों को काट डाला है और पशु-पक्षियों को खदेड़ दिया है या मार डाला है। धरती के साथ यह कैसा विश्वासघात है।

एक आदमी स्नान के लिए आया था। मैंने कहा, 'नर्मदा यहाँ कितनी सँकरी है।'

'नर्मदा की यह एक धारा है। दूसरी ओंकारेश्वर के पीछे है।'

'हाँ, कावेरी-संगम के पास हमने नर्मदा को दो धाराओं में बँटते देखा था।'

'कहते हैं, कावेरी नर्मदा से मिली लेकिन थोड़ी ही देर में दोनों में अनबन हो गयी और कावेरी नर्मदा से अलग हो गयी। ओंकारेश्वर के इस ओर है नर्मदा, उस ओर है कावेरी।'

'दोनों फिर मिलती हैं या नहीं?'

'जहाँ ओंकारेश्वर का टापू खत्म होता है, वहीं दोनों फिर मिल जाती हैं। नर्मदा ने आखिर छोटी बहना को मना लिया। इसलिए असली कावेरी संगम बाद का है, पहला नहीं।'

पहले आगमन, फिर बहिर्गमन, अंत में पुनरागमन! बढ़िया कल्पना है!

यहाँ बैठा सामने के घाट को देख रहा हूँ। वहाँ न जा पाने का कोई दुःख नहीं है क्योंकि ओंकारेश्वर दो बार हो आया हूँ। लेकिन अनिल और श्यामलाल से कहा कि तुम जरूर हो आओ। नाव से जाना, पुल से आना।

यहाँ से मोरटक्का। वहाँ तक सड़क जाती है, लेकिन हम सड़क से नहीं जायेंगे, नदी के किनारे-किनारे जायेंगे।

दोपहर को निकले। लेकिन थोड़ी ही देर में समझ में आ गया कि दोपहर को चलकर गलती की। सूरज सामने रहता है, चट्टानें तंदूर की तरह गरम हो गयी हैं और श्यामलाल नंगे पाँव है। लेकिन वह तो शायद दहकते अंगारों पर भी सारा दिन चल सकता है।

कभी चट्टानों से जूझते, कभी झाड़ी से उलझते तो कभी सामने तट की पर्वत-माला से आते हवा के झोंकों का आनंद उठाते आगे बढ़ रहे थे। कभी रुक जाते, माथे का पसीना पोंछते और आगे बढ़ते। शाम को मोरटक्का के खेड़ीघाट पहुँचे। यहाँ नर्मदा पर सड़क का पुल है, पास में रेल का पुल भी है। रात यहीं बितायी।

सुबह उठते ही अनिल ने कहा, 'जरा ऊपर देखिए।'

मध्य आकाश में चाँद था। मैंने कहा, 'सूरज के हिसाब से अभी सबेरा है, लेकिन चाँद के हिसाब से अभी दोपहर है!'

अनिल के लिए यह भले ही विस्मय की बात हो, पर मैं तो चाँद के एक से एक करतब देख चुका हूँ। कभी पूर्ण कुंभ, तो कभी बारीक रेखा, उसका बाँकपन कभी सीधा तो कभी उलटा, कभी घटता तो कभी बढ़ता, कभी निकलते ही डूबने की तैयारी तो कभी आधी रात को गायब और भरी दोपहर को हाजिर! क्या कहना इस मनमौजी का!

चाँद जब यह सब कर सकता है, तो एक करतब उसे और दिखाना था। सूर्योदय और सूर्यास्त के कारण पूर्व और पश्चिम दिशाओं की छटा देखते ही बनती है। उपेक्षित रह जाते हैं उत्तर और दक्षिण। क्या ही अच्छा होता अगर चाँद उत्तर में निकलता और दक्षिण में डूबता!

चंद्र का ऐसा अपूर्व उदय देखकर सूर्य भी निरुत्तर रह जाता!

यहाँ से रास्ता आसान है, झाड़ी खत्म। रात गोमुख-बावड़ी में रहे। सुबह चल दिये। थोड़ी देर में कांकरिया पहुँचे। नदी-तट पर एक खंडहर सी धर्मशाला थी। ऊपर छप्पर नहीं था, खिड़की में पल्ले नहीं थे। खिड़की के इस फ्रेम में से पनिहारिनें ऐसी दीख रही थीं, मानो मैं रंगीन टी.वी. देख रहा होऊँ! खिड़की के पास से देखता तो वाइड-व्यू दिखता और हटकर देखता तो क्लोजअप नजर आता! ऐसा लाइव-टेलिकास्ट तो संसार का श्रेष्ठतम टी.वी. सेट भी नहीं दे सकता।

दोपहर को रावेर पहुँचे। यहाँ नदी-तट पर पेशवा का स्मारक है। वहीं एक पेड़ के नीचे खाना बनाया। जब तक झाड़ी में थे, ईंधन की कोई कमी न थी। लेकिन अब लकड़ी मिलना मुश्किल हो गया है। थोड़ी बहुत मिली, बाकी मैं दूर किनारे से ढूँढ़ लाया। बाद में पता चला कि वे चिता की लकड़ियाँ थीं!

शाम को बकावा पहुँचे। वहाँ नदी किनारे एक चबूतरा था। आज का रात्रि-विश्राम इसी चबूतरे पर था। यहाँ से एक सँकरी पथरीली सड़क नर्मदा के मध्य तक चली गयी थी। स्वच्छ पानी भरने के लिए यह सबसे अच्छी जगह थी, इसलिए यहाँ पनिहारिनों की भीड़ लगी रहती थी। जल की सतह से जरा से उठे हुए इस जलपथ से आती पनिहारिनें जलपरी सी लग रही थीं। लेकिन ये कोई जलपरियाँ नहीं थीं। ये थीं श्रमबालाएँ, कठोर श्रम करती ग्रामनारियाँ। लेकिन यह श्रम ऐसा था, जो खेल बन गया था। हँसती किलकती, ठिठोली करती स्वस्थ नारियों को अनुभव ही नहीं हो रहा था कि उनके सिर पर भारी बोझ रखा हुआ है, वे नंगे पैर हैं और नीचे ऊबड़-खाबड़ पत्थर हैं। वे ऐसे जा रही हैं, जैसे शहर की लड़कियाँ पिकनिक को जाती हैं!

श्रम का यह कैसा उत्सव है! नित्य उत्सव! सबेरे इस छोटे से गाँव से विदा लेते समय इस पावन दृश्य को मैंने मुड़-मुड़कर देखा।

आगे पड़ा मर्दाना। यह गाँव कुछ बड़ा है, दो-एक दुकानें भी हैं। अनिल और श्यामलाल सौदा लेने लगे, मैं दूर खड़ा था। वहाँ एक वृद्ध बैठे थे। उन्होंने कहा, 'आप खरीद क्यों रहे हैं? मेरे यहाँ सदाव्रत दिया जाता है, चलिए।' तुला-तुलाया सौदा वापस करना पड़ा।

'यह सदाव्रत कब से चल रहा है?'

'पचहत्तर साल से। पचहत्तर साल पहले मेरा जन्म हुआ था। इस खुशी में मेरे पिता ने यह शुरू किया था, जो आज तक चला आ रहा है। मैंने अपनी जमीन चारों बेटों में बाँट दी है, लेकिन दो एकड़ जमीन सदाव्रत के लिए अलग रख दी है। मैं नहीं रहूँगा पर सदाव्रत रहेगा।'

जिन्दगी तो कुल एक पीढ़ी भर की होती है, पर नेक काम पीढ़ी-दर पीढ़ी चलता रहता है।

शाम को भटियान पहुँचे। नर्मदा के बालुई तट पर बसा छोटा-सा गाँव। नदी किनारे पेड़ों के पास एक पक्की छोटी धर्मशाला है। इसमें एक दुबले-पतले बाबा रहते हैं। बच्चों-सा सरल स्वभाव। गाँव के लोग इन्हें खूब चाहते हैं। कोई तीस बरस से यहाँ हैं। हमें बड़े प्रेम से अपने साथ ठहराया। बातें होने लगीं तो मैं समझ गया कि इनकी मातृभाषा गुजराती है। फिर तो गुजराती में बातें होने लगीं। मैंने कहा, 'इतने वर्षों के बाद भी आप गुजराती भूले नहीं?'

उन्होंने कहा, 'मातृभाषा को कोई कैसे भूल सकता है?'

सुबह जब चलने लगे, तो बड़े प्यार से बोले, 'आवजो!'

घड़ी भर के लिए वे संन्यासी में से गृहस्थ बन गये थे। विदा लेते मेहमान से कह रहे थे, 'आवजो!' फिर आना!

अगला पड़ाव मर्कटीतीर्थ। निर्जन एकांत में वेदा और नर्मदा के संगम पर स्थित ऊँचे टीले पर एक मंदिर है, उसी में रहे। मंदिर में एक युवा पुजारी है और है उसकी माँ। पुजारी की माँ ने कहा, 'आज से कोई तीन साल पहले अचानक यह लड़का घर से चल दिया। बहुत ढूँढ़ा पर नहीं मिला। कोई साल भर बाद अमरकंटक से चिट्ठी आयी कि मैं नर्मदा परिक्रमा पर निकल गया हूँ, मेरी बाट मत जोहना। लेकिन माँ का दिल तो है। सोचती थी, परिक्रमा पूरी करने के बाद मेरा बेटा लौट आयेगा। लेकिन परिक्रमा करते-करते इसने तो जोग ही धारण कर लिया।'

एक ठंडी साँस लेकर उसने कहा, 'कोई पंदरह साल की उम्र में हमने इसकी सगाई की थी। लड़की के पिता ने सात साल तक इंतजार किया

जब हमने उसके घर लौटने की उम्मीद पूरी तरह छोड़ दी, तब पिछले साल ही उन्होंने अपनी बेटी की शादी दूसरी जगह की। उस लड़की से मुझे कितनी ममता हो गयी थी!'

चूल्हे की आग को ठीक करते हुए उसने अपना कहना जारी रखा, 'बड़ा एकांत है यहाँ। पास में कोई गाँव नहीं। मैं और मेरा बेटा, बस हम दो ही हैं यहाँ। वह तो दिन भर पूजा-पाठ में लगा रहता है, मेरा समय काटे नहीं कटता। यहाँ रहती हूँ तो घर की याद आती है, घर जाती हूँ तो इसकी चिन्ता सताती है। कल रात को ही यहाँ दो मुँह वाला साँप निकला था। मैं तो बेहद डर गयी। बड़ी मुश्किल से बाहर निकाला।'

बेचारी माँ! उसके मन के दो टुकड़े हो गये हैं। एक हिस्सा यहाँ है, दूसरा घर रह गया है।

बाहर खुले में सोये। आकाश साफ था और रात सुहानी थी। तारे इतने पास लग रहे थे कि हाथ बढ़ाओ और छू लो।

सुबह चल दिये। दोपहर तक नावड़ाटोड़ी पहुँच गये। सामने तट पर है महेश्वर— रानी अहिल्याबाई का नगर। अहिल्याबाई अत्यंत कुशल प्रशासक थीं और नर्मदा की परम भक्त थीं। महेश्वर में उनके बनवाये मंदिर और घाट इस तट से बड़े सुंदर लग रहे थे।

यहाँ एक सज्जन रहते थे। पहले सरकारी अफसर थे। अच्छी पेन्शन मिलती है। अपनी सारी पेन्शन कुत्तों पर खर्च करते हैं। इस गाँव के तो क्या, आसपास के लोग भी इन्हें खूब चाहते हैं। मिलने पर बोले, 'चाय की दुकान की यह बैंच ही मेरा घर है और इस झोले में मेरी सारी गृहस्थी है। गाँव के कुत्ते मेरे स्वजन हैं।' फिर धीरे-से बोले, 'आदमी से कुत्ते अच्छे।'

जीवन के किन कटु अनुभवों ने उनके मन में मनुष्य के प्रति ऐसी कटुता उत्पन्न की होगी!

'देवी-देवता में मेरा कोई विश्वास नहीं। साधु-संतों पर भी नहीं। बाहर से धर्मात्मा होने का ढोंग रचते लोगों को ऊपर से नीचे तक गंदगी में डूबा हुआ देख चुका हूँ। बस, एक नर्मदा को मानता हूँ। मुझे वह हर घड़ी दिखनी चाहिए। बरसात में बाढ़ का पानी जब तक इस बैंच को छूता नहीं, तब तक नहीं जाता। नर्मदा के बिना मैं नहीं रह सकता।'

फिर हँसकर बोले, 'यहाँ के लोगों ने मुझे खूब प्यार दिया। जब मरूँगा, तब मेरी ऐसी श्मशान-यात्रा निकलेगी कि किसी नेता की क्या निकलेगी। दुःख यही है कि उसे देखने मैं जिन्दा नहीं रहूँगा!'

सुबह मन में सहस्रधारा देखने की उत्कंठा लेकर चले। मंडला की सहस्रधारा कई बार देख चुका हूँ, महेश्वर के पास की इस बड़ी सहस्रधारा को पहली बार देखूँगा।

थोड़ी देर में शोर सुनाई पड़ने लगा तो चाल तेज हो गयी। देखते-देखते सहस्रधारा आ गये। नर्मदा यहाँ खूब फैल गयी है, हजारों धाराओं में बँट गयी है। इन धाराओं में छोटे-छोटे अनगिनत प्रपात फड़फड़ा रहे हैं। चारों ओर धाराओं का जाल-सा फैला है। इन आड़ी-टेढ़ी, आँकी-बाँकी जलधाराओं से नर्मदा ने यहाँ मानो झीनी-झीनी बीनी रे चदरिया!

पानी की चादर, जलधाराओं के ताने-बाने, चट्टानों का करघा! ऐसी चादर तो बस नर्मदा ही बुन सकती है और ऐसी चादर तो बस धरती ही ओढ़ सकती है!

और यह धारा शब्द नर्मदा के साथ खूब जुड़ा हुआ है। अमरकंटक से निकलते ही कपिलधारा और दूधधारा। मंडला की सहस्रधारा, बरमानघाट की सतधारा, ओंकारेश्वर के पास धारातीर्थ और महेश्वर के पास पुनः सहस्रधारा! कैसी धाराप्रवाह नदी है यह!

जहाँ-जहाँ धारा शब्द आया है, वहाँ प्रपात जरूर है। चाहे कपिलधारा जैसा ऊँचा प्रपात हो, चाहे सहस्रधारा के इन तितलियों जैसे छोटे-छोटे प्रपात हों। जबलपुर के धुआँधार में धारा शब्द आते-आते रह गया। वैसे धार, धारा का ही तो अनुज है!

पर अब चलना चाहिए। धूप तेज हो रही है। आगे का मार्ग कठिन है। थोड़ी देर के लिए किनारा छोड़ना होगा।

चलते-चलते एक टीले पर आ गये। इस ऊँचे झरोखे से सहस्रधारा के नन्हे-मुन्ने प्रपात एक साथ दिखाई दे रहे हैं। नन्हे-मुन्ने क्या, एकदम दुधमुँहे। इनके मुँह से दूध अभी छूटा ही कहाँ!

ढालखेड़ा में राघवानंद जी के आश्रम में रहे। यहाँ किसी ने बताया कि नर्मदा में वह जो टापू दिखाई दे रहा है, एक फ्रेंच युगल उसमें छह महीने तक रहा। बरसात में उस तट पर चला गया। कुछ समय पहले फ्रांस लौट गया।

ऐसी कौन-सी डोर होगी, जो सात समंदर पार के फ्रेंच नौजवान पति-पत्नी को नर्मदा के इस सुनसान टापू में खींच लायी होगी— सौंदर्य-पिपासु मन, एकांत साधना की चाह, या पश्चिम की आपाधापी से विलग होकर पूर्व की शांति में डुबकी लगाने की प्रबल इच्छा?

रात को बाहर खुले में सोये। इस बार की यात्रा में नर्मदा में इतने टापू देखे हैं कि रात को आकाश-गंगा में भी मुझे अनेक टापू दिखाई दिये।

सुबह चल दिये। आज दीवाली है। दोपहर तक साटक-संगम पहुँच

जायेंगे। वहाँ नर्मदा का प्रसिद्ध खलघाट पुल है। वहीं इस बार की यात्रा समाप्त करेंगे

थोड़ी देर में साटक-संगम पहुँच गये। साटक एक छोटा-सा झरना है, लेकिन इसे पार करने में एक नाटक हुआ। साटक में एक नन्हा प्रपात था। उसे देखते हुए मैं पानी में उतरा। उतरते ही काई लगे पत्थर पर से फिसलकर गिरा। किसी तरह उठा कि दुबारा गिरा। साटक ने अपने अंक में मुझे दो बार लिया, इसलिए यह नाटक एकांकी न रहकर द्विअंकी हो गया!

पास ही में एक मंदिर है। मंदिर की देखभाल एक महाराष्ट्रियन महिला करती है। माता के स्नेह से हमें मंदिर में ठहराया। मैंने कहा, 'हमारी इस बार की यात्रा यहाँ समाप्त हो रही है। कल सुबह घर लौट जायेंगे। अगले साल फिर यहाँ आयेंगे और दशहरे से आगे बढ़ेंगे।'

'आगे शूलपाण की झाड़ी पड़ेगी। उसके बारे में तो आपने सुना ही होगा।'

सुना क्यों नहीं! कितने ही परकम्मावासियों से कितनी ही बातें सुनी हैं। झाड़ी में तीर-धनुष लेकर भील आते हैं और सब कुछ लूट लेते हैं। अंत में परकम्मावासी के पास बच रहती है केवल लँगोटी और तूँबी। लेकिन इन्हीं बातों ने हमारे अंदर झाड़ी के प्रति विशेष आकर्षण जगा दिया है।

'राजघाट (बड़वानी) से झाड़ी शुरू होगी। आपके पास यह जो सामान है न, इसमें से कुछ न बचेगा। कपड़े और चश्मा तक उतार लेंगे।'

लँगोटी लगाकर रह लूँगा, लेकिन मेरी स्केच-बुक ले ली, चश्मा ले लिया, तो समझिए मेरे कवच-कुंडल ही उतार लिये। नंगे बदन ठंड कैसे बर्दाश्त होगी।

मुझे कुछ सोच में देखकर उसने कहा, 'एक काम करो। झाड़ी में से मत जाओ, बाहर-बाहर से निकल जाओ।'

नहीं, हरगिज नहीं! झाड़ी में से ही जायेंगे, चाहे जो हो। हाँ, एक काम कर सकते हैं। दीवाली छुट्टी के बजाय गरमी की छुट्टी में चलें। गरमें में नंग-धड़ंग रह लेंगे, ठंड बर्दाश्त न होगी।

रात का अँधेरा जल में उतर आया था और काजल-सा काला हो चला था। बिस्तर में पड़ा-पड़ा तारों को निहारता मैं गुनगुना रहा था—

जटाजूट बढ़ायेंगे
भिक्षा माँगकर खायेंगे
निर्धन-निर्वस्त्र हो जायेंगे
पर झाड़ी में से जायेंगे।

14. खलघाट से बोरखेड़ी

यहाँ से गये पूरे छह महीने भी नहीं हुए कि फिर आ गये। साटक-संगम के मंदिर की देखभाल करने वाली महाराष्ट्रियन महिला ने हमारा स्वागत करते हुए कहा, 'मैं सोच ही रही थी कि अभी तक आप आये नहीं। लेकिन आपका तीसरा साथी कहाँ है?'

'कौन अनिल? उसकी परीक्षाएँ चल रही हैं, इसलिए नहीं आ सका।'

'लेकिन आप इतना ढेर सारा सामान लेकर क्यों आये? शूलपाण झाड़ी में भील सब कुछ लूट लेंगे। कपड़े तक उतार लेंगे।'

निहायत जरूरी सामान ही तो लिया था। सात-आठ दिन का राशन, दस-बारह दिन का नाश्ता, कुछ बरतन, दरी, दो चादरें, दो जोड़ी कपड़े, तौलिया, टॉर्च और कुछ छोटी-मोटी चीजें। बस, यही थी हमारी गृहस्थी। इस बार स्टोव नहीं लिया था, दाढ़ी बनाने का सामान भी नहीं लिया था। और झाड़ी यहाँ से कोई सौ किलोमीटर बाद शुरू होगी। तब तक तो कुछ आराम से रह लें, फिर देखा जायेगा।

19 मई 1985, सुबह की पहली उजास के साथ साटक-संगम से चले। पास ही खलघाट का पुराना पुल है। थोड़ा आगे नया पुल है। बम्बई-आग्रा राजमार्ग इस पर से जाता है, इसलिए दिन-रात वाहनों का ताँता लगा रहता है।

तेज लू चल रही है। एक तो गरमी के दिन, फिर पश्चिमी निमाड़ की गरमी। थोड़ी ही देर में पसीने से नहा उठे।

रात्रि-निवास ग्यारहलिंगी के मंदिर में रहा। एकांत स्थान। मंदिर में एक स्वामीजी ठहरे थे। जब मैंने उनसे कहा कि आगे हम झाड़ी में से जायेंगे, तो उन्होंने कहा, 'आप उसमें भटक जायेंगे। महीनों लग जायेंगे।'

'झाड़ी कुल अस्सी मील की है। महीनों कैसे लग जायेंगे?'

'आपका सारा गणित धरा रह जायेगा। नौ दिन चले अढ़ाई कोस वाली बात होगी। भूख और प्यास के कारण प्राण कंठ को आ जायेंगे। भील आपका सब कुछ ले लेंगे, चश्मा तक उतार लेंगे। आप इतना सामान लेकर चले हैं कि मेरे ही मुँह में पानी आ रहा है। ऐसा न हो कि झाड़ी के पहले ही कोई आपको लूट ले।'

उस समय तक नर्मदा-तट की कोई 1400 कि.मी. की पदयात्रा कर चुका था। अगर ये कहीं शुरू में ही मिल गये होते, तो मैं शायद घर से बाहर निकलने की हिम्मत ही न करता।

अपने चेले-चामुंडों के साथ वे पास के गाँव चले गये, तो उस एकांत स्थान में हम दो ही रह गये— मैं और श्यामलाल। दुर्लभ साथी है यह श्यामलाल। चाहे जितना बोझ उठाना पड़े, चाहे जितना चलना पड़े, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरे पीछे अपनी जान तक जोखिम में डालने के लिए तैयार रहता है।

खुले में सोये। अमावस्या की रात थी। आकाश में अनगिनत तारे जगमगा रहे थे। तारे तो रोज रहते हैं, लेकिन आकाश आज कैसा बौराया है!

मेरा मन आकाश में खरीदारी करने के लिए चल पड़ा। मैं अनंत आकाश में मोलभाव कर रहा था, तभी कुछ चींटियों ने मुझे काटा और मैं आसमान से धरती पर आ गिरा। बहुत चींटियाँ थीं। कई बार जगह बदली, फिर भी ठीक से सो नहीं सके।

सुबह चल दिये। दोपहर को मारुकी-चिचली पहुँचे। धर्मशाला में रुके। इसमें एक युवा साधु रहता था। उसने कहा, 'झाड़ी में से ही जाइए। सात-आठ दिन में पार हो जायेंगे। मार्ग कठिन जरूर है, लेकिन भूलने-भटकने का कोई सवाल नहीं। बस, मैया के किनारे-किनारे चलिए। झाड़ी में एक पेड़ नहीं, इसलिए ज्यादा धूप मत होने दीजिए। हाँ, आपका सारा सामान लुट जायेगा। आपके पास लँगोट है या नहीं?'

'नहीं।'

'तब पहनेंगे क्या? भील आपको नंगा कर देंगे।'

साधु को बड़ी चिंता हुई। किसी के यहाँ से उसने टाट के दो टुकड़े मँगवा कर दिये। 'इन्हें रख लीजिए, बड़े काम आयेंगे।'

केवल लँगोट पहन कर चिलचिलाती धूप में चल सकेंगे? खायेंगे क्या, सोयेंगे कैसे, मेरी स्कैचिंग का क्या होगा?

मन में एक आशा है। ऐसी कठिन परीक्षा शायद हमें नहीं देनी पड़ेगी। झाड़ी में शायद हमारी सुरक्षा-व्यवस्था हो जायेगी। फिर भी टाट की लँगोटियाँ जतन से रख लीं। ईश्वर करे इन्हें पहनने की नौबत न आये!

सुबह कपिला-संगम के पास नर्मदा का राजराजेश्वर रूप देखा। नदी यहाँ कितनी चौड़ी हो गयी है! लेकिन जानता हूँ, इसे सँकरी होने में भी देर नहीं लगेगी।

दोपहर को दतवाड़ा पहुँचे। मंदिर के घाट की सीढ़ियाँ मूर्ति की तरह चट्टानों को तराश कर बनायी गयी हैं।

रात को खुले में सोये। अनगिनत तारों से जगमगाता आकाश कैसा नया-नवेला लग रहा था! मुझे लगा, रात्रि का आकाश मानो टी.वी. का स्क्रीन है। (कितना बड़ा स्क्रीन!) उसमें चंद्र, तारे, ग्रह, नक्षत्र द्वारा खेला जा रहा नाटक हम यहाँ दूर पृथ्वी पर बैठे-बैठे देखते हैं। असली 'दूरदर्शन' तो यह है!

पर हमारी पृथ्वी आकाश से अलग नहीं, आकाश में ही है। ('जल में कुंभ' जैसी!) तब मेरी उपमा ठीक नहीं हुई। स्क्रीन से दर्शक अलग होता है, पर यहाँ तो दर्शक भी उसी स्क्रीन में है! पहले में द्वैत है, इसमें अद्वैत। लेकिन मेरी द्वैत-अद्वैत की मीमांसा आगे बढ़े, इसके पहले कुछ चींटियों ने काट कर मुझे याद दिलाया कि मैं वहाँ नहीं, यहाँ हूँ। बहुत चींटियाँ हैं, रोज रात को बार-बार जगह बदलनी पड़ती है।

अगला पड़ाव पिपलोद। इसके बाद का पड़ाव राजघाट। राजघाट से झाड़ी शुरू। जिस झाड़ी का मुझे आकुल इंतजार था, वह आखिर आ गयी। लेकिन यहाँ तो कोई झाड़ी नहीं। बल्कि यहाँ नर्मदा पर सड़क का पुल है। पाँच किलोमीटर दूर बड़वानी शहर है। शासकीय कार्यालय, थाना आदि बड़वानी में है।

श्यामलाल को राजघाट की धर्मशाला में बिठाकर मैं बड़वानी गया। पुलिस के उच्च अधिकारी से मिला। अपना संक्षिप्त परिचय देकर कहा कि झाड़ी में मेरी सुरक्षा-व्यवस्था करने की कृपा करें।

उन्होंने तुरंत थानेदार को फोन किया। थानेदार की आवाज बुलंद थी,

मुझे भी सुनाई दे रही थी। वे कह रहे थे, 'भील तो लूटेंगे। यह उनकी सैकड़ों वर्ष पुरानी परंपरा है। हम किस-किस की व्यवस्था करते फिरेंगे?'

'लेकिन इनके पास इंदौर-संभाग के आयुक्त का पत्र है। यह व्यवस्था हमें करनी ही होगी।' फिर मुझसे कहा, 'आप एक काम कीजिए। थानेदार साहब से खुद मिल लीजिए।'

थानेदार उसी भवन में नीचे बैठते थे। युवा, सुपुरुष थानेदार। बात-बात पर ठहाका लगाते थे। मेरी बात ध्यान से सुनकर बोले, 'तो आप लेखक हैं। मेरे पिता भी लेखक थे। मैं आपकी पूरी मदद करूँगा, आप बिलकुल निश्चिंत रहें।'

पुलिस विभाग के प्रति मेरी श्रद्धा एकाएक बढ़ गयी।

राजघाट से बोरखेड़ी तक का इलाका उनके मातहत था। बोरखेड़ी से झलकन-संगम तक का इलाका पाटी थाने के अंतर्गत था। वहाँ उन्होंने वायरलेस से खबर भिजवा दी। पक्का इंतजाम करके बोले, 'कल सुबह आपके पास पुलिस के दो जवान बंदूक लेकर आ जायेंगे। परसों दोपहर तक आप बोरखेड़ी पहुँच जायेंगे। वहाँ से पाटी थाने के दो जवान आपको झलकन-संगम तक ले जायेंगे। वहाँ मध्यप्रदेश समाप्त होता है और महाराष्ट्र शुरू होता है। वहाँ से कोई खतरा नहीं, आप अकेले जा सकते हैं।'

मैं चलने को हुआ तो कहने लगे, 'परसों मैं खुद बोरखेड़ी आकर देखूँगा कि आपकी व्यवस्था ठीक से हो रही है या नहीं।'

चिलचिलाती धूप में मैं राजघाट लौटा तो दोपहर के तीन बज रहे थे। आसमान ने एक बड़े अलाव का रूप ले लिया था। फिर भी मैं बहुत खुश था।

हमारी धर्मशाला में तीन बाबा पहले से ही ठहरे हुए थे। दो नौजवान थे और खूब तगड़े भी थे। बड़े मुँहफट थे, जो मुँह में आया, बोलते थे। तीसरा उम्र में कुछ बड़ा था और दुबला-पतला था। मुझे डर लगा कि आगे झाड़ी में कहीं ये बाबा ही हमें लूट न लें। लेकिन जब तक मैं बड़वानी से लौटा, वे तीनों जा चुके थे। मैंने राहत की साँस ली।

दूसरे दिन सुबह बंदूक लिये पुलिस के दो जवान आ गये, तो हम चल पड़े। सशस्त्र पुलिस के साये में नर्मदा परिक्रमा करना कहाँ तक उचित है। लेकिन इसमें अनुचित भी क्या है। विश्वामित्र यज्ञ तभी कर पाये थे, जब राम-लक्ष्मण ने तीर-धनुष से उनकी रक्षा की थी। रक्षा का उपकरण भर बदल गया है, तीर-धनुष का स्थान बंदूक ने ले लिया है।

थोड़ा आगे बढ़े ही थे कि वे तीनों बाबा मिल गये। उनमें से एक बड़ा तेज-तर्रार था। उसने पुलिस वालों से कहा, 'बंदूक लेकर चले हो? भीलों के आगे अर्जुन का गांडीव भी कुछ काम नहीं आया था। तुम्हारी बंदूक

धरी की धरी रह जायेगी।' कहकर वह ठठाकर हँसा। पुलिस वाले भले थे कुछ बोले नहीं।

देखते-देखते भीलखेड़ा आ गये। नर्मदा-तट के इस छोटे से गाँव का विशेष महत्त्व है। यहाँ एक सज्जन रहते हैं। परकम्मावासी उनके पास अपना सामान जमा करा देते हैं। जब उस तट से लौटते हैं, तब वह उनका सामान वहाँ पहुँचा देते हैं। इस तरह वे झाड़ी में लुटने से बच जाते हैं। हम उनसे मिले।

'मेरे पड़दादा या शायद उसके भी दादा परिक्रमा पर निकले थे, तब भीलों ने उन्हें लूट लिया था। लौटकर उन्होंने यह सेवाकार्य शुरू किया, तो आज तक चला आ रहा है।'

दोपहर को जांगरवाकुटी पहुँचे। वहाँ के संन्यासी ने हमारा बड़े प्रेम से स्वागत किया। भोजन बनाने की तैयारी कर ही रहे थे कि वे तीनों बाबा भी आ पहुँचे। फिर तो पाँचों का भोजन साथ बना। हवा इतनी तेज थी कि कुटी के अन्दर भी धूल ही धूल थी।

शाम को बातें होने लगीं। उन तीन बाबाओं में से एक पहलवान-से बाबा के पास बढ़िया नयी चादर थी। किसी ने कहा, 'भील इसे लूट लेंगे।'

अक्खड़ और फक्कड़ बाबा ने दूर बैठे एक ग्रामीण से तेज आवाज में कहा, 'इधर आ!'

ग्रामीण सहमा-सहमा आया। 'यह ले जा!' हमसे कहा, 'कोई मुझसे छीन ले, इसके पहले मैं ही क्यों न दे दूँ।'

सुबह चल दिये, तीनों बाबा वहीं रह गये। तेज लू थी। रेत आती, तो रेत की आँधी चलती। अब नदी के दोनों ओर पहाड़ झाँकने लगे हैं।

बीजासेन के पास है हिरनफाल। हिरनफाल में दोनों ओर की पहाड़ियाँ आमने-सामने आ गयी हैं। बीच की चट्टानों में से सँकरी नर्मदा बह रही है। हिरनफाल है शूलपाण झाड़ी का प्रवेश-द्वार। यहाँ नर्मदा मानो अपने द्वार बंद कर लेती है और दुनिया बाहर रह जाती है।

बोरखेड़ी यहाँ से ज्यादा दूर नहीं। लेकिन नर्मदा के किनारे-किनारे जाना संभव नहीं। पास ही टेढ़ी-मेढ़ी, चढ़ती-उतरती, कच्ची सड़क है। उससे हम बोरखेड़ी आ गये। गाँव के मुखिया के घर ठहरे।

तीसरे पहर मोटर-साइकिल की आवाज सुनाई दी। हेड़-कान्स्टेबल को पीछे बिठालकर, दहकती धूप में धूल का गुबार उड़ाते थानेदार आ गये। यहाँ से उनके सिपाही लौट जायेंगे, लेकिन पाटी थाने के आ जायेंगे। हम लोगों का कुशल-क्षेम पूछकर, हँसते-हँसाते चले गये।

बोरखेड़ी बड़ा गाँव है। दो-तीन दुकानें हैं। दुकानवाला यह आखिरी गाँव है। यहाँ से झाड़ी शुरू। 'श्यामलाल, जो लेना हो, ले लो। आगे कुछ नहीं मिलेगा।'

शाम को पाटी के सिपाही आ गये— वानखेड़े और सिसोदिया। वानखेड़े इस इलाके का अच्छा जानकार है।

गाँव-खेड़े में एक का मेहमान सबका मेहमान। कुछ ग्रामीण हमें यहाँ की सबसे ऊँची पहाड़ी पर ले गये। नाम है बाबाबूडा। इस पर से मैंने साँझ के सूरज को पश्चिम क्षितिज में विलीन होते देखा। सूरज के डूब जाने पर भी मैं क्षितिज को देखता रहा, मानो यहीं खड़े-खड़े शूलपाण की झाड़ी को देख लूँगा।

सुबह चले तो हम छह थे। दो हम, दो सिपाही और दो ग्रामीण, जिन्हें सिपाहियों ने मार्ग दिखाने के लिए साथ में लिया था। इस तरह कमर कसकर, दल बाँधकर, हम झाड़ी के सबसे खतरनाक प्रदेश की ओर चल पड़े। झाड़ी ने जो जादू मेरे मन में जगाया था, जो सपने बुने थे, उसे पाने के दिन आखिर आ गये।

15. बोरखेड़ी से केली

नीचे बहती नर्मदा की हलकी-हलकी छप-छप सुनते हुए ऊँची पहाड़ी पगडंडी पर से चले जा रहे हैं। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते हैं, पहाड़ों का एक शतदल मानो खुलता आता है।

पहाड़ के बाद पहाड़, मोड़ के बाद मोड़ और ठसाठस पहाड़ियों में से राह निकालती आँकी-बाँकी सँकरी नर्मदा। यह है शूलपाण की झाड़ी। प्रकृति मानो यहाँ नर्मदा के धागे में पहाड़ियों का गजरा गूँथती चली गयी है।

किन्तु झाड़ी नाम बड़ा भ्रामक है। मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात— इन तीन प्रान्तों के मिलन-स्थल में फैले नर्मदा के जिस अस्सी मील लंबे विस्तार को शूलपाण की झाड़ी कहते हैं, वहाँ झाड़ी तो क्या, धूप से सिर छिपाने को एक पेड़ नहीं। यहाँ हैं केवल पहाड़ियाँ— नंगी, बूची, वीरान और सुनसान पहाड़ियों का अनंत विस्तार। दुर्गम पथ और भयानक निर्जनता। नर्मदा परिक्रमा का यह सबसे खतरनाक इलाका है। इसमें से कोई भी परकम्मावासी बिना लुटे नहीं जा सकता। भीलों के भय से अधिकांश परकम्मावासी झाड़ी छोड़ देते हैं और जो चलते हैं वे भी ठंड में। गरमी में चट्टानें इतनी तप जाती हैं कि नंगे पाँव चलना अत्यंत कष्टप्रद हो जाता है। प्यास अलग परेशान करती है। लेकिन हमने जेठ की झुलसाती गरमी और तप्त हवाएँ चुनी थीं और अब पसीने से नहा रहे थे।

घुमाव पार करके एक पहाड़ी की छाया से बाहर निकले ही थे कि सतर्क वानखेड़े ने कहा, 'जरा वहाँ देखिए।'

दूर, नदी की सँकरी धारा को कूदते-फाँदते पार करते भील दिखाई दिये— लँगोट पहने सात-आठ भील!

अब वह प्रदेश शुरू हो गया है, जहाँ पुरुष केवल लँगोट पहनते हैं। बित्ते भर का लँगोट। लँगोट के ऊपर रूमाल के आकार का एक चौकोर कपड़ा झूलता है, बस।

'देखिए, अगर हम न होते तो वे आपका सब कुछ लूट लेते। जैसे नंगे वे खुद हैं, वैसा ही नंगा आपको भी कर देते। चश्मा तक उतार लेते। विरोध करते तो पीटते। अगर उन्हें लगता कि यह आदमी थाने में रिपोर्ट कर सकता है तो काटकर फेंक देते।'

सिसोदिया ने कहा, 'हम खरगोन जिले में हैं। सामने धार जिला है। भीलों का आतंक बोरखेड़ी से लेकर झलकम संगम तक है। अस्सी मील की झाड़ी में बस इस पच्चीस-तीस मील में ही लूटपाट होती है।'

अब तक भील उस तट से इस तट पर आ गये थे। हमें दूर से देखकर बहुत खुश हुए होंगे— आज तो खूब जजमान आ रहे हैं, सामान भी खूब है, मजा आ जायेगा। लेकिन कुछ पास आने पर देखा होगा— सत्यानाश! इनके साथ तो बंदूकधारी पुलिस के जवान हैं! छुप जाओ, छूमंतर हो जाओ! और सभी पलक झपकते गायब हो गये— मानो धरती में समा गये।

खोहों में छिपे-छिपे वे हमें सामान असबाब के साथ पहले आते और फिर जाते हुए देखते रहे होंगे और दाँत पीसकर रह गये होंगे। अपने शिकार को इतनी आसानी से हाथ से निकलता देखकर उन्हें कितनी निराशा हुई होगी, कितनी!

दोपहर को तूवरखेड़ा पहुँचे। छह-सात बिखरी हुई झोपड़ियों का दुइयाँ-सा गाँव। मुखिया के यहाँ रुके। वानखेड़े मुखिया को जानता है। उससे मिलकर वह मेरे पास आया और बड़े संकोच के साथ बोला, 'आपको मुर्गा तो चलेगा न? हमारे स्वागत में वे मुर्गा काटना चाहते हैं। मना करने पर बुरा मानेंगे।'

मिष्टान्न में मुर्गा! भीलों के घरों में मुर्गियों के झुंड रहते ही हैं। मैं नहीं खाता, पर तुम लोग मजे से खाओ। श्यामलाल को भी शामिल कर लो।'

श्यामलाल ने दाल बनायी। मुखिया की स्त्री ने ज्वार की रोटी बनायी। मुझे वे मालपुए से कम नहीं लगीं।

खाना खाकर बैठा ही था कि बाहर छाया में खाट पर लेटी एक स्त्री पर मेरा ध्यान गया। हमें देखकर वह उठ बैठी और कौतूहल से हमारी ओर देखने लगी। उसे देखकर मैं अवाक रह गया। मेरी नजर उसके चेहरे पर से

हटती ही न थी। रंग तो काला था, लेकिन इतना सुंदर, कोमल-मृदुल, रूप में तराशा चेहरा मैंने कभी नहीं देखा था। विधाता ने जिस दिन उसे रचा होगा, उस दिन और कोई काम नहीं किया होगा। बस, बैठे-बैठे परम संतोष से उसे देखता रहा होगा। मुझे अनायास ही गुरुदेव का यह गीत याद हो आया:

कृष्णकलि आमि तारेई बलि,
कालो तारे बले गांयरे लोक।
कालो? ता से जतई कालो होक,
देखेछि तार कालो हरिन चोख।

लोग चाहे जिस नाम से पुकारें, मैं उसे कृष्णकली कहता हूँ। गाँव के लोग उसे काली कहते हैं। काली? कितनी ही काली क्यों न हो, मैंने देखी हैं उसकी हिरनी-सी काली आँखें।

शांतिनिकेतन में यह गीत कई बार सुना था। तब क्या पता था कि इस कृष्णकली से शूलपाण झाड़ी में भेंट होगी!

वह गर्भवती थी, सातवाँ या आठवाँ महीना चल रहा था। अभी माँ नहीं बनी थी, पर मातृत्व की उजास उसके चेहरे पर उतर आयी थी। सौंदर्य के साथ मांगल्य आ मिला था। मैंने उसके दो-तीन स्केच बनाये, पर बात नहीं बनी तो नहीं बनी। एक कुछ ठीक हुआ, वह उसे बताया। अपना चेहरा देखकर वह हौले से मुसकरायी। कैसी अनबूझ, मोहक मुसकान!

तभी दो किशोर आये। मसें भीग रही थीं। क्या सुंदर चेहरे थे! अपनी रंग-बिरंगी पाग में बिलकुल राजकुमार लग रहे थे। क्या स्त्री, क्या पुरुष, भील-भिलाले बड़े सुंदर होते हैं। धूप में तपे इनके शरीर बड़े सुगठित होते हैं। दुबले-पतले होते हैं, पर उनमें गजब की फुर्ती होती है।

दोपहर को नहीं चलते थे, पर आज चलेंगे। इस खतरनाक प्रदेश को जितना जल्द पार कर लें, उतना ही अच्छा।

कभी घाटी में से तो कभी पहाड़ियों की पीठ पर से चलते हुए दिन डूबते कोटबांजनी पहुँचे। सारा दिन चले थे, थककर चूर हो गये थे। अगर स्नान कर लें, तो थकान दूर हो जाये।

रात के अँधेरे में नर्मदा अमूर्त, रहस्यपूर्ण और भयावह लग रही थी। हलकी-सी चाँदनी में चारों ओर की पहाड़ियाँ और भी अधिक काली लग रही थीं। नीरव नर्मदा में रात्रि-स्नान किया। मुझे लगा कि मैं नदी में भी नहा रहा हूँ और अँधेरे से भी नहा रहा हूँ।

सुबह चल दिये। किरात-कन्या नर्मदा का लयबद्ध बहाव देखते हुए थोड़ी देर में झलकन-संगम आ गये। झरने-सी झलकन के इस पार मध्यप्रदेश, उस पार महाराष्ट्र। सिपाही यहाँ से लौट जायेंगे, आगे हमें अकेले जाना होगा।

संगम पर मुखिया का घर था। मुखिया की स्त्री भुनी हुई मूँगफली ले आयी। उसके चार-पाँच बच्चे थे। उसकी देह कुछ बेडौल हो गयी थी, पेट थोड़ा झूल गया था, पर चेहरा कितना सुंदर था! मुखिया भी बड़ा बाँका था। दोनों के चेहरे ताजगी और तंदुरुस्ती से दमक रहे थे। उनकी बारह-तेरह वर्ष की बेटी थी। उसने माता-पिता का भरपूर रूप पाया था। मैंने कहा, 'बिटिया, तू बैठ, तेरा चित्र बनाऊँगा।'

यह सुनकर वह इतना हँसी कि हँसते-हँसते दुहरी हो गयी। चेहरा लाल हो उठा। प्रसन्न माँ जिस दृष्टि से बेटी को निहार रही थी, उसमें स्नेह की अनुभूति तो थी ही, प्रशंसा की अभिव्यक्ति भी थी। खुशी से उमगते स्वर में उसने मुझसे कहा, 'वह शरमा रही है।'

उस बच्ची का बाल सुलभ भाव से लजाना मन को ऐसा छू गया कि यदि अशोभनीय न समझा जाता, तो मैं उसका माथा चूम लेता। माँ के बहुत कहने पर वह सिर पर ओढ़नी डालकर बैठी। लेकिन उस शर्मीली लड़की के सौंदर्य का शतांश ही मैं अपने स्केच में ला सका। स्केच अच्छा तो नहीं हुआ, फिर भी मुझे बहुत प्रिय है। यह मुझे एक ऐसी अल्हड़ लड़की की याद दिलाता है, जिसे पाकर कोई भी पिता गर्व से भर उठेगा।

संगम में नहाने के बाद झलकन में भी नहाया। कितने भर की झलकन के इस पार मध्यप्रदेश, उस पार महाराष्ट्र। महाराष्ट्र में नहाया, मध्यप्रदेश में अँगोछे से शरीर पोंछा!

वानखेड़े और सिसोदिया यहाँ से वापस चले गये। जाते समय कह गये, 'आगे कोई डर नहीं; निर्भय होकर जाइए। घर जाकर चिट्ठी जरूर लिखियेगा। आपकी आगे की यात्रा कैसी रही, यह जानने की उत्सुकता रहेगी।'

अब हम महाराष्ट्र में चल रहे हैं।

चलते-चलते मन में यह विचार भी आया कि अगर कल के भीलों को पता चल गया कि सिपाही तो चले गये हैं, तो वे आज भी आकर हमें लूट सकते हैं और कल का गुस्सा निकालने के लिए हमारी थोड़ी-बहुत पिटाई भी कर सकते हैं। लेकिन तभी मैंने अपने-आपको हलके-से झिड़का, 'इतने डरपोक हो तो आये ही क्यों!'

दोपहर के बाद का चलना बड़ा कष्टप्रद होता है। धरती खूब तप जाती है, छाया के लिए एक पेड़ नहीं, ऊपर से सूरज सामने पड़ता है, इसलिए

ऐसा लगता है मानो कोई हमें धीमी आँच में भून रहा है।

नदी कुछ अधिक ही आड़ी-टेढ़ी, आँकी-बाँकी बहती है। चारों ओर ठसाठस पहाड़ियाँ हैं। नर्मदा मानो सौ-सौ तालों में बंद है। हम सोचते कि नर्मदा अब आगे कैसे बढ़ेगी? पर रास्ता रोककर खड़ी पहाड़ियों को चकमा देकर कहीं न कहीं से रास्ता खोज ही लेती है और चट्टानों को अपने दुलार भरे स्पर्श से गुदगुदाती हुई आगे बढ़ जाती है।

लोगों की भाषा समझ में नहीं आती। इनकी बोली मराठी नहीं, कुछ और है। महाराष्ट्र का यह प्रदेश खानदेश कहलाता है, जिला है धूलिया।

पहाड़ियों की भूलभुलैया से राह निकालती नर्मदा और चट्टानों के आल-जाल से मार्ग निकालते हम। कोई दो घंटे के बाद नदी किनारे बाँस पर टँगी एक तख्ती दिखाई दी। उस पर हिन्दी में लिखा था : यहाँ परकम्मावासियों को सदाव्रत दिया जाता है।

इस वीराने में इस तख्ती को देखकर बड़ी खुशी हुई। पास ही एक पगडंडी ऊपर जाती थी। ऊपर गये तो एक गाँव दिखाई दिया। गाँव का नाम था नीमगव्हाण यानी नीमगाँव। जो गुरुजी सदाव्रत देते थे, वे तो कहीं बाहर गये थे, पर उनका शिष्य था। बड़ा ही विनम्र। बड़े उत्साह से उसने हमारा स्वागत किया। रुकने का बहुत आग्रह किया, लेकिन हमें जल्दी थी, इसलिए थोड़ी देर बैठने के बाद पीठ पर बोझा लाद कर चलने को तैयार हुए तो उसने कहा, 'आप मैया की परिक्रमा कर रहे हैं। हमारे म्हाराष्ट्र के रिवाज के अनुसार मैं आपका साष्टांग चरण-स्पर्श करना चाहता हूँ

मेरी खुशी का क्या कहना! इतना सम्मान तो कभी किसी ने नहीं दिया। उम्र में वह मेरे सबसे छोटे बेटे से भी छोटा था। पैर छू सकता है। लेकिन यह क्या? पैर छूने के बजाय वह मेरी ओर टुकुर-टुकुर देख क्यों रहा है?

मैं मूढ़मगज जब किसी तरह नहीं समझा, तब उसने बड़े संकोच के साथ कहा, 'जरा चप्पल निकाल लीजिए।'

मुझे लगा कि जमीन फट पड़े और मैं उसमें समा जाऊँ। चप्पल निकाल दी तो उसने जमीन पर लेटकर दंडवत प्रणिपात किया।

दोपहर की चिलचिलाती धूप में पेन्ड्रा पहुँचे। सामने तट पर हापेश्वर का मंदिर दिखाई दे रहा था। भील स्त्रियों का एक दल सिर पर घास के गट्ठर लिये आया। स्त्रियों को उस पार जाना था। सँकरी नर्मदा में एक छोटी नाव पड़ी रहती थी। नाव उस पार थी। एक स्त्री तैरकर गयी, नाव ले आयी और तीन-चार खेप में सभी उस पार चली गयीं। देर तक नदी में नहाती और तैरती रहीं, फिर हँसती-चहकती चली गयीं।

चारों ओर भूरी, धूसर या कत्थई पहाड़ियाँ हैं— दूसरा कोई रंग नहीं। इस एकरसता को तोड़ती हैं यहाँ की स्त्रियाँ। अपने चटकीले वस्त्रों में वे रंग-बिरंगे फूलों-सी लगती हैं। लेकिन मनुष्य यहाँ कितनी मुश्किल से दिखाई देता है!

धूप का रंग कढ़े दूध-सा है। धूप भी एकदम कढ़ी हुई! ताप के साथ-साथ उसका भार भी महसूस हो रहा है।

ऊपर से चले। शाम तक पीपलचोपानी पहुँच जायेंगे। चलते-चलते पगडंडी सहसा खत्म हो गयी। दाहिनी ओर नर्मदा का खड़ा किनारा सीधे पानी में उतर गया था और सामने गहरे नाले की खड़ी कगार थी। न नदी में उतरना संभव था, न नाले में। नाले के उस पार कुछ झोपड़ियाँ दिखाई दे रही थीं। अगर यह नाला न होता तो हम वहाँ आधे घंटे में पहुँच जाते। लेकिन अब लौटने के सिवा कोई चारा न था। लंबा चक्कर मारकर नाला पार किया। अब एकदम चढ़ाई थी। एक के बाद एक पहाड़ी चढ़ते गये। फिर उतराई आयी। चढ़ाई से उतराई अधिक मुश्किल थी। किसी तरह उन झोपड़ियों तक पहुँचे। अलग-अलग टेकरियों पर अलग-अलग झोपड़ियाँ। उस पहाड़ी गाँव का नाम था केली। यहाँ के प्रायः नग्न स्त्री-पुरुषों को देखकर लगा कि हम आदिम युग में पहुँच गये हैं। सभ्यता का भार पीछे छोड़ आये हैं।

आकाश बादलों से घिर गया था, कभी भी बूँदा-बाँदी हो सकती थी। बुरी तरह थक भी गये थे, इसलिए पीपलचोपानी जाने का विचार छोड़ दिया और यहीं रात रह गये।

सुबह उठे तो दिन चढ़ चुका था। जिस भील के घर ठहरे थे, उससे कहा, 'आगे का रास्ता दिखाने चलो, मेहनताना देंगे।'

'पीपलचोपानी अच्छा गाँव नहीं। लोग खतरनाक हैं। कतल कर डालते हैं।' अपनी टूटी-फूटी भाषा में उसने कहा, फिर गरदन पर हाथ फेरकर कतल का मतलब समझाया।

स्थिति गंभीर थी। हम नर्मदा-परिक्रमा के सबसे खतरनाक इलाके में घुस आये थे और लौटने की कोई गुंजाइश नहीं बची थी। सो किसी भी कीमत पर आगे बढ़ने के सिवा और कोई रास्ता न था। वह किसी भी तरह चलने को राजी नहीं हुआ, तो मन में तरह-तरह की आशंकाएँ लिये उस भयंकर सन्नाटे में हम दो ही चल पड़े। पुलिस वालों की बड़ी याद आयी!

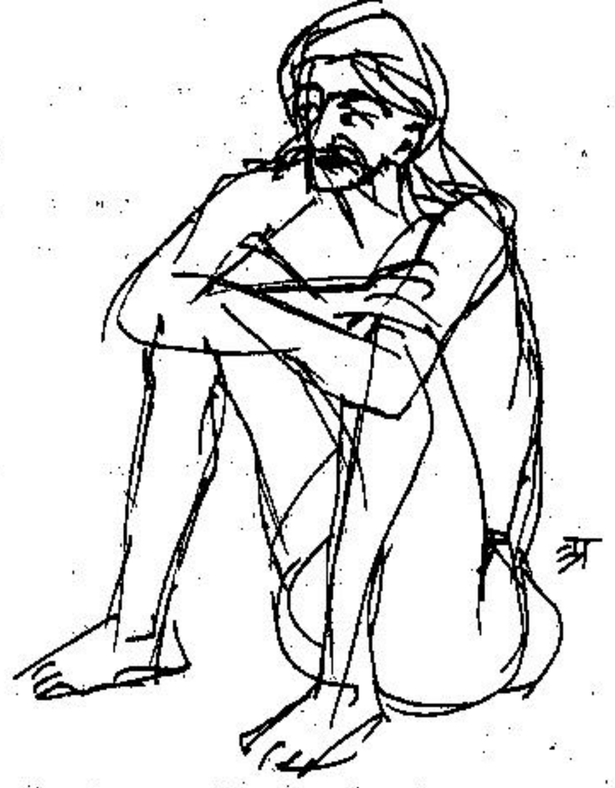

16. केली से शूलपाणेश्वर

सूरज धधक रहा है और धूप लावा की तरह फैल रही है। न कोई गाँव दिखाई देता है, न आदमी। आदमी तो आदमी, चिरई का बच्चा तक नजर नहीं आता। इस नीरव निर्जन संसार में लगता है, हम अकेले हैं, एकदम अकेले। इस वीरानी और सूनेपन में नर्मदा ही हमारा एकमात्र अवलंब है।

हम इतने डरे-सहमे थे कि आपस में बात भी नहीं कर रहे थे। केवल भागे जा रहे थे। खतरा मानो प्रतिपल पास आता जा रहा था।

कोई दो घंटे बाद एक गाँव दिखाई दिया। दिल की धड़कन तेज हो गयी। तेजी से निःशब्द चले जा रहे थे। कहीं शब्द किया और किसी भील ने शब्दवेधी बाण चला दिया!

नदी की चट्टानों में से दबे-दबे, चोरी-चोरी भागे जा रहे थे। गाँव की एक स्त्री अपने दो बच्चों के साथ नहाने आयी थी। राह दिखाते हुए उसने कहा, 'यहाँ से नहीं, वहाँ से।' उससे गाँव का नाम तक पूछने की हिम्मत नहीं थी। काफी देर बाद जब दूसरा गाँव आया, तब पूछा कि पीछे जो गाँव निकल गया, उसका नाम क्या था? पीपलचोपानी— जवाब मिला।

मेरे मुरझाये होंठों पर फीकी-सी मुसकान आ गयी। वैसा कुछ नहीं हुआ, जैसा हमें बताया गया था। हम नाहक डर गये थे। हमारी खुशी का पारावार नहीं रहा।

अब, जब खतरा उड़ते बादल की तरह निकल गया, तो मन में तरह-तरह के विचार आने लगे। यदि कुछ अघटित घट जाता, तो मेरी किताब का क्या होता? जिसके लिए आठ साल से नर्मदा की खाक छानता फिर रहा हूँ, अपनी जान तक जोखिम में डाल चुका हूँ, नर्मदा पर मेरी वह किताब अधूरी रह जाती।

लेकिन अब तो खतरा निकल गया, किताब एक न एक दिन पूरी हो ही जायेगी। तब क्या होगा?

अव्वल तो मुझे प्रकाशक नहीं मिलेगा, प्रकाशक मिला तो ग्राहक नहीं मिलेगा, और ग्राहक मिला तो पाठक नहीं मिलेगा!

अगर कहूँ कि यह यात्रा मैं 'स्वांतः सुखाय' कर रहा हूँ, तो वह अर्द्धसत्य होगा। मैं चाहता हूँ कि जो सुख मुझे मिल रहा है, वह दूसरों को भी मिले। मैं 'स्वांतः सुखाय' भी चल रहा हूँ और 'बहुजन सुखाय' भी चल रहा हूँ।

तो कहाँ है यह बहुजन?

टी.वी. के सामने! टी.वी. और वीडियो कैसेट के इस युग में किताब पढ़ने की जहमत भला कौन उठायेगा! टी.वी. खोल दो और कुर्सी में पसर जाओ। किताब को फेंक दो। अधिक से अधिक 'दिवंगत पुस्तक' की स्मृति में एकाध मर्सिया पढ़ दो और फिर उसे भूल जाओ।

यह है पुस्तक की नियति। अच्छी तरह जानता हूँ। फिर भी इसी किताब के लिए खून-पसीना एक कर रहा हूँ।

मूर्ख!

नर्मदा शिलाओं से सट कर बह रही है। लगता है कि शिलाओं से रगड़-रगड़ कर अपनी देह को उजला कर रही है। (नदी नहा रही है!) शूलपाण झाड़ी के निभृत एकांत में नर्मदा अवभृथ स्नान कर रही है!

प्रायः प्रवाह के पास ही चलते। लेकिन सोचते कि ऊपर से चलते तो चक्कर कम होता। ऊपर से चलते तो ऐसा नाला आता कि उसमें उतर कर फिर चढ़ने में दम निकल जाता। तब सोचते कि इससे तो नीचे ही ठीक था। नीचे से चलते तो ऊपर की पगडंडी टेरती।

यही है जिंदगी। मनुष्य को उसके पास जो है, उससे संतोष नहीं। जो नहीं है, उसकी उसे भारी चाह है। मनुष्य बना ही है आधा सुखी और आधा दुःखी रहने के लिए। खालिस सुख उसके भाग्य में ही नहीं।

नर्मदा से जरा-सा हटकर, नाले के किनारे, एक गाँव है डनेल। पता चला कि वहाँ एक दुकान है। वहाँ पहुँचे तो पता चला कि दुकानदार पहाड़ के उस पार सामान लेने गया है। उसकी स्त्री ने हमें आवश्यक चीजें दीं

और वहाँ रुकने की, यहाँ तक कि अपने चूल्हे में खाना बनाने तक की, अनुमति दी।

नर्मदा के सामने तट के भील भी सौदा लेने यहाँ आते हैं। कुछ भील खरीदारी करने आये तो दुकानदार की लड़कियाँ उनसे धड़ल्ले से गुजराती में बातें करने लगीं! इस तट पर महाराष्ट्र है, उस तट पर गुजरात। शहर से संपर्क होने के कारण ये लड़कियाँ मराठी तो जानती ही थीं, गुजराती भी जानती थीं। और जब मैंने बताया कि मेरी मातृभाषा गुजराती है, तो सहज मुझे सुनाने के लिए वे आपस में गुजराती में बतियाने लगीं। कल तक तो किसी की भाषा समझ में नहीं आ रही थी और आज एकाएक ऐसी बढ़िया गुजराती! मुझे लगा जैसे कोयल गा रही है।

दोपहर को जरा लेटा तो पास में एक गधा आकर खड़ा हो गया। दुकानदार के पास दस-बारह गधे हैं। पहाड़ के उस पार से इन्हीं पर सामान लाद कर ले आता है। यह बीमार है, इसलिए घर पर रह गया है। मुझे आर.एल. स्टीवेन्सन के 'ट्रेवेल्स विथ ए डन्की' का स्मरण हो आया। 'ट्रेजर आइलेन्ड' तथा 'डॉ. जेकिल एन्ड मिस्टर हाइड' के प्रसिद्ध लेखक स्टीवेन्सन जब युवा थे, तब फ्रांस में एक खच्चर के साथ उन्होंने एक छोटी-सी पदयात्रा की थी। इसका वर्णन उन्होंने 'ट्रेवेल्स विथ ए डन्की' में किया है। उनकी इस यात्रा के ठीक सौ साल बाद एक लेखिका ने उसी तरह खच्चर के साथ उसी मार्ग से चल कर उस यात्रा की शताब्दी मनायी थी और इसका सचित्र विवरण छपवाया था।

मेरी इस यात्रा के सौ साल तो क्या, पचीस साल बाद भी कोई इसकी पुनरावृत्ति न कर सकेगा। पचीस साल में नर्मदा पर कई बाँध बन जायेंगे और इसका सैकड़ों किलोमीटर लंबा तट जलमग्न हो जायेगा। न वे गाँव रहेंगे, न वे पगडंडियाँ। शूलपाण की पूरी झाड़ी डूब जायेगी। पिछले 25,000 वर्षों में नर्मदा तट की भूगोल जितनी नहीं बदली है, उतनी आने वाले 25 वर्षों में बदल जायेगी।

हमारे देश की इस प्राचीनतम नदी पर आधुनिकतम बाँध बाँधे जा रहे हैं। इस पर जितने बाँध बन रहे हैं, उतने भारत की अन्य किसी नदी पर नहीं। नर्मदा का जो विशाल जलभंडार अभी तक व्यर्थ जाता था, अथवा बाढ़ के कारण नुकसान पहुँचाता था, वह अब नहीं होगा। मध्यप्रदेश और गुजरात का तो कायापलट हो जायेगा।

नर्मदा तो बस नर्मदा ही है। जैसा भव्य उसका अतीत है, वैसा ही उज्ज्वल उसका भविष्य है।

सुबह मुर्गे की बाँग के साथ चल पड़े। वही-वही दृश्य देख कर अब थकने लगे हैं। पहाड़ियों के रेवड़ खत्म होना ही नहीं चाहते। कई दिनों से प्रकृति का खुला विस्तार नहीं देखा। नजर दूर तक जाती ही नहीं, पहाड़ियों से टकराकर वापस आ जाती है। अब यह पाषाणपुरी खत्म हो तो अच्छा हो।

आज ही खत्म हो जायेगी। दोपहर तक शूलपाणेश्वर पहुँच जायेंगे। झाड़ी वहाँ खत्म हो जाती है। बस, आज भर की बात है।

नर्मदा की ऊँगली पकड़कर बढ़ रहे हैं। अब मार्ग कुछ आसान है। कहीं-कहीं जरा-सी समतल भूमि भी दिखाई देती है। पेड़ भी दिखाई देने लगे हैं लेकिन ठूँठ, नंगे-नंगे।

हवा इतनी गर्म हो गयी है कि लगता है, अगर छोटी-सी चिनगारी डाल दें, तो हवा आग पकड़ लेगी।

चलते-चलते सोचते, काश, हमारे पर लग जाते और हम अपने थैलों समेत आकाश में उड़ पाते! ऊपर से, धागे-सी पतली नर्मदा कैसी दिखती? लगता, मानो इन पहाड़ों ने अपने वक्ष पर यज्ञोपवीत धारण कर रखा है। नदियाँ धरित्री का यज्ञोपवीत ही तो हैं।

एक जगह एक लंबी सँकरी नाव अपनी पीठ पर मछुआरों को लिये नदी की धार को चीरती तेजी से चली जा रही थी। शायद वह नाव नहीं, लकड़ी के लट्ठे थे। एक गाँव में ढोल-नगाड़े बज रहे थे तो एक जगह नर्मदा की तेजी से भागती जलधाराएँ धमाचौकड़ी मचा रही थीं। लेकिन आज हमारा सारा ध्यान शूलपाणेश्वर पहुँचने में था। आज हमारे पाँवों में पर लग गये थे।

उमरखेड़ी, चीमलखेड़ी और धानखेड़ी पार करके तपती तिपहिया में जब शूलपाणेश्वर के मंदिर पहुँचे, तो थक कर निढाल हो चुके थे। लेकिन इस बात की खुशी भी थी कि आखिर शूलपाण की दुर्गम और खतरनाक झाड़ी हमने सही-सलामत पार कर ली थी।

मंदिर के बाहर एक मेटाडोर खड़ी थी। उसमें बैठकर बहुत-से स्त्री-पुरुष झाड़ी के अधिष्ठाता देवता भगवान शूलपाणेश्वर के दर्शन करने आये थे। स्त्रियाँ भोजन बना रही थीं। खूब सुगंध आ रही थी। भाग्य ने साथ दिया तो हमारा बुलावा भी आ सकता है!

मैं नहाने चला गया। देर तक नहाता रहा और सोचता रहा कि जितने प्रपात नर्मदा में हैं, उतने भारत की अन्य किसी नदी में नहीं। लेकिन प्रपात-बाहुल्या नर्मदा की इस पूरी झाड़ी में, जहाँ अस्सी मील तक पहाड़ियाँ ही पहाड़ियाँ हैं, और जहाँ एक से एक प्रपात हो सकते थे, वहाँ एक भी प्रपात नहीं! यहाँ वह ढुलकती है, लुढ़कती है, फिसलती है, तेजी से भागती

है, लेकिन यह नर्मदा का ही कौशल है कि एक बार भी गिरती नहीं!

पंदरह दिनों तक न आईना देखा था, न दाढ़ी बनायी थी। आज पहली बार आईने में मुँह देखा, तो दिल धक से रह गया— मैं यह किस बुड्ढे को देख रहा हूँ! पके बाल और धँसे गाल के कारण वैसे ही उम्र से दस बरस बड़ा दिखाई देता हूँ और अब पंदरह दिनों की बढ़ी हुई सफेद दाढ़ी— करेला और नीम चढ़ा!

एक बार की बात है। रास्ते में एक ग्रामीण का साथ हो गया था। उसके बाल सफेद हो गये थे, गाल धँस गये थे और सामने के दाँत भी गिर गये थे। मैं सोच रहा था, यह आदमी मुझसे सात-आठ बरस तो बड़ा होगा ही। तभी उसने मुझसे पूछा, 'आप कहाँ रहते हैं, पिताजी?'

इस घटना को अपने छात्रों को सुनाकर मैंने पूछा था, 'बताओ, यह घटना हास्य रस की है या करुण रस की?' तो एक छात्रा ने दबी जुबान में कहा था, "वात्सल्य रस की!"

ऐसा है मेरा शरीर। अपनी भोंड़ी सूरत और सींकिया शरीर, दोनों से ही मुझे विरक्ति रही है। लेकिन मेरे इसी दो हड्डी के शरीर ने 57 वर्ष की आयु में भरी गरमी में शूलपाण की विकट झाड़ी पार करवा दी। आज लगा कि मेरा यह शरीर मुझे दंड के रूप में नहीं, वरदान स्वरूप मिला है। आज पहली बार अपने शरीर पर प्यार उमड़ा। हे दीनानाथ, हर जनम मुझे यही चोला देना!

मंदिर के लोग हमें बड़े कौतूहल से देख रहे थे। उन्हें इस बात का बड़ा अचरज है कि हमने इतने सामान के साथ बिना लुटे, झाड़ी कैसे पार कर ली।

तभी एक अधेड़ महिला ने टेर लगायी, 'चलिए, भोजन तैयार है। परकम्मावासी, आज भी आ जाइए!'

मैंने तुरंत श्यामलाल को जगाया और भोजन पर टूट पड़े।

शाम को देखा, झाड़ी के आरंभ में हमें जो तीन अक्खड़ और फक्कड़ बाबा मिले थे, उनमें जो सबसे दुबला-पतला था वह केवल लँगोट पहने चला आ रहा है। और लँगोट भी कैसा! रस्सी में बँधा कपड़े का बित्ता भर टुकड़ा, बस!

पिछली यात्रा में किसी ने कहा था, 'झाड़ी में से परकम्मावासी वैसे ही निकलता है, जैसे माँ के गर्भ से— एकदम नंगा। उस दिन विश्वास नहीं हुआ था, आज प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।

उसने बताया, 'हम आपसे एक दिन बाद चले। बोरखेड़ी के बाद एक भील आया और उसने हम तीनों को लूट लिया।'

'दूसरे दो तो खूब हट्टे-कट्टे थे। कुछ बोले नहीं?'

'उनकी तो बोलती ही बंद हो गयी थी। सब कुछ चुपचाप रख दिया।

'तुम अकेले कैसे?'

'ये दोनों मुझ पर जबरन धौंस जमाते थे। एक दिन खरी-खरी सुना दी और अलग हो गया।'

'रास्ते में कोई परेशानी?'

'रास्ते में तो नहीं, पर आज रो दिया।'

'क्यों?'

'प्यास के कारण। प्यास से मुँह सूख गया था, गले में जलन हो रही थी, आँखों के आगे चिनगारियाँ-सी फूट रही थीं। पहाड़ों में भटक गया था। बड़ी मुश्किल से नर्मदा मिली। नीचे उतर कर जी भरकर पानी पीया, तब जान में जान आयी।'

इस धधकती धूप में, उघाड़े बदन, खाली पेट, भट्ठी-सी तपती चट्टानों पर नंगे पाँव एकाकी चलना कितना कष्टप्रद हो सकता है, इसकी कल्पना कर मैं सिहर उठा। कष्ट सहन करने की यह पराकाष्ठा है।

पराक्रम शब्द आज पौरुष का वाचक है। मूल में परिक्रमा तथा पराक्रम दोनों की धातु एक है— 'क्रमण' अर्थात् आगे बढ़ना, सतत चलते जाना। नर्मदा परिक्रमा में अगर सचमुच कहीं पराक्रम है, तो वह शूलपाण झाड़ी पार करने में है।

उसी अधेड़ महिला ने आकर कहा, 'बाबा, नहा आओ, फिर भोजन कर लो।'

उसे नहाकर आने में देर हुई। कारण मैं समझ गया। नहाकर वह धूप में खड़ा रहा होगा। लँगोट जब सूखा होगा, तभी आ सका होगा।

शूलपाणेश्वर में महाराष्ट्र समाप्त हो जाता है और गुजरात शुरू। बड़ा मनोरम स्थान है यह, चारों ओर पहाड़ियों से घिरा। रात यहाँ रहेंगे, सुबह घर के लिए चल देंगे।

आखिर शूलपाण की झाड़ी हम पार कर चुके थे। वह झाड़ी जहाँ अस्सी मील तक नर्मदा पहाड़ियों के घटाटोप से घिरी है, जहाँ तरह-तरह की चट्टानें अपने पूरे लाव-लश्कर के साथ फैली हैं, जहाँ की भयानक निस्तब्धता यात्री को अकुला देती है, जहाँ नर्मदा का यौवन मानो वापस आ गया है और जहाँ नर्मदा के अंग-अंग में स्वच्छता और शुचिता का दिव्य स्पर्श है।

17. शूलपाणेश्वर

मध्यप्रदेश से गुजरात में क्या आ गया हूँ, मानो एक माँ की गोद से दूसरी माँ की गोद में आ गया हूँ।

मेरे पिता गुजरात के एक गाँव से आकर मध्यप्रदेश के जबलपुर में बस गये। मेरा जन्म जबलपुर में हुआ। बचपन में गुजरात आना-जाना चलता रहा, लेकिन बाद में कम होता गया और अन्ततः हम मध्यप्रदेश के निवासी हो गये। मैं हिन्दी-गुजराती दोनों जानता हूँ। लेकिन मेरे लड़के हिन्दी ज्यादा और गुजराती कम जानते हैं। तीन-चार पीढ़ी के बाद हमारा परिवार पूरी तरह से हिन्दी-भाषी हो जायेगा।

शूलपाणेश्वर के मंदिर के पुजारी त्रिवेदी जी मूलतः मध्यप्रदेश के हैं— गाडरवारा के नजदीक के एक गाँव के। घर में हिन्दी बोलते हैं, गाँव के लोगों के साथ गुजराती। इनके लड़के कभी हिन्दी बोलते हैं तो कभी गुजराती। और उनके भी लड़के तो गुजराती ही बोलते हैं। तीन-चार पीढ़ी के बाद पुजारी जी का परिवार पूर्णरूपेण गुजराती-भाषी हो जायेगा।

हमारे देश में इस प्रकार के आंतर-प्रवाह सदियों से चलते आ रहे हैं और देश की एकता को सुदृढ़ करते रहे हैं।

भविष्य की पीढ़ियाँ पूरी तरह से नये प्रान्त की हो जायेंगी, फिर भी उनके मन में अपने पूर्वजों के प्रान्त के प्रति प्यार की कुछ न कुछ भावना तो बनी रहेगी। फिर मैं तो बचपन में गुजरात में रहा हूँ, उसके स्कूलों में पढ़ा हूँ, उसकी धूल में लोटा हूँ। गुजरात की भूमि को देख कर यदि मैं आंदोलित हो उठा हूँ, तो यह स्वाभाविक ही कहा जायेगा।

शूलपाणेश्वर का पहाड़ी एकांत मुझे पिछली यात्रा में ही भा गया था। लेकिन घर लौटने की जल्दी थी, इसलिए एक ही दिन रुके थे। इस बार यहाँ तीन-चार दिन रहने का निश्चय करके ही घर से चले थे।

नदी का पानी मटमैला है। पहाड़ों पर हरियाली है। वे वैसे बंजर नहीं हैं जैसे पिछली यात्रा में थे। यह चमत्कार वर्षा का है। मैंने अपनी नोटबुक में लिखा:

पानी
जब समुद्र से आता है तब बादल
और जाता है तब नदी कहलाता है।
बादल उड़ती नदी है
नदी बहता बादल है।
बादल से वर्षा होती है
वर्षा इस धरती की शालभंजिका है।
उसके पदाघात से धरती लहलहा उठती है।
और जब वर्षा नहीं होती
तब यही काम नदी करती है।
वर्षा और नदी— धरती की दो शालभंजिकाएँ।
विचार और कर्म (कल्पना और यथार्थ)
आत्मा की शालभंजिकाएँ हैं।
इनके पदाघात से
आत्मा पल्लवित-पुष्पित होती है।
बादल धरा पर उतरकर सार्थक होता है
विचार कर्म में परिणत होकर कृतार्थ होता है।

बाद में मैंने ये पंक्तियाँ अपने एक कवि-मित्र को बतायी थीं। उन्होंने इसे देखते ही रद्द कर दिया। कहने लगे, 'तुम तो उपदेश देने लगे। कविता

में उपदेश नहीं होना चाहिए।' मैंने कहा, 'तुम्हारा यह उपदेश, कि कविता में उपदेश नहीं होना चाहिए, मुझे शिरोधार्य है!'

जानता हूँ, कुकवि होने से कवि न होना अच्छा। कविता को कवि के पास उसी तरह आना चाहिए जैसे वृक्ष में पर्ण आते हैं। वह सहज-साध्य हो, प्रयत्न-साध्य नहीं। वरदान की तरह मिली हो। लेकिन यह कविता कहाँ है, यह तो कुछ शब्दों का जोड़ भर है। क्या इसे भी वैसी ही कठिन अग्नि-परीक्षा देनी होगी?

यहाँ आये आज तीसरा दिन है। आज शरद-पूर्णिमा है। आज शाम तक मेरे दो छात्र भी आ जायेंगे। फिर कल से चलेंगे।

लेकिन शाम ढल कर रात हो गयी, पर छात्र नहीं आये। इस बियाबान में रात में तो आ ही नहीं सकते। हमने उनके आने की आशा छोड़ दी।

पूर्णमासी का चाँद निकल चुका है लेकिन घाटी में उसका उजाला नहीं आ रहा है। चाँद कुछ ऊपर चढ़े तब आये।

खाना खाकर मंदिर के दरवाजे पर बैठा था। नौ बज रहे होंगे। सहसा अँधेरे को चीर कर आती हुई कुछ आकृतियाँ दिखाई दीं। थोड़ी देर में बिलकुल पास आ गयीं। मैं एकबारगी ही चौंक उठा। अपनी आँखों पर विश्वास करूँ या न करूँ! भावावेश में चिल्ला उठा, 'कौन अनिल? इतनी रात को?'

तभी मलय भी आ गया।

शूलपाणेश्वर से नवागाम तीन किलोमीटर है। पिछली बार सड़क से चलकर हम वहाँ एक घंटे में पहुँच गये थे। लेकिन बरसात में सड़क बह गयी थी और पहाड़ी पगडंडी इतनी मुश्किल थी कि इस बार तीन किलोमीटर आने में तीन घंटे लगे थे— सो भी दिन में। रात के अँधेरे में ये कैसे आ गये!

'लोगों ने हमें आसान रास्ता बताया। काफी दूर तक हम उस तट से आये। फिर नाव से नर्मदा पार की और नाविक को साथ लिया। आज हमें हर हालत में यहाँ पहुँचना था, वरना कल आप यहाँ से चल देते।'

'हाँ, लेकिन मैं कल भी तुम्हारी बाट जोहता। कल न आते, तो परसों चल देते।'

'तो कृपया परसों ही चलिए। हम इतने थक गये हैं कि कल चलने की हिम्मत नहीं।'

'ठीक है, परसों चलेंगे।'

अब मैं निश्चिन्त हो गया। निश्चिन्त होकर नर्मदा तट चला गया। चाँद ने अपनी जादू की पिटारी खोल दी थी और चाँदनी धार बाँध कर बरस रही थी। कभी उस आसमानी जादूगर को देखता, कभी चाँदनी से नहाती

पहाड़ियों को देखता, तो कभी चाँदी-सी झिलमिलाती नदी को देखता। ऐसा उत्सव नयनों को देखने फिर कब मिलेगा।

पिछले तीन दिनों से मैं चाँद को बारीकी से देखता आ रहा था। जो चाँद कल तक अनगढ़-सा लग रहा था वह आज सुगढ़ और परिपूर्ण हो गया है। अब वह हर तरह से सुघड़ और संपन्न नजर आ रहा है। संपन्न तो इतना कि कहीं अपनी ही चाँदनी के भार से टूट न जाये!

मुझे लगा, चाँद आज बहुत धीरे-धीरे चल रहा है। उसे शायद पता चल गया है कि आज उसके भीतर का समस्त अमृत छलक-छलक कर बाहर आ रहा है। वह शायद अधिक से अधिक समय तक इस अमृत को लुटाते रहना चाहता है।

धरती पर किसी वरदान की तरह चाँदनी उतर रही थी। घाटी को चाँदनी से लबालब भरती देखना कितना अच्छा लग रहा था।

मुझे लगा, यह कितनी अजीब बात है कि चाँद का प्रकाश उसकी अपनी चीज नहीं। सूरज की धूप ही चाँद के धरातल से टकरा कर चाँदनी बन जाती है। तो चाँद सृजक नहीं, अनुवादक है! वह धूप का चाँदनी में अनुवाद करता है! पर कैसा दिव्य अनुवाद! धूप में वह माधुर्य कहाँ, जो चाँदनी में है! चाँद को अनुवादक कहूँ, अनुगायक कहूँ या अनुसर्जक कहूँ, यही समझ में नहीं आ रहा! (मूल वादक की कृति को उसके लय और छंद को बरकरार रखते हुए जो एक भाषा से दूसरी भाषा में ले आये, वही है अनुवादक!)

किन्तु, अनुवाद वाली मेरी यह उपमा आधी सच है। अनुवाद दोनों ओर हो सकता है। लेकिन धूप का चाँदनी में तो अनुवाद हो सकता है, पर चाँदनी का धूप में नहीं। वैसे ही, जैसे दूध में से दही तो हो सकता है, पर दही में से दूध नहीं। तो चाँद के पास ऐसा कोई दिव्य रसायन है, ऐसा कोई जामन है, जिससे वह धूप का चाँदनी में रूपांतर कर देता है। बेचारा सूर्य! उसके पास ऐसा कोई जामन नहीं!

देर रात बीते जब लौटा, तो मंदिर का दरवाजा बंद हो चुका था। लेकिन लकड़ी के इस बड़े दरवाजे में एक खिड़की थी। पुजारी जी ने उसे भिड़का कर छोड़ दी थी, बंद नहीं की थी। उसी से अंदर आया तो मेरे साथ नदी का शोर भी अंदर घुस आया! खिड़की बंद कर दी, तो शोर बाहर रह गया।

मंदिर के ठीक सामने है देवनदी— एक नन्ही नदी, जो नर्मदा से मिलती है। इसी संगम पर स्थित है यह मंदिर। देवनदी की खडी और ऊँची

कगार पर एक छोटा-सा गाँव है। देवनदी में सुंदर प्रपात है। हम यह सब देख आये हैं, पर आज अनिल और मलय के साथ दोबारा जायेंगे।

देवनदी की कगार चढ़कर ऊपर आ गये। यहाँ का मंदिर देखने के बाद देवनदी का प्रपात देखा और जिस विशाल चट्टानी कुंड में वह गिरता है, उस रुद्रकुंड को भी देखा। देवनदी किसी घायल शेरनी-सी, शोर और गरज के साथ, रुद्रकुंड में कूदती है और फिर सैकरे, ऊँचे चट्टानी दर्रे में से बहती हुई नर्मदा में मिल जाती है।

वापस मंदिर आये। इस मंदिर के नीचे, देवनदी की खड़ी कगार में से रिस-रिस कर पानी निकलता है। गाँव के लोगों ने यहाँ बाँस के दो टुकड़े बिठा दिये हैं तो उनमें से दो जलधाराएँ अनवरत गिरती रहती हैं। गाँव की स्त्रियाँ यहाँ आती हैं, चश्मे की धार के नीचे बैठकर नहाती हैं या पानी भरती हैं। शूलपाणेश्वर के मंदिर से हमें यह सब दिखता रहता था। अब यहाँ आये हैं, तो पहाड़ी से फूटने वाले इस चश्मे को भी देख लिया जाये। एकदम खड़ी पगडंडी से एक-एक कदम नीचे उतरे। चिकनी गीली मिट्टी के कारण पैर फिसलते थे। बड़ी मुश्किल से चश्मे तक पहुँचे। हाथ में उसकी धारा को लिया, आँखें शीतल कीं और उस स्वच्छ जल को जी भरकर पीया।

थोड़ी देर में दो स्त्रियाँ आयीं। बारी-बारी से नहायीं। फिर सिर पर घड़े रख कर उस फिसलन भरी पगडंडी से ऊपर चढ़ने लगीं तो हम देखते ही रह गये। हमें खाली चढ़ना मुश्किल होगा, ये तीन-तीन घड़े उठाये आसानी से और दृढ़ता के साथ जा रही हैं। इतनी आसानी और खूबसूरती के साथ केवल पहाड़ी स्त्रियाँ ही चल सकती हैं। स्पष्ट है कि इन्हें रोज घड़े लेकर चढ़ने-उतरने का लंबा अभ्यास है।

पुजारी जी से खूब बातें होती हैं। नवागाम बाँध की बात चली तो कहने लगे, 'बाँध के बन जाने पर सबसे पहले डूबेगा यह शूलपाणेश्वर मंदिर। इसके शिखर के ऊपर सौ फुट पानी होगा। शूलपाण की पूरी झाड़ी डूब जायेगी और आप जानते ही हैं कि यह झाड़ी अस्सी मील लंबी है।'

जाने-अनजाने मेरे मन में यह बात है कि इस सुंदर एकांत स्थान में जितना हो सके, रह लो। जी भर कर देख लो। पंद्रह वर्ष के बाद तो इसका अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। शायद इसीलिए आज चार दिन से मैं यहाँ जमा हूँ।

परकम्मावासियों के बारे में बात चल पड़ी तो कहने लगे, 'कुछ समय पहले यहाँ से एक बाबा निकला था। वह दंडवत करते हुए परिक्रमा कर रहा है। उसके आने के पहले ही शोर हो जाता कि दंडौती बाबा आ रहे हैं

और हर रोग की दवा देते हैं। भोले-भाले ग्रामीणों की भीड़ लग जाती। वह हर मरीज को एक डंडा जमाता, फिर भभूत या दवा देता। मैं दमे का पुराना मरीज हूँ। रोग के सामने अच्छे से अच्छा आदमी भी बेबस हो जाता है। पहले तो मैं उसके झाँसे में नहीं आया, लेकिन बाद में मेरी मत भी मारी गयी, एक डंडा मैंने भी खाया।'

'कुछ फायदा हुआ?'

'काहे का फायदा! फायदा न होना था, न हुआ। जब तक पता चलता कि उसकी दवा से कोई फायदा नहीं हुआ, तब तक तो वह काफी आगे निकल चुका होता। अच्छा धंधा कर रहा है।'

तीसरे पहर हम नर्मदा के ऊपर की ओर काफी दूर तक घूमने निकल गये ताकि अनिल और मलय को झाड़ी की नर्मदा की कुछ झाँकी मिल जाये। वैसे झाड़ी यहाँ समाप्त हो रही है, इसलिए पहाड़ियाँ वैसी सघन नहीं, फिर भी कुछ अंदाज तो हो ही जाता है। अनिल तो आगे-आगे भाग रहा है, मानो पिछली यात्रा में न आ पाने की अपनी मजबूरी की क्षतिपूर्ति कर रहा हो।

रात को खाना खाकर बैठे थे कि गाँव की भजन-मंडली आ गयी। प्रारंभिक स्तुति के बाद जो पहला भजन शुरू हुआ, तो मैं खिल उठा। मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठा। यह तो वही प्रार्थना थी, जो आज से कोई 55 वर्ष पूर्व, गुजरात के सुदूर कच्छ इलाके के अपने छोटे-से गाँव में, पहली कक्षा में मैंने पढ़ी थी!

मेरा अतीत उमड़ कर मेरे सामने आ गया। मेरी आँखों के सामने मेरा गाँव, घर, पाठशाला, नदी, तालाब सभी कुछ साकार हो उठा। कोई आधी शताब्दी के अंतराल को एक झटके में चीरकर मैं कहाँ से कहाँ पहुँच गया! इस गीत ने तो मुझे मेरा बचपन लौटा दिया!

कभी 6 वर्ष की आयु में इस प्रार्थना के साथ मैंने अपनी शिक्षा का आरंभ किया था। आज 60 वर्ष की आयु में इसी प्रार्थना के साथ मैं नर्मदा-तट की अपनी गुजरात यात्रा का आरंभ कर रहा हूँ!

कुछ क्षणों के लिए मैं अतीत में खो-सा गया। इधर एक के बाद एक भजन होते रहे। गायक भाव-विभोर होकर सुनाते रहे, हम रस-विभोर होकर सुनते रहे।

सुबह पता चला कि अनिल के जूते चोरी चले गये हैं।

हमारा सामान मंदिर के बरामदे में खुला पड़ा रहता था। चार दिन हो गये, एक सूई तक नहीं गयी थी। लेकिन कल रात को भजन-मंडली के साथ और भी लोग आये थे, उन्हीं में से कोई ले गया। कैनवास के महँगे जूते थे। अनिल को तो रात को ही पता चल गया था। रात को ढूँढ़े भी थे। पर न रात को मिले, न सुबह। इतना अच्छा हुआ कि अनिल ने एक जोड़ी स्पंज की चप्पल भी रख ली थी, इसलिए नंगे पाँव चलने की नौबत नहीं आयी। पर श्यामलाल तो नंगे पाँव ही चलेगा।

इस प्रकार, शूलपाणेश्वर मंदिर में चार दिन रहने के बाद, सुबह-सबेरे हम चल पड़े। इस आनंद-लोक में से निर्वासित होना अच्छा तो नहीं लग रहा, पर दीवाली के पहले समुद्र-तट पहुँच जाना जरूरी है। दीवाली के त्योहार पर सामने तट ले जाने वाली नाव बंद रहती है। अगर देर हो जायेगी तो नाव नहीं मिलेगी। इसलिए चल पड़े। श्यामलाल मेरे साथ तीसरी बार चल रहा है, अनिल दूसरी बार और मलय पहली बार। कोई ढाई साल के अंतराल के बाद नर्मदा-परिक्रमा का मोरचा हमने फिर संभाल लिया है।

18. शूलपाणेश्वर से कबीरवड़

पानी, चट्टान, प्रपात, शोर और मोड़— ये पाँच तत्त्व हैं, जिनसे नर्मदा की देह का निर्माण हुआ है। चट्टानों से नर्मदा ने जैसी भागीदारी की है, वैसी कम नदियों ने की होगी। (अगर चट्टानें न हों, तो नदी से गाते ही न बने।) इसमें जितने प्रपात हैं, उतने शायद ही किसी नदी में हों। कैसे-कैसे मोड़ हैं इसमें— सीध में बहना तो यह जानती ही नहीं। ज्यादा देर चुप भी नहीं रहती।

शूलपाण झाड़ी में ये सभी हैं, लेकिन जिसे होना चाहिए था, वही नहीं है— प्रपात नहीं है। न हिस्नफाल में कोई प्रपात है, न शूलपाणेश्वर में। शूलपाणेश्वर के मंदिर के पुजारी जी से पूछा भी था। उन्होंने भी कहा था, यहाँ देवनदी में तो प्रपात है, पर नर्मदा में कोई प्रपात नहीं।

ऊँची पहाड़ी पगडंडी पर से चले जा रहे हैं। दोनों ओर पारिजात के पौधे हैं। कुछ दिन पहले वे फूलों से लदे होंगे लेकिन अब एक भी फूल नहीं है।

नवागाम आते-आते तेज धूप हो गयी। यहाँ नर्मदा पर एक बड़ा बाँध बन रहा है— नर्मदा पर बन रहे बाँधों में सबसे बड़ा। इसमें नर्मदा के अनमोल पानी को सँजोकर रखा जायेगा और नहरों के माध्यम से दूर-दूर के प्यासे खेतों को पहुँचाया जायेगा। गुजरात का तो कायापलट हो जायेगा। मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और सुदूर राजस्थान तक को इसका लाभ मिलेगा।

नर्मदा पर और भी कई बाँध बन रहे हैं। इन बाँधों के कारण जो विशाल झीलें निर्मित होंगी, उनमें सैकड़ों गाँव अदृश्य हो जायेंगे। सैकड़ों मील लंबे किनारे डूब जायेंगे। नर्मदा-तट की भूगोल जितनी पिछले 25,000 वर्षों में नहीं बदली, उतनी अगले 25 वर्षों में बदल जायेगी।

नर्मदा आज बहुत सुंदर नदी है। इन बाँधों के कारण उसका सौंदर्य निस्संदेह कम हो जायेगा। पर उसकी उपयोगिता हजार गुना बढ़ जायेगी। नर्मदा का जो विशाल जलभंडार अभी तक व्यर्थ जाता था, वह अब नहीं होगा। न अचानक बाढ़ का खतरा रहेगा, न सूखे का डर। लोगों को आकाश को ताकते नहीं जीना पड़ेगा। जमीन पानी के लिए तड़पेगी नहीं, तड़केगी नहीं। ढोर भूख से मरेंगे नहीं। बहुत-सी वीरान, उजाड़ और अभी तक बेकार पड़ी जमीन कृषि योग्य हो जायेगी। उद्योग और कृषि दोनों में क्रांति आ जायेगी।

ये बाँध होंगे पानी के रिजर्व बैंक। जब चाहो, जितना चाहो, पानी ले लो।

नवागाम से गोरा तक नर्मदा के किनारे-किनारे सड़क है। इस पहाड़ी सड़क से नदी दूर तक लहराती दिखती रहती है। हम इसी सड़क पर से जा रहे हैं। झुलसा देने वाली धूप है। मलय पहली बार चल रहा है। प्यास से बहुत परेशान है। कहता है, ऐसा लगता है कि सारी की सारी नदी पी जाऊँ।

धूप में सारा दिन चलते रहे, तब शाम को गोरा पहुँचे। यहाँ नर्मदा पर सड़क का बड़ा पुल है। उसी के पास एक कुटी में रहे। बड़ी सुंदर जगह है।

गोरा से पहाड़ परे हट जाते हैं। अलविदा, प्यारे विन्ध्याचल, अलविदा, प्यारे सतपुड़ा! तुम दोनों अमरकंटक से ही नर्मदा के संग-संग चले आ रहे हो— कभी दूर, कभी पास। नर्मदा की तुम वैसे ही रक्षा करते आये हो, जैसे पलकें आँख की। अब तुम निश्चिन्त होकर जा सकते हो।

देखता हूँ, विन्ध्या तो चला गया है पर दक्षिण तट के सतपुड़ा का मन नहीं मानता। दूर जरूर चला गया है पर खेतों के उस पार से काफी दूर तक नर्मदा के संग-संग चलता है, फिर आश्वस्त होकर चला जाता है। अब समुद्र है ही कितनी दूर!

भोर होते ही चल दिये। नर्मदा के कँकरीले पाट में से चले जा रहे हैं। अनिल कंकड़ बीनता चलता है— किसी का आकार सुंदर है, किसी का रंग, तो किसी का टेक्स्चर। मैं सोचता हूँ, अभी तो यात्रा की शुरूआत है, वैसे ही बोझ से लदे हैं, यह अतिरिक्त बोझ वह कब तक ढो सकेगा। पर युवा हृदय को कोई कैसे समझाये!

आगे पड़ा इन्द्रवर्णा। यहाँ एक युवा बंगाली साधु से मिलकर बड़ी खुशी हुई। यहाँ भी नर्मदा पर सड़क का एक बड़ा पुल है।

रात धनेश्वर में रहे। गाँव नर्मदा से थोड़ा दूर है, पर 1970 की बाढ़ का पानी गाँव में घुस आया था। बाढ़ ने पूरे इलाके को रौंद डाला था। उस वाही-तबाही की कहानी लोग आज भी भूले नहीं हैं।

भोर-किरन के साथ आगे बढ़े। शहराव में नदी-तट पर स्त्रियाँ नहा रही थीं, बच्चे तैर रहे थे, गायों का झुंड पानी पी रहा था और पनिहारिनें सिर पर घड़े रखे नर्मदा की धूल से अँटी पगडंडियों से आ-जा रही थीं।

यहाँ से ऊँची-नीची टेकरियों पर से होतें हुए चले। नर्मदा दूर हो गयी। बड़ी प्यास लगी थी। आगे एक झोपड़ी में एक वृद्ध दंपति मिले। मैंने पूछा, 'पानी कहाँ से लाते हैं?'

'नर्मदा से।'

'यहाँ कहाँ है नर्मदा?'

'कोई एक मील पर है।'

कुछ समय पहले वृद्धा गिर पड़ी थी, उससे चलते नहीं बनता। उसके हिस्से का पानी भी वृद्ध ही लाते हैं। लाठी के सहारे मुश्किल से चल पाते हैं। इतनी दूर से कैसे लाते होंगे।

'लड़का नहीं है?'

'लड़का है, बहू है, पर वे अलग रहते हैं।' कहकर वृद्ध चुप हो गये। उनका मौन बहुत कुछ कह गया।

प्यास तो जोर से लगी थी, पर पानी माँगने का मन नहीं हुआ। चार के लायक पानी उनके पास था भी नहीं।

वृद्ध ने रास्ता बता दिया तो थोड़ी देर में जिओरपाटी आ गये। इसी का दूसरा नाम है कुंभेश्वर। यहाँ नर्मदा में पाल वाली नाव चल रही थी। यहाँ के पुजारी जी ने रहने के लिए हमें ऊपर की मंजिल का कमरा दिया। कमरा अत्यंत सुंदर था, पर कई दिनों से बंद था, इसलिए धूल से अटा पड़ा था। हम लोगों ने झाड़ू लगा दी तो राजदरबार जैसा चमकने लगा' पुजारी जी मूलतः महाराष्ट्र के हैं। उनके पूर्वज कई पीढ़ियों से यहाँ बस गये हैं और अब यहीं के हो गये हैं।

रात को छत पर सोये। हर रात मैं तारों को देखते-देखते सोता। सुबह उठता तब सब कुछ उलट-पुलट हो जाता। यहाँ तक कि पूरी की पूरी आकाश गंगा एक ओर खिसक जाती।

सबेरे चल दिये। आगे दो-तीन पनिहारिनें काफी दूर से नर्मदा का पानी ला रही थीं। मैंने पूछा, 'क्या तुम्हारे गाँव में कुआँ नहीं है?'

'कुआँ तो है, पर हमने शुरू से ही नर्मदा का पानी पीया है, इसलिए

कुएँ का पानी फीका लगता है।'

इनका काम कुएँ के पानी से भी तो चल सकता था। ऐसी तेज धूप में हाड़तोड़ मेहनत करने की क्या जरूरत थी। पर नर्मदा तो बस नर्मदा है।

रास्ते में एक किसान मिला। उसने कहा, 'आगे करजण नदी पड़ेगी। उसमें बड़ा कीचड़ है। चलिए, उसे पार करा दूँ। खेत बाद में चला जाऊँगा।'

हम सावधानी के साथ नदी से लगी पगडंडी से चल रहे थे। पगडंडी तीखे उतार-चढ़ाव से भरी थी। बारीक पाउडर-सी धूल से अटी थी। बार-बार चढ़ते-उतरते दम निकल जाता था। पर मलय तो सबसे बाजी मार ले गया। एक जगह ऐसा लुढ़का कि ध्वनि की गति से ऊपर से नीचे आ गया!

अनिल कैमरा लेकर चला था, बीच-बीच में फोटो लेता रहता था। काश, मलयावतरण के इस दृश्य का फोटो ले लेता और इसे आगामी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित कर देता!

एक प्रकार से मलय ने मुझे सतर्क और सावधान कर दिया। मैं बहुत संभलकर उतरा, वरना मेरी दुर्गत कुछ ज्यादा ही होती।

करजण जहाँ नर्मदा से मिलती है, वहाँ सचमुच बहुत कीच-कादा था। उसने हमें वह पार करा दी, तो हम आगे बढ़े।

दिन भर चलते रहते हैं। चलने की धुन में दोपहर का खाना भी नहीं बनाते। लेकिन दोपहर ढलते-ढलते हमारे पाँव जवाब देने लगते, चाल धीमी हो जाती, कंधे झुक जाते और भूख से निढाल हो जाते। सोचते, आज चले सो चले, कल से इतना नहीं चलेंगे। रोज ही ऐसा सोचते और रोज ही पिछले दिन से कुछ अधिक ही चलते।

गुजरात भयंकर सूखे से घिरा है। पिछले तीन वर्षों से पर्याप्त वर्षा न होने के कारण अधिकांश कुएँ और तालाब सूख गये हैं। जल-स्तर काफी नीचे चला गया है। खेतों में फसल सूख रही है। आँखें हरियाली देखने को तरस रही हैं। कपास, तंबाकू, गन्ना, मूँगफली उपजाने वाला यह हरा-भरा अंचल उजाड़ और बंजर धरती बनकर रह गया है। मन गहरी उदासी में डूब जाता है।

शाम को ओरी पहुँचे। ओरी बड़ा गाँव है। पिछले कुछ दिनों से हम मोर की आवाज सुन रहे हैं। यहाँ मोर बिलकुल पास से देखने मिले। घरों के छप्पर पर, पेड़ों पर या सामने आँगन में आ जाते हैं। हमारे आकर्षण का केन्द्र है मोर की लंबी लहरदार गर्दन और उससे भी बढ़कर उसकी लंबी पूँछ, जो अपने में इन्द्रधनुषी रंगों की एक पूरी प्रदर्शनी समेटे हुए है। अनिल और मलय इन्हें देखकर बच्चों की तरह खुश हो रहे हैं और मोरपंख बटोर रहे हैं।

उतने ही विस्मय-विमुग्ध हैं हम यहाँ के गाय-बैलों को देखकर। कितनी बड़ी गायें, कितने बड़े-बड़े बैल। सींग भी उतने ही विशाल। सामने से आते

हैं तो हम डरकर रास्ता छोड़ देते हैं, वे हम से डरकर ठिठक कर खड़े हो जाते हैं।

इस अकाल में भी दूध हमें रोज मिल जाता है। अपने-अपने बरतनों में दूध लेकर, गाँव के लोग एक जगह पाँत बाँधकर खड़े हो जाते हैं। पास के शहर से डेयरी का वाहन आता है और नापकर दूध ले जाता है। दूसरे ही दिन उन्हें पैसे मिल जाते हैं।

मंदिर के पंडित जी मध्यप्रदेश के हैं। नर्मदा-परिक्रमा कर चुके हैं। परिक्रमा अकेले ही की थी। कहते हैं— एक निरंजन दो सुखी, तीन में खटपट चार दुःखी!

नर्मदा तट पर बड़ी धूल है, आटे-सी बारीक रेशमी धूल। पशुओं का झुंड जब धूल भरे रास्तों से निकलता है तब धूल का गुबार उड़ता है।

दूसरे दिन शाम को असा पहुँचे। यहाँ नर्मदा के ऊँचे तट पर एक बड़े अहाते में एक मंदिर है। सदाव्रत, बिजली और पानी की सुविधा तो प्रायः हर जगह रहती है, यहाँ रहने और खाने की भी सुविधा है। यहाँ तैयार भोजन मिलता है, बिलकुल मुफ्त, लेकिन इसके बदले में मंदिर में चल रहे अखंड कीर्तन में शामिल होना अनिवार्य है। भजन के बदले में भोजन!

सुबह चल दिये। तीसरे पहर मणिनागेश्वर पहुँचे। जगह देखते ही भा गयी। मंदिर और धर्मशाला नर्मदा की ऊँचे कगार पर है। रात यहीं रहे। मंदिर में कई शिवलिंग हैं और हर शिवलिंग के पास साँप बने हुए हैं। नाम ही मणिनागेश्वर है। यहाँ के पुजारी जी से पूछा, 'क्या यहाँ साँप निकलते हैं?'

'कई बार। उस पेड़ में ही एक साँप रहता है। लेकिन आज तक उसने किसी को काटा नहीं।'

'आपको डर नहीं लगता?'

'ऐसा तो नहीं कि डर नहीं लगता, पर वह अपने आप नहीं काटता। पैर पड़ जाये, तभी काटता है। एक बार रात को मैं सो रहा था। जाड़े के दिन थे। छप्पर से छिटककर एक साँप मेरे बिस्तर पर गिरा। गरमाहट पाकर वह मेरी बगल में सो गया। जब मेरी नजर पड़ी तब पहले तो मैं बहुत डर गया, पर बाद में मैं भी सो गया। सुबह उठा तो मेरा मेहमान चला गया था।'

थोड़ा रुककर बोले, 'साँप जैसा सुंदर प्राणी कम ही मिलेगा। जब वह केंचुल छोड़ता है, तब नयी त्वचा में उसकी कांति देखते ही बनती है। उस समय वह बड़ा ही आकर्षक दिखाई देता है। साँपों से मुझे प्यार-सा हो गया है। सोचता हूँ, मणिनागेश्वर के बाद अब सर्पेश्वर जाकर रहूँ।'

भोर होते ही चल दिये। खेतों में से होते हुए तीसरे पहर हम एक ऐसी जगह आये, जहाँ सामने नर्मदा के मध्य में एक विशाल टापू दिखाई दे

रहा था— सुप्रसिद्ध कबीरबड़!

हम वहाँ जायें या न जायें? परिक्रमा के नियमों के अनुसार हम नर्मदा की धारा को नहीं लाँघ सकते, टापू पर नहीं जा सकते। लेकिन जिस कबीरबड़ के बारे में बचपन में पढ़ी कविता का आज भी स्मरण है, जिसे देखने की वर्षों से उत्कंठा रही है, क्या उसे बगैर देखे चले जायेंगे? इधर फिर कब आना होगा। और इस ओर की धारा भी तो बहुत क्षीण है!

जाने का पलड़ा भारी हुआ। इसे देखे बिना मन मानेगा नहीं। अवसर चूक गया तो मन में कसक रह जायेगी। हमने जाने का निर्णय लिया। हम नियमानुसार परिक्रमा करने वाले परंपरागत परकम्मावासी भी तो नहीं। सो माँ नर्मदा से क्षमायाचना के साथ, कबीरबड़ जाने के लिए, हम लोग पूरे उत्साह के साथ नर्मदा की छिछली धारा में उतरे।

19. कबीरवड़ से विमलेश्वर

गुजरात में आने के बाद नर्मदा का स्वरूप कितना बदल गया है! अब वह शांत और संतुलित बहती है, क्योंकि अब उसके लिए संघर्ष करने की आवश्यकता नहीं रही। चट्टानें कब की गायब हो गयी हैं, अब केवल रेत या मिट्टी है। नर्मदा का पाट चौड़ा हो गया है और चाल मंद। उसकी धारा तो अविरल बह रही है, लेकिन उसकी कलकल नहीं सुनाई देती। वह इतनी शांत बहती है कि उसकी पदचाप तक सुनाई नहीं देती। नर्मदा बोलने कम और सुनने ज्यादा लगी है। अब वन-विहार नहीं रहा, पहाड़ों से लुकाछिपी का खेल नहीं रहा। यहाँ तक कि जिन पंच-तत्त्वों से नर्मदा की देह का निर्माण हुआ है— पानी, चट्टान, प्रपात, शोर और मोड़— इनमें से एक-एक करके अधिकतर छूटते जा रहे हैं। सबसे पहले गया प्रपात। इसके बाद चट्टान। चट्टान के साथ ही शोर भी चला गया। मोड़ भी पहले जैसे नहीं रहे।

यही है जीवन। ज्यों-ज्यों जीवन का सूर्यास्त निकट आता जाता है, अधिकांश चीजें छूटती जाती हैं और यात्री अंतिम यात्रा के लिए हल्का-फुल्का होता जाता है।

नर्मदा की छिछली धारा पार करके हम कबीरवड़ पहुँचे। कहते हैं, संत कबीर यहाँ आये थे। उनके प्रताप से बरगद का एक पेड़ इतना विशाल हुआ कि पूरे टापू पर छा गया। इस विशाल वटवृक्ष की छतनार छाया में हजारों लोग आश्रय ले सकते थे। लेकिन अब तो उसका थोड़ा-सा अंश ही बचा है। यह भी काफी बड़ा है और किसी भव्य स्मारक-सा खड़ा है। और भी कई वृक्ष हैं। हरे-भरे खेत हैं, पशु-पक्षी हैं, मंदिर हैं। यहाँ आकर बड़ा अच्छा लगा। बड़ा एकांत है यहाँ। टापू में रात्रि-निवास का यह प्रथम अवसर है।

अभी कृष्ण-पक्ष चल रहा है। मैंने देखा कि कृष्ण-पक्ष में चाँदनी करीब-करीब उतनी ही होती है, जितनी शुक्ल-पक्ष में। मगर एक उजियारा पाख कहलाता है, दूसरा अँधियारा पाख। एक में पहले चाँदनी, फिर अँधेरा। दूसरे में पहले अँधेरा, फिर चाँदनी। चाँदनी की जगह भर अदल-बदल हो जाती है, मगर कुल मिलाकर चाँदनी प्रायः उतनी ही। अँधियारा पाख व्यर्थ बदनाम है!

सबेरे नर्मदा की धारा पार करके वापस तट पर आ गये। फिर नदी के संग-संग आगे बढ़े। जगह-जगह किसान बिजली की सहायता से नदी से पानी ले रहे थे और खेतों की सिंचाई कर रहे थे। कपास और गन्ने के अलावा केले के बड़े-बड़े खेत हैं। कदलीवन में से हमारी पगडंडी जाती है तो बड़ा सुखद लगता है।

आगे एक गाँव पड़ा, मढ़ी। यहाँ एक युवा संन्यासी ने हमारा हार्दिक स्वागत किया। उसने रुकने के लिए बहुत आग्रह किया, पर हमें जल्दी थी। 'अगर आप रुक नहीं सकते, तो कम से कम भोजन करके जाइए।' उसके नेह को हम टाल नहीं सके।

पता नहीं कैसे, साँपों की बात चल पड़ी, तो उसने अपना एक संस्मरण सुनाया:

बचपन में एक बार मुझे साँप ने काटा। पहले तो मैं बेहद डर गया, पर बाद में जनेऊ उतारा और डंक से थोड़ा ऊपर कस कर बाँध दिया। फिर चीरा लगाया तो खून बहने लगा। माँ बहुत घबरा गयी। झाड़-फूँक वाले ओझा को बुलवाया। उसने आकर कहा कि पहले जनेऊ खोलो, तब मेरा मंत्र काम करे। मैंने कहा कि मर जाऊँगा, पर इसे नहीं खोलूँगा। तब किसी ने कहा कि इसे खूब घी पिलाओ तो जहर निकल जायेगा। मुझे एक सेर घी पिलाया गया। मैंने कहा, अब मुझे सोने दो। लोगों ने बहुतेरा मना किया पर मैं नहीं माना। सुबह उठा तो एकदम ठीक! माँ से कहा, 'माँ, मुझे रोज साँप काटे तो कितना अच्छा हो!' माँ ने घबराकर कहा, 'क्यों?' मैंने कहा, 'पीने को रोज एक सेर घी जो मिलेगा!'

भोजन के समय हमारे साथ कई वृद्ध भी थे। एक प्रकार से यह संन्यासी यहाँ वृद्धाश्रम चला रहे हैं। भोजन परोस दिया गया तो सभी ने

मिलकर प्रार्थना की। प्रार्थना समाप्त होने पर संन्यासी ने सविनय कहा, 'महात्मन् भोग लगायें!'

यहाँ से नर्मदा किनारे आगे बढ़े। आगे नर्मदा की एक सहायक नदी के तट पर है उचेड़ीया। कबीरबड़ से हमारे साथ चल रहे सज्जन इसी गाँव में रह गये। मैंने कहा, 'आप तो हमें मझधार में छोड़ कर जा रहे हैं!' उन्होंने कहा, 'मैं जब भी जाऊँगा, वह मझधार ही होगी!'

यहाँ से सड़क मिल गयी। सड़क के साथ-साथ रेल की पटरी भी है। हमारे पास से धुआँ छोड़ती हुई रेलगाड़ी निकल गयी।

अब नर्मदा छूट गयी है। अब तो समुद्र तक सड़क से ही जाना होगा। सड़क उबाऊ है लेकिन अब यही रास्ता है। नर्मदा का तट निचाट सूना और निर्जन है। आगे नर्मदा में मिलने वाली नदियाँ, जिन्हें यहाँ लोग खाड़ी कहते हैं, कीच-कादे से इतनी भरी होंगी कि उन्हें पार करना बहुत मुश्किल होगा। फिर नर्मदा का पानी क्रमशः खारा होता जाता है और किनारे वीरान, बंजर और उजाड़, इसलिए हमने भी सड़क से चलना ही ठीक समझा।

रास्ते में एक सारंगी-वादक अपने गीत सुना रहा था तो हम लोग भी सुनने खड़े हो गये। वह गा रहा था:

एक जीवन रे लाखो उपाधि, केम जीवे जीवनार रे!

जीव एक है और परेशानियाँ लाख-लाख, जीने वाला जीये तो कैसे जीये!

उसका कंठ सुरीला था। कभी-कभी वह गीत की कड़ी को बीच में ही छोड़ देता और बाद में उसे फिर पकड़ लेता। इस गीत में से एक गहन-गंभीर वेदना झाँक रही थी। उसके गीत से वातावरण में उदासी-सी छा गयी।

तीसरे पहर उछाली पहुँचे। यहाँ नर्मदानंदजी का आश्रम है। बहुत पहले उन्होंने नर्मदा-परिक्रमा की थी और उसका विस्तृत वृत्तांत गुजराती में प्रकाशित किया था। इसे मैंने चाव से पढ़ा था। उनसे मिलने की बड़ी इच्छा थी। पर वे कहीं बाहर गये हुए थे, इसलिए उनके दर्शन न कर सका। रात हम उनके आश्रम में ही रहे। गाँव के छात्रों ने हम लोगों की सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखा।

यहाँ भी खूब मोर हैं। हम उन्हें पास से देखते रहे। दूसरे दिन दोपहर के पहले पड़ा अंकलेश्वर। यह नर्मदा से प्रायः दस किलोमीटर दूर है। इसके आसपास प्राकृतिक गैस व तेल के कुएँ हैं, इसलिए यह एक बड़ा औद्योगिक नगर हो गया है। यहाँ के तेल के कुओं की लपटें रात के आकाश को रक्त-रंजित करती जान पड़ती हैं।

रात सजोद में रहे। सुबह चल दिये। दोपहर को हाँसोट पहुँचे। अनिल

अब और आगे नहीं चल पा रहा था। वह रास्ते में बार-बार रुकता, लंगड़ाता हाँसोट तक आ गया था, पर अब आगे चलना उसके बस की बात नहीं थी। चप्पल उसे काट रही थी इसलिए अंकलेश्वर से उसने कैनवास के जूते खरीदे थे। अब वे भी बुरी तरह से काट रहे थे। लाचार होकर अनिल और मलय ने यहाँ से बस पकड़ी। मैं और श्यामलाल पैदल चले।

डामर की सड़क से भभूका निकल रहा है और श्यामलाल नंगे पाँव है। हम दोनों खूब तेज चल रहे हैं, जैसे कहीं आग बुझाने जा रहे हों। सीधी-सपाट सड़क अंतहीन-सी लग रही है। दोनों ओर विलायती बबूल की झाड़ियाँ हैं। इसके काँटे बड़े खतरनाक होते हैं।

थकान से चूर पर खुशी से भरपूर हम तीसरे पहर कतपोर पहुँचे। कतपोर नर्मदा-तट का आखिरी गाँव नहीं है। आखिरी गाँव विमलेश्वर है। लेकिन समुद्र पार करने के लिए नाव यहाँ से छूटती है, इसलिए परकम्मावासियों का जमघट यहाँ रहता है। हम जब वहाँ पहुँचे, तब वहाँ केवल सात परकम्मावासी थे। हमारे जाने से ग्यारह हुए। लेकिन जब तक पचीस-तीस नहीं होते, तब तक नाववाला नाव नहीं छोड़ता।

गुजरात में नर्मदा-तट के अधिकांश मंदिरों के पुजारी मध्यप्रदेश के हैं। परकम्मावासी भी अधिकतर मध्यप्रदेश के ही होते हैं। यहाँ जो सात परकम्मावासी रुके हैं, उनमें दो संन्यासी उत्तर प्रदेश या शायद हरियाणा के हैं, बाकी पाँचों मध्यप्रदेश के हैं। इनमें पति-पत्नी हैं, साला-बहनोई है और एक अकेला है। हम साथ ही समुद्र पार करेंगे।

दूसरे दिन सुबह विमलेश्वर गये। नर्मदा समुद्र से इतना धीमे-धीमे मिलती है कि यह निर्धारण करना मुश्किल है कि कहाँ नर्मदा का अंत है और कहाँ समुद्र का आरंभ। अब नर्मदा और समुद्र में फर्क करना बड़ा मुश्किल हो गया है। अंतिम पचास किलोमीटर नर्मदा का पानी खारा है। फिर भी विमलेश्वर नर्मदा-तट का अंतिम ग्राम है, इसीलिए यहाँ नर्मदा का सागर से संगम माना गया है। अपनी 1312 किलोमीटर लंबी यात्रा पूरी करके नर्मदा यहाँ सागर में समा जाती है। विश्वास नहीं होता कि यह वही छोटा-सा निर्झर है जो अमरकंटक से चला था। अमरकंटक से चलते समय उसमें प्रस्थान का जैसा उत्साह था, यहाँ मंजिल पर पहुँचने का वैसा ही संतोष है।

उन परकम्मावासियों की खुशी का क्या कहना, जो कई-कई महीनों की कठिन पदयात्रा के बाद जीवन में शायद पहली बार समुद्र के दर्शन करते हैं।

असीम और अपार है मेरी खुशी। आखिर मैं समुद्र तक आ पहुँचा था। नर्मदा के उद्गम से संगम तक की मेरी यात्रा पूरी हुई थी। जीवन का

बहुत बड़ा स्वप्न साकार हुआ। खुशी से मैं छलछला उठा। ओह, जीवन कितना सुखद है!

मेरे हाथ अपने आप जुड़ गये। मैंने नर्मदा का आह्वान किया। आह्वान नहीं किया, बल्कि रो पड़ा। प्रसन्नता के सहज स्वच्छ आँसू मेरे गालों पर ढुलक रहे थे। काफी देर तक चुपचाप बैठा मैं मन ही मन नर्मदा का यशोगान करता रहा।

माँ नर्मदे! तुम्हारे शाश्वत सौंदर्य से तुम नित नूतन हो, चिर नवीन हो! तुम जानी-पहचानी हो, फिर भी अद्‌भुत हो! मृदुल सरिता! तुम्हें मैं बचपन से जानता हूँ, फिर भी तुम्हारे सौंदर्य की झलक भर देख सका हूँ...

यहाँ मानो तुम समुद्र से कहती जान पड़ती हो, 'मैं आ गयी हूँ। मैंने अपने जीवन का कार्य पूरा कर लिया है। अब मैं अकलुष चेतना के साथ तुम्हारे पास आ सकती हूँ।' और समुद्र भी तुम्हें इस प्रकार स्वीकार करता है मानो तुम उसके कलेजे का टुकड़ा हो।

कितना कुछ देखने के बाद नर्मदा यहाँ आयी है। क्या यहाँ उसे थोड़ा रुककर, पीछे मुड़कर, अपने यात्रा-पथ का पुनरावलोकन करने का मन नहीं करता होगा? उसे पहाड़ों की, वनों की, घाटियों की, तीर्थ-स्थानों की, किनारों की, घाटों की, जनपदों की, खेतों की, कूलन की, कछारों की याद तो आती होगी! पीछे मुड़कर देखने का मन तो करता होगा!

यहाँ नर्मदा की यात्रा समाप्त होती है। अब तट का बंधन नहीं रहा। अब वह समुद्र में मिल जाती है। अब तो तादात्म्य नहीं पर तादात्म्य ही धर्म है!

यहाँ, रेवा-सागर संगम में मैंने स्नान किया। यहाँ नदी का पाट छिछला है, पानी खारा है, फिर भी स्नान किया। स्नान करते समय सभी स्वजनों को याद किया। आज, जीवन के परम सुख के क्षणों में, मैं उन्हें भी इस आनंद में सम्मिलित करना चाहता हूँ।

नर्मदा यहाँ बहुत छिछली है। दूर-दूर तक चिपचिपा कीचड़ है। ऐसे दलदल में नाव नहीं चल सकती। इसलिए कतपोर से चलती है, पहले शायद विमलेश्वर से चलती थी। यहाँ से वापस कतपोर आये। कतपोर से नर्मदा कोई दो किलोमीटर दूर है।

जब पचीस-तीस परकम्मावासी इकट्ठे होते हैं, नाववाला नाव तभी छोड़ता है। यहाँ आये आज दूसरा दिन है, पर एक भी परकम्मावासी नहीं आया। अब तो दीवाली के बाद ही आयेंगे। ऐसे में हमें यहाँ एक सप्ताह तक रुकना पड़ सकता है। इतने दिनों तक यहाँ पड़े रहने की स्थिति में हम नहीं हैं, कुछ करना चाहिए।

मछुआरों की बस्ती गाँव के बाहर है। वहीं रहता है गुमान। परकम्मावासियों को वही उस पार ले जाता है। उससे मिलकर अपनी परेशानी बतायी। उसने कहा, 'यहाँ मुहाने पर नर्मदा का पाट कोई बीस किलोमीटर चौड़ा है। जाने में दस घंटे लगते हैं। हवा अनुकूल न हुई तो ज्यादा भी लग सकते हैं। इतना ही समय वापस आने में लगता है। हमारी मजदूरी भी तो निकलनी चाहिए। परकम्मावासियों से हमें दान-दक्षिणा के रूप में कुछ न कुछ मिल ही जाता है।

मैंने कहा, 'तुम्हारा नुकसान होने नहीं दूँगा। मेहनताना दूँगा।'

'कितना देंगे?'

'पचास रुपये।'

'मेरा साथी मछली पकड़ने समुद्र गया है, इसलिए मैं तो नहीं चल सकूँगा पर ठहरिए, दूसरों से पूछता हूँ।'

उसने दो-तीन नाविकों से पूछा, पर कोई तैयार न हुआ। मैं मोलभाव के लिए तैयार था, पर कोई बात करने तक तैयार नहीं था। हम वहाँ कोई दो घंटे तक बैठे रहे, आखिर निराश होकर चले आये। यह कैसी मुसीबत आ पड़ी। इतने दिनों तक हम सारा का सारा दिन चलते रहे, क्या यह व्यर्थ जायेगा?

मैं भाग्यवादी नहीं हूँ, पर आशावादी तो हूँ। भगवान कोई न कोई रास्ता निकालेगा। यही सोचता हुआ सो गया।

सुबह उठा, तो सामने गुमान! 'कल सुबह चार बजे हम चल देंगे। आप सभी चार बजे तक नदी किनारे आ जाइए।'

हम लोगों की खुशी का क्या कहना!

आज हम लोगों ने दिन भर पत्र लिखे— पोस्टकार्ड जिन पर रेखांकन भी कर देते। सबसे ज्यादा कार्ड अनिल ने लिखे। (बोलता कम है पर लिखता खूब है! रोज देर रात तक डायरी लिखता है। इसके लिए घर से एक छोटी लालटेन लेकर चला है!) फिर हमने सभी पत्र पोस्ट कर दिये।

श्रद्धालु जब नर्मदा में दीप प्रवाहित करते हैं, तब उनमें से कुछ दूर तक जाते हैं तो कुछ थोड़ी दूर जाकर ही डूब जाते हैं या बुझ जाते हैं। डाक में पत्र छोड़ते समय मेरे मन में भी थोड़ा-बहुत यही भाव रहता है। पता नहीं इनमें से कितने मंजिल तक पहुँचेंगे और कितने बीच में ही दम तोड़ देंगे! इसलिए पत्र छोड़ते समय मैं यह प्रार्थना अवश्य करता हूँ— जाओ वत्स! तुम्हारी यात्रा शुभ हो! तुम अपने गंतव्य तक पहुँचो। रास्ते में अनावश्यक विलंब न हो! डाक के देवता तुम्हारी रक्षा करें!

थोड़ी देर के बाद टिकटें लेने के लिए हम दुबारा पोस्ट-ऑफिस गये। हमारे पोस्ट किये हुए पत्र पोस्ट-मास्टर की टेबल पर रखे हुए थे। भले पोस्ट-मास्टर ने उनमें से एक पोस्टकार्ड हमें देते हुए कहा, 'यह तो बिलकुल

कोरा है। केवल पता लिखा है। आप शायद लिखना भूल गये हैं। अब भी लिख लीजिए।'

पोस्टकार्ड सचमुच कोरा था। अनिल ने लिखा था। मैंने उसे लिखने के लिए कहा तो उसने साफ इनकार कर दिया। कहने लगा, 'वह बिलकुल ठीक है। मेरे इस मित्र के साथ मेरा ऐसा ही मौन संवाद चलता है।' इस तरह वह कार्ड अनिल का मौन लेकर गया!

रात के तीन बजे गुमान का लड़का हम लोगों को लेने आया। दोनों संन्यासी और दो-तीन परकम्मावासी नहर के पानी में नहाने गये थे इसलिए थोड़ा रुकना पड़ा। नर्मदा-तट पहुँचकर नाव में सामान रखा, फिर सभी ने मिलकर नाव को धकेला। शांति भंग होने से पानी छपछपा उठा। हम सभी हिलती-डुलती नाव पर सवार हो गये।

'चलो!'

अगले ही पल नाव घुप्प अँधेरे में भाटे के लौटते पानी के साथ समुद्र की ओर तेजी से बढ़ने लगी।

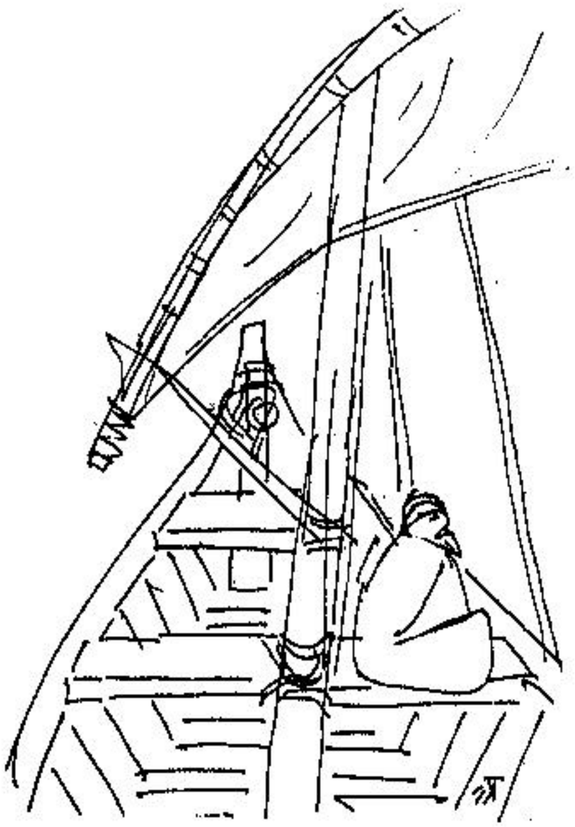

20. विमलेश्वर से मीठीतलाई : समुद्रयात्रा

रात के अँधेरे में डूबी नर्मदा उनींदी-सी लग रही है। हमारी नाव भाटे के लौटते पानी के साथ समुद्र की ओर चली जा रही है। दूर-पास जहाँ भी नजर जाती है, पानी ही पानी है। और है निस्तब्धता— एक ऐसी नीरवता, जो जमीन पर संभव नहीं।

भोर वेला में समुद्र की गोद में होना पावन लग रहा है। स्वच्छ शीतल पवन रक्त में उत्साह भर रहा है। समुद्र का सौंदर्य और उसकी शांति मेरे हृदय में आ विराजती है। हृदय अपूर्व आनंद से भर जाता है। तारे धीरे-धीरे विदा हो जाते हैं और पूरब के आकाश में उजाला भरने लगता है। देखते-देखते समुद्र के गर्भ से सूरज का ललछौंहा गोला निकलता है और अपने मोरपंख फैला देता है।

रात के अँधेरे में जब नाव में बैठे थे, तब हम अपने आपको कितना असुरक्षित अनुभव कर रहे थे! श्यामलाल जैसा बलिष्ठ नौजवान तक डर रहा था। एक तो अँधेरा, तिस पर समुद्र! दोनों के सम्मिलित भय ने हमारे कुछेक सहयात्रियों को जकड़ लिया था। लेकिन अब अँधेरा दूर हो गया है और उसी के साथ-साथ चला गया है मनका भय।

समुद्र में दूर झाड़ी की महीन-सी रेखा दिखाई दे रही है। वहाँ अलियाबेट नामक एक बड़ा टापू है।

नाव में बैठी परकम्मावासी महिला ने कहा, 'आप सब चुपचाप क्यों बैठे हैं? कुछ गाते क्यों नहीं?'

उसके पति ने कहा, 'तुम ही शुरू करो।'

जब हम लोगों ने भी यही कहा, तो उसने खाँसकर गला साफ किया, फिर धीरे-धीरे गाने लगी। दूसरे लोग भी उसका साथ देने लगे। कुछ बेसुरा होते हुए भी इस समय भजन बड़ा अच्छा लग रहा था।

थोड़ी देर में एक छोटा टापू आया। सुबह की धूप में वह धुला-धुला नजर आ रहा था। समुद्र सतह से नाम मात्र को ऊँचा है, ज्वार आने पर डूब जाता है। हम यहाँ थोड़ी देर के लिए उतरे, फिर आगे बढ़े।

बीच-बीच में गुमान नाव के भीतर रिस आने वाला पानी उलीचता रहता है। कहने लगा, आज नाव में हम कम लोग हैं, पर जब भीड़ होती है, तब परकम्मावासी आपस में खूब झगड़ते हैं— जगह के लिए, सामान के लिए या फिर पुरानी बातों को लेकर। जमीन के झगड़े वे यहाँ समुद्र पर ले आते हैं।'

मैंने कहा, 'तुम समुद्र की कहते हो, आदमी जल्द ही अपने झगड़े अंतरिक्ष में ले जायेगा। झगड़ों के लिए धरती अब उसे छोटी पड़ रही है!'

एक जगह गुमान ने कहा, 'यह वह जगह है, जहाँ नर्मदा की मूल धारा समुद्र से मिलती है। असली रेवा-सागर संगम यह है। इसके बाद नर्मदा नहीं है।'

वैसे तो कतपोर से ही नर्मदा समुद्र के दरवाजे की कुंडी खटखटाती है और विमलेश्वर नर्मदा-तट का अंतिम गाँव है इसलिए रेवा-सागर संगम विमलेश्वर में माना गया है, किन्तु इसके बाद भी नर्मदा की मुख्य धारा क्रमशः क्षीण होती यहाँ तक आती है और यहाँ पूर्ण रूप से विलीन हो जाती है। हम लोगों को कुछ पता नहीं चलता, सभी ओर एक-सा पानी लगता है, लेकिन यहाँ के नाविक इस मिलन-बिन्दु को खूब जानते हैं, इसलिए गुमान ने हमें वह जगह बतायी।

सभी ने संगम के जल को मस्तक पर चढ़ाया। साथ लायी पूजा की सामग्री से रेवा और सागर का पूजन किया। नारियल जल में छुलाकर गुमान को दे दिये। अन्य सामग्री जल को अर्पित की और प्रसाद बाँटा। वातावरण में ऊदबत्ती की सुगंध भर गयी। अभय मुनि ने मंत्रोच्चारण किया। चेतन मुनि ने शंख बजाया। मैंने ये पंक्तियाँ लिखीं—

पृथ्वी पर तीन भाग जल
और एक भाग थल है।

हमारे शरीर में तीन भाग जल
और एक भाग हड्डी है।
बिलकुल वही अनुपात!
हमारा हृदय धड़कता है
समुद्र गरजता है।
समुद्र का गर्जन
कहीं धरती के हृदय की धड़कन तो नहीं!
माना कि समुद्र का पानी खारा है
पर हमें तो वह मीठा पानी ही देता है!
बादल से खारा पानी तो नहीं बरसता!
शबरी की तरह बरस-बरस कर
हमें तो वह मीठे बेर ही देता है!
समुद्र शबरी, धरती राम
युग-युग की कहानी अविराम!

कविता अचानक, एक बार में ही नहीं आयी। पिछले तीन-चार दिनों से वह मेरे मन के मकान में आती-जाती रही। मकान पसंद आ गया तो कल पेशगी दे दी और आज रहने को आ गयी!

शांत समुद्र से हवा के हलके-हलके झोंके आ रहे हैं। आधे से अधिक परकम्मावासी सो गये हैं। यहाँ तक कि गुमान भी सो गया है। थोड़ी देर के बाद जिसके भरोसे नाव छोड़कर वह सो गया था, उसका वह साथी भी सो गया!

गुमान जब उठा तो देखा कि नाव समुद्र में ज्यादा ही दूर चली आयी है! उसने तुरंत पाल समेट लिया और लंगर डाल दिया। नाव एक जगह स्थिर हो गयी। पानी पर हलके-हलके, हंस की तरह डोलती रही।

सभी रूप से परेशान हैं। नाव एक जगह खड़ी हो गयी है, तो धूप और भी तेज लग रही है। मलय और अनिल दुबके सो रहे हैं। मैंने मन ही मन प्रार्थना की, 'हे दक्षिण दिशा के पवन! हे मलयानिल! आओ और हमारा बेड़ा पार लगाओ!'

हमें ज्यादा देर प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। एकाध घंटे में पवन शुरू हो गया, तो गुमान ने पाल खोल दिया, लंगर उठा लिया। हमारी नाव सरसराती हुई उत्तर की ओर बढ़ने लगी।

नींद के मारे मेरी पलकें भारी हो गयीं, तो मैं भी सो गया। जब नींद खुली तो दूर एक लाइट-हाउस दिखाई देने लगा था। उत्तर-तट की हलकी-सी

रेखा उभरने लगी, तो सभी के मन खिल उठे। अब ज्वार शुरू हो गया था। हमारी नाव तेजी से तट के नजदीक पहुँच रही थी। इक्के-दुक्के मछुआरों की डोंगिया भी दिखाई दे रही थीं।

उत्तर-तट का प्रथम ग्राम है हरिकाधाम। इसके बाद मीठीतलाई। दोनों पास-पास ही हैं। मीठीतलाई में रहने की सुविधा है, खास तो पानी की, इसलिए गुमान ने हमें मीठीतलाई उतारा। उस समय दोपहर के दो बज रहे थे। धधकती धूप में नदी की रेत गरम कड़ाह की तरह तप गयी थी। उसे पार करने में परकम्मावासियों के पैर झुलस गये। दोनों संन्यासियों ने तो दौड़ लगा दी। कुछेक ने पैरों में कपड़े की पट्टियाँ बाँध लीं।

मीठीतलाई पहली नजर में ही भा गया। यहाँ है एक मंदिर, मंदिर से लगी धर्मशाला और बरगद का पेड़, जिसके चारों ओर चबूतरा। हम तीनों ने इस चबूतरे पर अपना अड्डा जमाया। सामने कुआँ है। पास के गाँव जोगेश्वर का कुआँ सूख गया है, इसलिए वहाँ की स्त्रियों का यहाँ दिन भर ताँता लगा रहता है। स्त्रियाँ घाघरे पर साड़ी पहनती हैं और काम करते समय अपनी साड़ियों का कछोटा मारती हैं।

हर गाँव में लोग कुओं का ही पानी पीते हैं क्योंकि नर्मदा का पानी खारा है। कुओं के पानी में भी कुछ खारापन रहता है लेकिन यहाँ के कुएँ का पानी बहुत अच्छा है।

समुद्र बिलकुल पास है। शाम को हम लोग समुद्र-तट से चल कर हरिकाधाम तक घूमने गये। यहाँ समुद्र-तट पर कभी बड़ी दीवार बनी थी, पर क्रुद्ध समुद्र ने उसे क्षत-विक्षत कर डाला है। आगे एक जगह समुद्र में कुछ गड़ा-सा दिखाई दिया। पता चला कि बहुत पहले, चालक की असावधानी से, एक जहाज यहाँ रेत में धँस गया है। जब भाटा होता है, तब यहाँ रेत निकल आती है। लोग जाकर जहाज के मलबे से लोहा काट-काट कर ले आते हैं।

रात को चबूतरे पर सोये। सबेरे चार बजे अपने साथी के साथ गुमान जब वापस जाने लगा तो जाते-जाते मंदिर के स्वामी जी के लिए एक संदेश मुझे देता गया।

सुबह पुनः हरिकाधाम गये। साथ में दोनों संन्यासी भी थे। रात में नाविकों को राह दिखाने के लिए यहाँ एक लाइट-हाउस है। उस पर चढ़कर समुद्र को देखा। दरअसल यह समुद्र नहीं, खाड़ी है, खंभात की खाड़ी। सामने सौराष्ट्र है। वहाँ के घोघा बंदरगाह का लाइट-हाउस यहाँ से दिखता रहता है।

यहाँ से आगे बढ़े। तीन-चार दिन के साथ के कारण दोनों संन्यासियों से घनिष्ठता हो गयी है। अभय मुनि बड़े हैं, चेतन मुनि छोटे। दोनों खूब

सबेरे स्नान करने के बाद पूरे शरीर पर भभूत रमाते हैं। कहते हैं, यह अलख-वस्त्र है।

अभय मुनि जिंदादिल और बातूनी हैं तथा उनमें बच्चों का सा चुलबुलापन है। उनकी बातें बड़ी मजेदार होती हैं। उन्हें छेड़ने के इरादे से मैंने पूछा, 'आदमी पाप भी करता है और पुण्य भी करता है। पाप की सजा मिलती है और पुण्य का पुरस्कार। मान लीजिए, एक आदमी ने सोलह आने पाप किया और बारह आने पुण्य। अब उसके पाप में से पुण्य को घटा कर बाकी बचे चार आने पाप की सजा होगी, या दोनों खाते अलग-अलग चलेंगे? सोलह आने पाप की सजा अलग और बारह आने पुण्य का पुरस्कार अलग?'

अभय मुनि ने हँस कर कहा, 'मान लीजिए मैंने कहा कि दोनों खाते अलग-अलग चलेंगे, या कहूँ कि चलिए, आपको चुनाव की छूट रहेगी, आप चाहेंगे तो खाते अलग-अलग चलेंगे, चाहेंगे तो एक कर दिये जायेंगे, तो मेरा यह कहना सही है या गलत, इसकी आप जाँच कैसे करेंगे? वहाँ का विधि-विधान क्या है, इसे बताने वहाँ से कोई आयेगा नहीं और यहाँ से कोई जायेगा नहीं। अब सच्चाई का पता कैसे चले?'

मैंने कहा, 'फिर भी आप क्या सोचते हैं?'

'ऐसे प्रश्न हमें किसी नतीजे पर नहीं पहुँचाते। अपने-अपने विश्वास की बात है। देखिए, आपने कहा कि अच्छे कर्म का अच्छा फल मिलता है, और बुरे कर्म का बुरा। यह भी तो विश्वास ही है, इसे आप सिद्ध नहीं कर सकते। कई बार तो हम इसका उलटा ही देखते हैं। पापी मौज करते हैं, धर्मात्मा कष्ट उठाते हैं। अक्सर नेक आदमियों की ही चमड़ी उधेड़ी जाती है।'

शून्य दृष्टि से समुद्र की ओर देखते हुए वे बोले, 'कुछ प्रश्न मुझे भी परेशान करते हैं। मान लीजिए, एक भला आदमी है। उसे जीवन में बहुत दुःख भोगना पड़ा। इस जनम में तो उसने कोई बुरा काम नहीं किया। तो हम कहते हैं कि यह उसके पूर्व-जन्म के बुरे कर्मों का फल है। किस बुरे कर्म का फल है, यह उसे मालूम ही नहीं हुआ! उसे सजा दी जाती है, पर उसे बताया नहीं जाता कि यह किस पाप की सजा है। यह कैसा न्याय है, मेरे भाई!'

अभय मुनि अपनी धुन में बोले जा रहे हैं, 'सोचता हूँ, भगवान उधारी रखता ही क्यों है! इस जनम की सजा इसी जनम में क्यों नहीं? जुर्म एक जनम में, सजा किसी दूसरे जनम में। मानो भगवान हमें ललचा रहा हो— अभी पाप कर लो, सजा किसी और जनम में भोग लेना! क्या कहते हो, चेतन मुनि?'

चुप रहने वाले चेतन मुनि बोले, 'यह तो कुछ वैसा ही हुआ, जैसे कोई छोटा बच्चा काँच का गिलास फोड़ दे, उस समय तो उसका पिता कुछ न बोले, पर जब वह जवान हो जाये, तब हठात उसे चाँटा जड़ दे!'

अभय मुनि ठठाकर हँसे। बोले, 'और यह भी न बताये कि किस जुर्म का चौंटा है!'

मस्तमौला हैं अभय मुनि। जीवंत और हँसमुख। उनके होंठों पर मुसकान बराबर झूलती रहती है। अपनी बात को जारी रखते हुए उन्होंने कहा, 'अच्छा काम हम इसलिए नहीं करेंगे क्योंकि हमें उसका अच्छा फल मिलेगा, बल्कि इसलिए करेंगे क्योंकि हम मनुष्य हैं और हमें अच्छा काम करना चाहिए— अच्छा फल मिले तो, न मिले तो। भलापन बाँट-बटखरे की चीज नहीं।'

हम मंत्र-मुग्ध होकर उनकी बातें सुन रहे हैं। 'दुःख तो जीवन में आयेगा। भले से भला आदमी भी इससे बच नहीं सकता। ईश्वर सोलह आने सुखी किसी को नहीं बनाता। ऐसा क्यों होता है, हमें नहीं मालूम। फिर भी, दुःख झेल कर भी, हमें अच्छा बनना है। तभी हम मनुष्य हैं। इनाम के लालच में अच्छा बनना मनुष्य को शोभा नहीं देता। यह मनुष्य की गरिमा से मेल नहीं खाता। स्वर्ग का चारे की तरह उपयोग हम कब तक करते रहेंगे?'

आज अभय मुनि रंग में हैं। अपनी भावनाओं के प्रवाह में वे हमें शायद भूल गये हैं। आज वे कोई रुक्ष संन्यासी नहीं, बल्कि एक संवेदनशील कवि लग रहे हैं। 'कभी-कभी लगता है, यह स्वर्ग और नरक एक तरह की परी-कथा है। बड़ों की परी-कथा! लोगों को तो परी-कथायें अच्छी लगती हैं न!'

हम चुपचाप सुन रहे हैं। वे शब्द में शब्द पिरोये जा रहे हैं, 'मैंने शास्त्र नहीं पढ़े। धर्म-अधर्म का मुझे ज्ञान नहीं। लेकिन कुछ सुनता हूँ, कुछ गुनता हूँ, उसी पर से कहता हूँ। यह नर्मदा, ऊँचे पर्वत-शिखर से उतर कर, धरती को तृप्त करती, अपना सर्वस्व लुटाती, निरंतर आगे बढ़ती, यहाँ आकर समुद्र से मिलती है। जिस दिन यह नर्मदा हमारे भीतर प्रवाहित होगी, हमारा सारा दृष्टिकोण ही बदल जायेगा। हम लेना नहीं देना चाहेंगे, जीना नहीं जिलाना चाहेंगे। है यह कठिन। दूसरों के लिए जीना आसान नहीं। इसमें बहुत कष्ट झेलने पड़ते हैं। लेकिन स्वेच्छा से हम जो कष्ट उठाते हैं, वे भी मधुर लगते हैं।'

वे थोड़ी देर शांत रहे, मानो अंतर्लीन हो गये हों। अब की उनका स्वर गंभीर हो चला था। 'शूलपाण झाड़ी की बात है। मैं अकेला ही चल रहा था। भीलों ने मुझे पूरी तरह लूट लिया था। मेरे पास कुछ भी नहीं बचा था। भूख से बुरा हाल था। काफी देर बाद एक भील की झोपड़ी पड़ी। भील से कहा कि बड़ी भूख लगी है, कुछ खाने को दो। वह झोपड़ी में गया और ज्वार की एक रोटी ले आया। साथ में न नमक, न मिर्च, केवल रोटी। मैं भी इतना भूखा था कि उस रोटी को गपागप खा गया और दूसरी का इंतजार करने लगा। पर दूसरी रोटी नहीं आयी। थोड़ी देर में भील

ही बाहर आया। कहने लगा, 'मैं जानता हूँ कि तुम अभी भूखे हो। घर में कुल चार रोटियाँ थीं। एक तुम्हें दी, एक मैंने ली, एक मेरी स्त्री ने और आधी-आधी रोटी दो बच्चों में बाँट दी। अब घर में न रोटी है, न आटा। तुम भी भूखे, हम भी भूखे।'

उनकी बात सुनकर हम अवाक रह गये। फिर उन्होंने धीरे से कहा, मानो अपने आप से कह रहे हों, 'यही है धर्म।'

मेरे मन का कोना-कोना उजास से भर गया। समुद्र-तट पर टहलते-टहलते हम काफी दूर आ गये थे। सूने खेतों में से होते हुए कब मीठीतलाई वापस आ गये, कुछ पता भी नहीं चला।

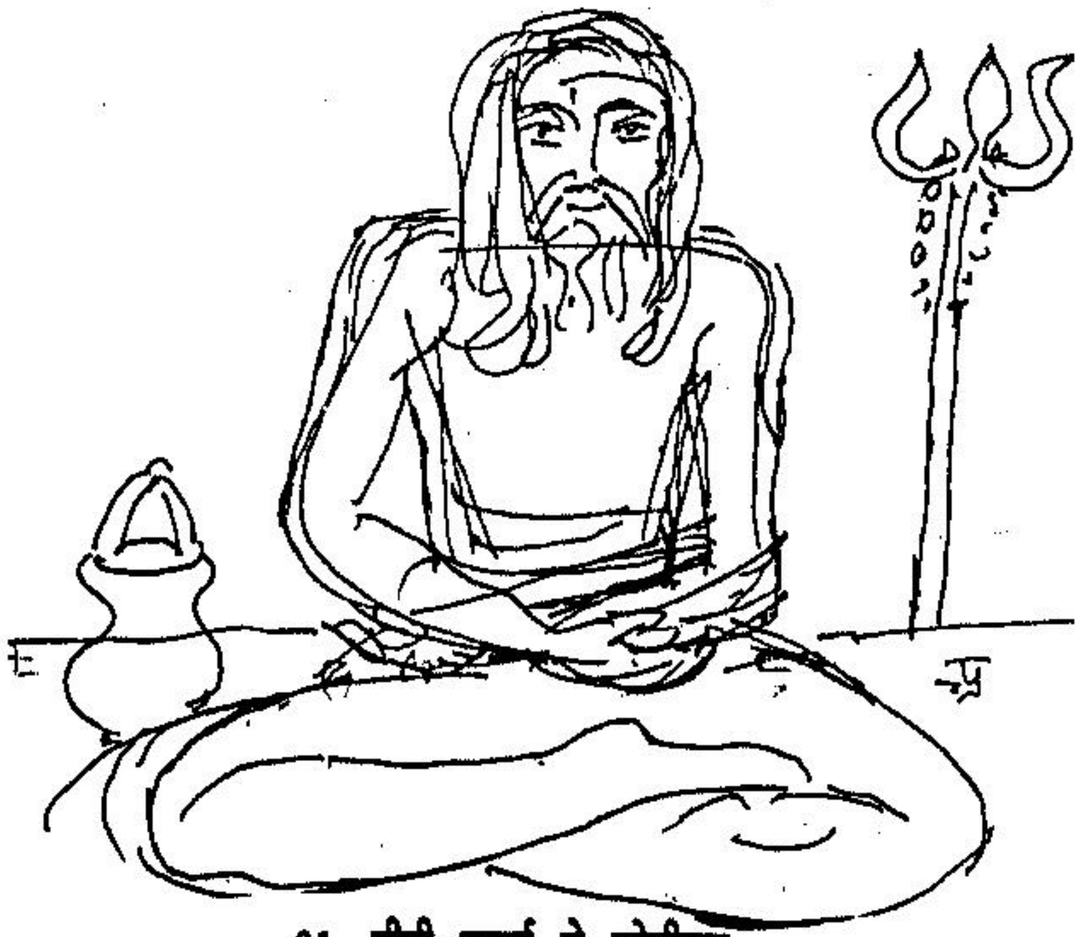

21. मीठी तलाई से कोलीयाद

नदी है जन्मजात यात्री। जन्म लेते ही चल पड़ती है। और एक बार जो चली, तो एक क्षण के लिए भी रुकती नहीं। धरती जब गहरी नींद में सोयी रहती है, तब भी वह अबाध गति से चलती रहती है— दिन और रात, रात और दिन! थकना या रुकना तो वह जानती ही नहीं। बस, चलती रहती है अविराम। चरैवेति, चरैवेति। यही उसका व्रत है, यही उसका जीवनदायी संदेश है।

पर हर यात्रा का अंत होता है। आरंभ होगा, तो अंत भी होगा। नर्मदा की यात्रा का यहाँ अंत है। नर्मदा यहाँ सागर में उतरती है और स्वयं सागर हो जाती है।

यहाँ मुहाने पर नर्मदा का पाट कोई बीस किलोमीटर चौड़ा है। दक्षिण-तट उथला और दलदली है। उत्तर-तट पर अत्यंत स्वच्छ रेत है और गहरा भी है। मुहाने पर है हरिकाधाम। पास में है मीठीतलाई। हम मीठीतलाई में रुके हैं। यहाँ के मंदिर के स्वामी जी बड़े ही सौम्य, शांत और मृदुभाषी हैं। मध्यप्रदेश के ही हैं। हम लोगों से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। मैंने कहा, 'जाते समय गुमान कह गया है कि तीन-चार दिन के बाद वह फिर आयेगा। उसे आपसे कुछ जरूरी काम है।'

'बड़ी मुसीबत में पड़ गया है गुमान। हुआ यह कि कुछ समय पहले उसके गाँव में एक झगड़ा हुआ और उसमें एक आदमी मारा गया। मृतक के पक्ष ने हत्यारों के जो नाम दिये हैं, उनमें एक नाम गुमान का भी है। लेकिन उस दिन तो गुमान यहाँ था, वहाँ था ही नहीं। परकम्मावासियों को नाव से लेकर आया था। रात भी यहीं रहा। वह चाहता है कि मैं उसे प्रमाण-पत्र दूँ कि उस दिन वह यहाँ था।'

'फिर दिक्कत क्या है?'

'प्रमाण-पत्र तो मैं दे दूँ, लेकिन यही कहने के लिए बाद में मुझे कचहरी जाना पड़ेगा। मैं शांति के साथ अपना जीवन बिताना चाहता हूँ। लेकिन एक निरपराध को सजा हो जाये, यह भी अच्छा नहीं लगता। अजीब धर्मसंकट में हूँ।'

फिर उन्होंने एक संस्मरण सुनाया। 'पास के गाँव के मंदिर के पुजारी जी बड़े ही साधु-चरित थे। मंदिर के साथ कई एकड़ जमीन लगी थी। लेकिन उसमें कुछ ऐसी जमीन थी, जो अभी पुराने दानदाता के नाम पर ही थी, मंदिर के नाम चढ़ी नहीं थी। उनके वंशजों ने इसका फायदा उठाकर मुकदमा दायर कर दिया कि जमीन हमारी है, मंदिर ने इस पर नाजायज कब्जा कर रखा है। पुजारी जी के पास समन्स आया तो वे हतप्रभ रह गये। कहने लगे— कचहरी जाने की क्या जरूरत थी, मुझसे कहते, मैं ही उनकी जमीन दे देता। अब इस गाँव में मुझे एक क्षण भी नहीं रहना, और वे यहाँ चले आये। इसी बरगद के नीचे आसन लगाया। धीरे-धीरे एक कुटी बनी। यह पक्का मकान तो बहुत बाद में बना।'

'गाँव के लोग उन्हें मनाने नहीं आये?'

'आये, पर वे माने नहीं। कहने लगे, मरने के बाद ले जाना। वैसा ही हुआ। उनकी अंत्येष्टि उसी गाँव में हुई, लेकिन जीते जी नहीं गये।'

थोड़ा रुककर बोले, 'कोर्ट-कचहरी जाना किसी को अच्छा नहीं लगता, साधु-संन्यासी को तो और भी नहीं। लेकिन नहीं जाता हूँ तो एक निरपराध को सजा हो जाती है। अजीब दुविधा में हूँ। कचहरी भी नहीं जाना चाहता और एक निर्दोष का अमंगल होते देखना भी नहीं चाहता। देखिए, ईश्वर कोई न कोई रास्ता निकालेगा।'

हमारे जीवन में ऐसे मौके आते ही हैं, जब हममें आगे बढ़ने का माहस नहीं होता और पीछे हटने में शर्म आती है।

शाम को समुद्र-तट पर घूमता रहा। ज्वार का पानी उतर गया था। समुद्र का पानी जब उतरता है, तो अपने पीछे अपनी छाप छोड़ जाता है। रेत पर कशीदाकारी के नमूने, चुन्नटें और सिलवटें छोड़ जाता है।

आज दीवाली है, अमावस्या की रात। आज रात को समुद्र में बड़ा ज्वार आयेगा, इसे देखने जायेंगे।

रात को पास के गाँव जागेश्वर से गीतों के स्वर आने लगे, तो मैं और मलय वहाँ चले गये। वहाँ गरबा हो रहा था। एक बड़े आँगन में गाँव के स्त्री-पुरुष इकट्ठे हुए थे। स्त्रियाँ गरबा नृत्य कर रही थीं और गा रही थीं—

मेंदी से वावी मालवे ने एनो रंग गयो गुजरात रे!

(मेंहदी तो मालवे में लगायी, पर उसका रंग गुजरात जा पहुँचा!)

उमंग और उत्साह से परिपूर्ण स्त्रियाँ बड़ी फुर्ती से नाच रही हैं। उनके पाँव ऐसे थिरक रहे हैं, मानो हवा में उड़ रही हों। खुशीभरा कोलाहल उनका साथ दे रहा है।

गुजरात में भीषण सूखा पड़ा है। इस गाँव के तो कुएँ तक सूख गये हैं। यही स्त्रियाँ दिन भर मीठीतलाई पानी भरने आती रहती हैं। लेकिन अभी यह सब कुछ भूलकर आनंद-उल्लास के साथ गरबा नृत्य कर रही हैं। यह मनुष्य की असीम आस्था और अजेय आत्मविश्वास का ही परिचायक है।

आधी रात को ज्वार देखने समुद्र-तट गये। पर वैसा तांडव नहीं था। अगर चट्टानी तट होता तो पानी उससे टकराता, बड़ी-बड़ी लहरें उठतीं। पर यहाँ तो समतल रेतीला तट है, इसलिए समुद्र घोड़े की तरह दौड़ता नहीं जान पड़ता। (यह समुद्र भी तो नहीं, खाड़ी या नर्मदा का मुहाना है।) समुद्र की लहरें तट पर आती थीं और वापस जाती थीं, आती थीं और लौट जाती थीं। काफी देर तक सम्मोहित-से हम यह देखते रहे, फिर लौट आये।

सुबह मैं मुँहअँधेरे ही उठ बैठा। थोड़ी देर में हम यहाँ से चल देंगे। लेकिन मेरे जल्दी उठने का एक कारण और है। गुजरात में दीवाली वर्ष का अंतिम दिवस होता है। परिवा से नया वर्ष शुरू होता है, विक्रम संवत बदलता है। इस दिन भोर में ही नहा-धोकर सभी एक-दूसरे का अभिवादन करते हैं। छोटे बड़ों को प्रणाम करते हैं, चरण-स्पर्श करते हैं। सोचा, जल्दी से जाकर माँ नर्मदा को प्रणाम कर आऊँ। ऐसा सुयोग जीवन में फिर कब आयेगा!

पौ फटने से पहले की खामोशी में नर्मदा के साथ एकदम अकेले होने की अनुभूति विलक्षण थी। नर्मदा का शांत सौंदर्य इतना अभिभूत कर देने

वाला था कि मैं उसे निहारता ही रह गया। ओह, नर्मदा कितनी कोमल, कितनी धवल, कितनी भव्य और कितनी पावन लग रही है!

भोर की कोख से नया दिन निकला, तो दोनों हाथ जोड़कर माँ नर्मदा को प्रणाम किये— नव वर्ष के प्रथम प्रणाम। त्वदीय पाद पंकजं, नमामि देवि नर्मदे!

कितना अच्छा लगा, मन शांति से भर गया। एक अलौकिक शांति मेरे रोम-रोम में व्याप्त हो गयी।

मैं लौटने ही वाला था कि सहसा मुझे मेरे पिता का स्मरण हो आया। इस दिन प्रति वर्ष सर्वप्रथम पिता के चरण-स्पर्श करता था। लेकिन अब पिता नहीं रहे। डेढ़ वर्ष पूर्व, 87 वर्ष की आयु में, छह घंटे की बीमारी में उनका देहावसान हो गया। वे जितने प्रकृति-प्रेमी थे, उतने ही साहित्यानुरागी। ये दोनों ही गुण मुझे उनसे विरासत में मिले हैं। पैदल चलने का शौक भी उन्हीं की देन है। उनके जाने पर मुझे लगा, मानो हठात् मेरे पंख कट गये हैं और मैं उड़ान भरने में असमर्थ हूँ। लेकिन एक दिन सहसा लगा, नहीं, मेरे पिता गये नहीं हैं। उनका शरीर नहीं रहा, पर एक ऊर्जा के रूप में वे आज भी मुझे शक्ति प्रदान कर रहे हैं, मेरे मंगल की कामना कर रहे हैं। पुत्रों को शक्ति प्रदान करने वाला पिता का प्रेम आज भी मेरे साथ है।

रेवा-सागर संगम पर खड़े होकर दूसरे प्रणाम मैंने अपने स्वर्गीय माता-पिता को किये और वापस आ गया।

यहाँ मीठीतलाई में कितनी शांति है। यहाँ तो पंदरह दिनों तक रहा जा सकता है, लेकिन चलना जरूरी है। नर्मदा के उत्तर-तट की पदयात्रा का शुभारंभ करने के लिए आज से बढ़कर दिन भला और क्या हो सकता है। कार्तिकस्य प्रथम दिवसे....!

यहाँ से हमारी यात्रा का नया अध्याय शुरू हुआ। अभी तक हम दक्षिण-तट पर थे, अब उत्तर-तट पर आ गये। अभी तक उद्गम से संगम की ओर चल रहे थे, अब संगम से उद्गम की ओर चलेंगे।

हमने बहुत भारी मन से संन्यासियों से विदा ली। साथ तो केवल चार दिनों का था, पर वे दोनों लंबे समय तक मेरी स्मृति में बने रहेंगे। इस तरह की आकस्मिक मुलाकातें कभी-कभी कितना गहरा असर छोड़ जाती हैं।

कतपोर और यहाँ मिलाकर चार-पाँच दिन का आराम मिल गया था। अच्छा ही हुआ। अनिल को पहले चप्पल और बाद में जूतों ने काट खाया था। श्यामलाल के नंगे पाँवों में चीरे पड़ गये थे और काँटा गड़ गया था। मेरे पैर में फफोला निकल आया था। लेकिन अब हम लोग फिर से चलने लायक हो गये हैं।

जागेश्वर के बाद रास्ते में एक जगह सुस्ताने बैठे तो अनिल ने पूछा, 'क्या धर्म जरूरी है? क्या कानून पर्याप्त नहीं? धर्म न हो, तो क्या हमारा काम नहीं चलेगा?'

इतना बोल कर चुप्पा अनिल चुप हो जाता और मेरा बोलना शुरू हो जाता। मैंने कहा—

कानून कहता है— चोरी न करो, डकैती न करो। पर कानून यह नहीं कह सकता कि दान करो, त्याग करो। कानून कहेगा— खून न करो, हत्या न करो। पर कानून यह नहीं कह सकता कि दूसरों के लिए अपने प्राण न्योछावर कर दो। यह तो धर्म ही कह सकता है। कानून कहता है— बुरा काम मत करो। धर्म कहता है— इतना काफी नहीं है, कुछ अच्छा काम करो। इस तरह जहाँ कानून खत्म होता है, वहाँ से धर्म शुरू होता है। कानून जरूरी है। वह हमें अराजकता से उबारता है, हमारे अधिकारों की रक्षा करता है। लेकिन समाज को ऊपर उठाता है धर्म। त्याग की, सेवा की, स्वार्पण की प्रेरणा तो धर्म ही दे सकता है। यह कानून के बस की बात नहीं।

मलय और श्यामलाल भी मेरी बात ध्यान से सुन रहे थे। इसलिए मैंने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा—

जब हम बाजार सौदा लेने जाते हैं, तब हम दुकानदार को एक रुपया देते हैं और बदले में दुकानदार हमें एक रुपये की चीज देता है। यह हुई न्याय की बात, कानून की बात। जितना लेना, उतना देना— यह है न्याय। समाज में अगर इतना होता, तब भी काफी था।

किन्तु, होता यह है कि हम चाहते हैं कि दें तो हम रुपया, लेकिन बदले में हमें चीज मिले सवा रुपये की। इसी तरह दुकानदार चाहता है कि रुपया लेकर वह हमें बारह आने की चीज ही दे। इसीलिए वह कम तौलता है या मिलावट करता है। ज्यादा लेना और कम देना— यह है अन्याय। यह कानून के भी खिलाफ है। अगर अन्याय न होता, तो न्यायालय भी न होते। यह कितनी विचित्र बात है कि न्यायालय का अस्तित्व अन्याय के कारण है।

लेकिन एक तीसरी स्थिति भी हो सकती है। ऐसा ग्राहक भी हो सकता है जो दे तो रुपया, लेकिन बदले में चीज चाहे बारह आने की। उसी तरह ऐसा दुकानदार भी हो सकता है जो रुपया लेकर सवा रुपये की चीज दे। तुम कहोगे, ऐसा भी कहीं होता है? होता है। महात्मा गांधी और विनोबा इसी के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। उन्होंने समाज से कितना लिया और बदले में कितना दिया! समाज से दो रोटी और एक लँगोटी ली और बदले में अपना सारा जीवन मनुष्य जाति की सेवा में होम कर दिया। सच्चे साधु-संन्यासी, समाजसेवी, सच्चे शिक्षक, हाड़-तोड़ मेहनत करने वाले किसान और मजदूर— ये सभी इसी श्रेणी में आते हैं। धरती का नमक ये लोग ही हैं। तो यह जो तीसरी स्थिति है— कम लेना और ज्यादा देना— यही है धर्म। आदि धर्म। इसे हम धर्म कहें, अध्यात्म कहें या मानव धर्म कहें। कानून आवश्यक है, पर पर्याप्त नहीं। कानून पर हमें रुकना नहीं है। उससे आगे बढ़कर धर्म के शिखर को भी छूना है।

इतना कहकर मैंने बोलना बंद किया। लेकिन तब मुझे क्या पता था कि आज का सारा दिन मुझे बोलते रहना है। मेरे बोलने का यह अंत नहीं है, यह तो है आरंभ! पर केवल आज का ही दिन, भला!

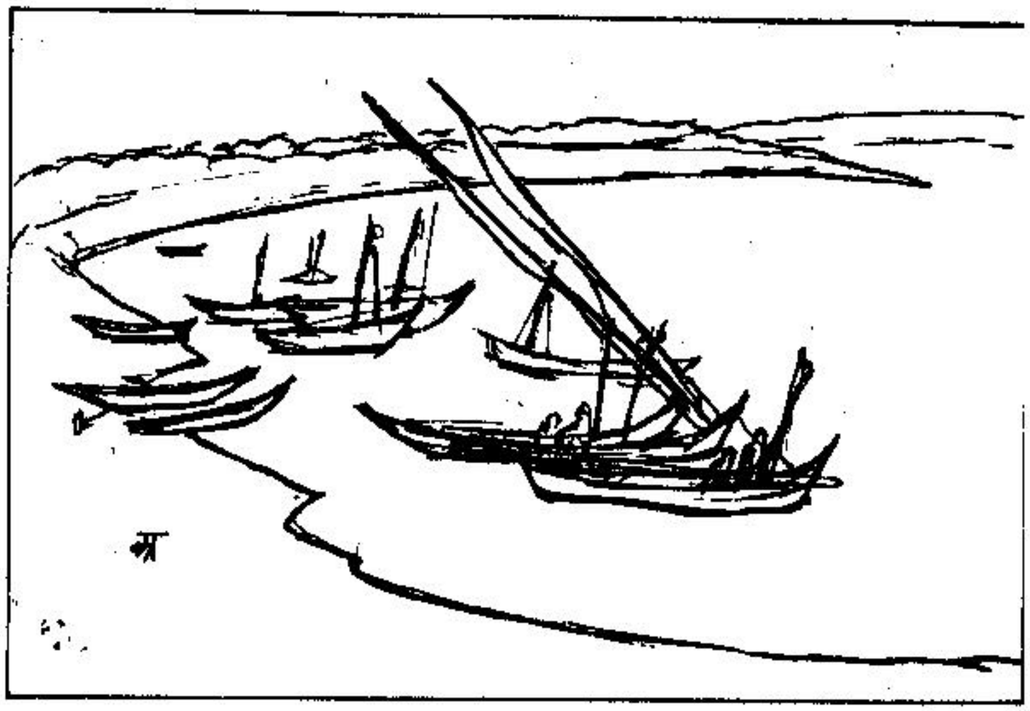

22. कोलीयाद से भरूच

यह ठीक है कि नदी के दो किनारे होते हैं, पर हमारे काम तो वही किनारा आता है, जो हमारी ओर होता है। यहाँ हम नहा सकते हैं, बच्चे तैर सकते हैं, पनिहारिनें पानी भर सकती हैं, किसान अपने खेतों के लिए पानी ले सकते हैं। हमारी ओर का किनारा हमारे लिए अनेक प्रकार से कल्याणकारी है। सामने तट का हमारे लिए वैसा कोई उपयोग नहीं। यहाँ बैठे-बैठे केवल उसके सौंदर्य को देख सकते हैं। तो हम कह सकते हैं कि नदी सत्य है, हमारी ओर का किनारा शिव है, सामने का किनारा सुंदर है। सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्!

सत्य की नदी के एक किनारे का नाम शिवम्, दूसरे का नाम सुन्दरम्।

किन्तु, जो सामने किनारे रहते हैं, उनके लिए उनका किनारा शिवम् और हमारा किनारा सुन्दरम्। हमसे ठीक उलटा। लेकिन दोनों सही।

इसीलिए जब राह चलते अनिल ने मुझसे पूछा कि क्या आप पुनर्जन्म में विश्वास करते है, तो मैंने कहा कि मान लो मैं विश्वास करता हूँ और तुम नहीं करते, तो मैं भी सही और तुम भी सही।

अनिल ने कहा, 'ऐसा कैसे हो सकता है? अभी हम नर्मदा के दक्षिण-तट पर हैं, यह भी सच और उत्तर-तट पर हैं, यह भी सच?'

अब अभय मुनि नहीं हैं, इसलिए आचार्य का पद मुझे प्राप्त हुआ है। कहा, 'ऐसी स्थूल बातों में सच नहीं। लेकिन कुछेक सूक्ष्म बातों में यह सच हो सकता है। एक दूसरे के विपरीत होते हुए भी दोनों सच हो सकते हैं। ऐसे विषयों में आप किस जमीन पर खड़े हैं, आपकी स्थिति क्या है या आपकी मनःस्थिति क्या है, इस पर बहुत कुछ निर्भर करता है। जिन्हें पूर्वजन्म की मान्यता से जीवन में बल मिलता हो, उनके लिए यह वरदान के समान है। आखिर यह श्रद्धा का विषय है, तर्क का नहीं। इसलिए ऐसी बातों में यह ही सच है, ऐसा कहने की बजाय यह भी सच हो सकता है, ऐसा कहना ज्यादा उचित होगा। ऐसे विषयों में 'ही' नहीं पर 'भी'।'

थोड़ी देर रुककर कहा, 'कभी-कभी लगता है कि हमारा यह शरीर मानो नदी किनारे का एक गाँव है। ज्यों-ज्यों नदी आगे बढ़ती है, एक के बाद एक गाँव आते जाते हैं। उसी तरह अनेक देहों में से होती हुई जीवन-नदी आगे बढ़ती जाती है। अंत में नदी समुद्र में मिल जाती है, आत्मा परमात्मा में मिल जाता है। जब ऐसे विचार आते हैं तब पुनर्जन्म में विश्वास करना अच्छा लगता है और प्रमाण माँगने की भी इच्छा नहीं होती।'

अनिल मेरी बात ध्यान से सुन रहा था। बात को आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा, 'तो कभी यह विचार भी आता है कि पूर्वजन्म हमें अतीत की ओर ले जाता है और पुनर्जन्म भविष्य की ओर। मैं तो वर्तमान में ही रहना पसंद करूँगा। इसी जन्म में कुछ वर्ष बाद क्या होगा इसका तो पता नहीं, तब दूसरे जन्मों की चिंता क्यों करें? जब इस तरह के विचार मन में आते हैं, तब पुनर्जन्म में विश्वास करना अनावश्यक-सा लगता है। इसलिए आज तक मैं तय नहीं कर पाया कि मैं पूर्वजन्म में विश्वास करता हूँ या नहीं। फिर भी थोड़ी देर के लिए मान लें कि मैं विश्वास करता हूँ और तुम नहीं करते, तो मैं भी सही और तुम भी सही। ऐसी बातों में 'ही' नहीं पर 'भी'।'

चलते-चलते थक जाते हैं तो कहीं छाया में बैठ जाते हैं और कुछ न कुछ बातें करते हैं ताकि अधिक से अधिक समय तक बैठने मिले।

कड़ी धूप में कोलीयाद पहुँचे। गाँव में एक तालाब के किनारे, पेड़ के नीचे रात्रि-विश्राम रहा। जगह साफ-सुथरी है। सभी परकम्मावासी यहीं रुकते हैं।

रात को भोजन से निवृत्त होकर बैठे थे कि लोगों का आना शुरू हुआ। स्त्री-पुरुष सभी आये। पता चला कि ये सभी 'स्वाध्याय' परिवार के

सदस्य हैं और सप्ताह में एक बार यहाँ एकत्र होते हैं। सभी अनुशासित ढंग से बैठ गये और काफी देर तक संस्कृत श्लोकों का समवेत स्वरों में पाठ करते रहे। भजन भी हुए। फिर एक सज्जन ने खड़े होकर कहा, 'आज जो परकम्मावासी यहाँ आये हैं, उनमें एक शिक्षक हैं, बाकी उनके छात्र हैं। मेरी उनसे विनय है कि वे हमें कुछ कहने की कृपा करें।'

मैं गुजराती में ही बोला, 'भाइयो और बहनो, आपका संस्कृत श्लोकों का सस्वर पाठ हम बड़े मनोयोग से सुन रहे थे। खूब अच्छा लग रहा था। कल जागेश्वर में हमने स्त्रियों को गरबा करते देखा। आज आप लोगों को गाते सुना। यह बहुत बड़ी बात है। आप किसी को गाते नहीं सुन रहे हैं, स्वयं गा रहे हैं। किसी को नाचते नहीं देख रहे हैं, स्वयं नाच रहे हैं। खुद नाचना-गाना प्रथम दर्जे का आनंद है, टी.वी. पर दूसरों को नाचते-गाते देखना दूसरे दर्जे का आनंद है। हमें दर्शक नहीं, हिस्सेदार होना चाहिए। सक्रिय सृजनात्मक आनंद ही सच्चा आनंद है। वही आज मुझे देखने मिला, बड़ी खुशी हुई।'

सभी मेरी बात ध्यान से सुन रहे थे। 'पहले आनंद की हर चीज बाहर थी— नदी, पहाड़, जंगल, तीर्थ, फूल, पक्षी। अब सब कुछ अंदर है— टी.वी. के डिब्बे में! टी.वी. ने हमें घरघुसरा और निष्क्रिय बना दिया है। और बदले में हमें आनंद भी नहीं दिया— आनंद का छिलका पकड़ा दिया!'

मैं बड़े आवेग के साथ बोल रहा था। 'कहते हैं— अँखियाँ हरिदर्शन की प्यासी। रही होंगी कभी। अब तो वे हैं टी.वी. की प्यासी! टी.वी. हमारे दिमाग में कितना कूड़ा ठूँसता है, कितना मानसिक प्रदूषण फैलाता है!'

मैं टी.वी. पर और भी बड़ा हमला करने वाला था, तभी मुझे खयाल आया कि यह मैं क्या बोल रहा हूँ! मुझे यहाँ टी.वी. के खिलाफ बोलने के लिए नहीं कहा गया है। फिर इस गाँव में तो टी.वी. है भी नहीं। मेरी तलवार की धार तीक्ष्ण है, पर सामने शत्रु ही नहीं है! हालाँकि लोग बड़े चाव से सुन रहे थे, फिर भी मैंने विषय बदल दिया और नर्मदा परिक्रमा के संस्मरण सुनाये। अंत में लोगों ने प्रश्न पूछे तो उनके जवाब दिये।

लोगों ने कहा, 'आप तो बहुत अच्छी गुजराती बोलते हैं।'

अनिल ने कहा, 'आप जो कुछ बोले, वह सब हमारी समझ में आ गया। पर यहाँ के लोगों की गुजराती समझ में नहीं आती।'

दरअसल यहाँ के लोग बहुत जल्दी-जल्दी बोलते हैं। कभी-कभी तो कुछ शब्द मुँह में ही रह जाते हैं। उच्चारण में भी फर्क है, वरना हिन्दी और गुजराती में अंतर ही क्या है! मालवी, निमाड़ी, या राजस्थानी सुनने पर प्रायः भ्रम हो जाता है कि हम गुजराती सुन रहे हैं। जैसी मालवी, निमाडी या

राजस्थानी, वैसी ही गुजराती। भारत के एक छोर पर स्थित होने के कारण स्वतंत्र भाषा में रूप में विकसित हो गयी, वरना गुजराती— भाषा और लिपि दोनों— हिन्दी का ही सरल रूप है।

जब से गुजरात में आये हैं, आश्रय-स्थल खोजना नहीं पड़ता। हर जगह मंदिर और उससे लगी धर्मशाला मिल जाती है। सदाव्रत की भी सुविधा है। लेकिन नुकसान यह है कि ग्रामीणों से आत्मीयता नहीं हो पाती। पहले पटवारी के घर, कोटवार या किसी अन्य ग्रामीण के घर ठहरते थे, तो उसके पूरे परिवार के साथ घरोबा हो जाता था। अब वह नहीं हो रहा है। भाग्य से आज इस गाँव के भाई-बहनों के साथ वही आत्मीयता हो गयी है तो और भी अच्छा लग रहा है।

सबेरे चल दिये। जब तक दक्षिण-तट पर थे, चलना पूर्व से पश्चिम की ओर होता था। इसलिए सूर्य दोपहर तक पीठ के पीछे रहता था, दोपहर के बाद ही उसका सामना करना पड़ता था। अब उत्तर-तट पर हम पश्चिम से पूर्व की ओर जा रहे हैं, इसलिए सुबह से ही सूर्य की तीखी किरणों का सामना करना पड़ता है।

रास्ते में एक ग्रामीण का साथ हो गया। पूछा, 'कहाँ जा रहे हो?' गाँव का नाम बताकर उसने कहा, 'वहाँ मेरी बहन रहती है। आज भाई-दूज है न, बहन की खोज-खबर लेने जा रहा हूँ।' ऐसा भाई हर बहन को मिले!

तीसरे पहर भारभूत पहुँचे। भारभूत नर्मदा-तट पर है और तट पर ही मंदिर और धर्मशाला है। वहीं रहे। नदी में ज्वार-भाटे का खेल चलता रहता है।

भोर होते ही चल दिये। रास्ता प्रायः नदी के किनारे से है। खेतों में फसल नहीं है, हर जगह झुलसी हुई जमीन है।

जब हमारी यात्रा समाप्त होगी, तब मेरे तीनों साथी सीधे जबलपुर निकल जायेंगे, मैं तीन दिन बाद निकलूँगा। मैंने अनिल से कहा, 'जब तुम सामान पहुँचाने घर जाओगे, तब मुझे न देखकर स्वाभाविक ही मेरी पत्नी मेरे बारे में पूछेगी। तब तुम कहना कि हमारे सर तो संन्यासी हो गये! कहना, यात्रा में दो संन्यासियों का साथ हो गया था। सर उनसे इतने अधिक प्रभावित हो गये कि कहने लगे कि अब मैं भी संन्यास लूँगा! यहाँ थोड़ा रुकना, गुरु-पत्नी के चेहरे के भाव देखना, फिर कहना— हम लोग तो सुनकर अवाक! सर को हठात् यह क्या हो गया! हमने उन्हें बहुत समझाया। हम लोगों के कहने से तो नहीं माने, पर स्वयं संन्यासी और मंदिर के पुजारी जी ने उन्हें बहुत समझाया, बल्कि डाँटा, तब कहीं उन्होंने अपना विचार बदला। कहने लगे, अच्छा, संन्यास तो नहीं लूँगा पर बाकी बची हुई परिक्रमा पूरी

करके ही घर लौटूँगा। आप चिंता न करें, सर तीनेक महीने में आ जायेंगे इतना कह कर रुक जाना। गुरु-पत्नी का रुआँसा चेहरा देखकर चुप हो जाना और मेरा पत्र दे देना। (पत्र में मैं लिख ही दूँगा कि मैं तीन दिन बाद आऊँगा।) फिर जल्दी से खिसक लेना। बोलो, कह सकोगे?'

अनिल ने कहा, 'मुझ से यह काम न होगा।'

जानता हूँ, अनिल नहीं कह पायेगा। अनिल और श्यामलाल वैसे ही बहुत कम बोलते हैं। अनिल तो बिना बोले सारा का सारा दिन निकाल सकता है, ऐसी बात कहाँ से कह पायेगा! थोड़ी-बहुत उम्मीद मलय से है। 'क्यों मलय, तुम क्या कहते हो?'

'मैं कह दूँगा!'

'शाबाश! लेकिन रोनी सूरत बनाकर कहना, वरना भंडाफोड़ हो जायेगा। हो सके तो दो-चार आँसू भी ढुरका देना।'

मलय ने बीड़ा जरूर उठाया, पर कह वह भी न सका। इस प्रकार यह नाटक लिखा तो गया, पर खेला नहीं गया।

भरूच पहुँचते-पहुँचते हमें दोपहर हो आयी। यहाँ की धर्मशाला भी नर्मदा-तट पर है। नदी में पाल वाली नावें तैर रही हैं या तट पर निश्चल खड़ी हैं। यहाँ भी नदी में ज्वार-भाटे का खेल चलता रहता है। थोड़ी देर पहले जहाँ पानी होता, वहाँ रेतीला कछार निकल आता। पानी कभी उस तट, तो कभी इस तट। लगता है, नर्मदा दो किनारों के बीच झूलती रहती है।

भरूच में बड़ी गंदगी है। पहाड़ों और खेतों की स्वच्छता में रमने के बाद शहर मुझे बड़ा निराशाजनक लगा। लेकिन यही भरूच कभी पश्चिम भारत का सबसे व्यस्त बंदरगाह रहा। तब इसका नाम भृगुकच्छ था। देश-विदेश के जहाज यहाँ आते थे। इसका व्यापार एशिया और यूरोप के कई देशों के साथ रहा। तब कैसा वैभव, कैसी समृद्धि रही होगी इस नगर की! आज भी यह नर्मदा-तट का शायद सबसे बड़ा शहर है।

अब पाठकों से विदा लेने का, सभा-विसर्जन का, समय आ गया है। यह यात्रा तो हमने आगे नारेश्वर में समाप्त की, परंतु यह वृत्तांत यहीं पर समाप्त करता हूँ। जाते-जाते एक बात कहना चाहता हूँ। नर्मदा के राशि-राशि सौंदर्य में से मैं थोड़ा-सा सौंदर्य ही ले सका हूँ। सामने तो अथाह सागर है, पर हम उतना ही तो ले पाते हैं, जितना हमारा पात्र होता है। व्यक्त तो और भी कम कर पाया हूँ। नर्मदा का समग्र रूप मैंने देखा ही कहाँ! उसके तट पर चातुर्मास नहीं किया, उसकी उफनती-हहराती धारा के साथ नहीं रहा, उसके पहाड़ों-जंगलों की हाड़ कँपाने वाली सर्दी का अनुभव नहीं किया।

परकम्मावासियों को भिक्षा न मिलने पर जिस क्षुधा का अनुभव करना पड़ता होगा, मैंने उसे अनुभव नहीं किया। परिक्रमा के नियमों का पालन नहीं किया। न नंगे पैर चला, न भिक्षा माँगी। परिक्रमा भी पूरी नहीं की।

फिर भी, जो देखा वह भी तो कम नहीं। मैंने नर्मदा को प्रकट होते देखा, अन्य नदियों से पुष्ट होते देखा और समुद्र में लुप्त होते देखा। नर्मदा को मैंने किनारों से बतियाते सुना, चट्टानों पर लिखते देखा और रेत पर बेल-बूटे काढ़ते देखा। उद्गम से संगम तक की तो पूरी पदयात्रा की। उन दिनों की याद मुझे आज भी रस-विभोर कर देती है। घर-बार, कुटुंब-कबीला, नौकरी-चाकरी, सब कुछ भूलकर जीवन के कितने ही दिन मैंने बड़ी मस्ती से नर्मदा-तट पर बिताये हैं। मैं नर्मदा को रोज देखता और रोज मुझे वह नयी मालूम होती। सुबह से शाम तक मैं चलता रहता और साँझ होने पर अनजान आदमियों के दरवाजे खटखटाता। मैं उन भोले-भाले ग्रामीणों के घर रहा, जिनके निश्छल हृदयों में नर्मदा की ही छवि पायी। उनके प्यार की अनुभूति सदा के लिए मेरे मन में बनी रहेगी। मुझे लगता है कि वहाँ से उनका प्यार आज भी मुझ पर बरस रहा है। मैं उन परकम्मावासियों के साथ भी चला, जो रूखा-सूखा, पेट-अधपेट खाकर लंबी तानकर सोते थे और सबेरा होते ही अपने कंधे पर गठरी लादकर आगे बढ़ते थे। मैं नर्मदा का आंशिक सौंदर्य ही देख सका। पर सोचता हूँ, जब आंशिक सौंदर्य इतना है, तब पूर्ण सौंदर्य कितना होगा!

नर्मदा तट से लौटता, तो नर्मदा मेरी आँखों के आगे झूलती रहती। उसकी आवाज मेरे कानों में गूँजती रहती। नर्मदा मेरी रग-रग में प्रवाहित होती रहती। इसलिए मेरा मन चिल्ला-चिल्लाकर कहना चाहता है, 'सुनिए, मैं नर्मदा-तट से आ रहा हूँ। उसके सौंदर्य का थोड़ा-सा प्रसाद लेकर आया हूँ। लीजिए, और अगर अधिक पाने का मन करे, तो एक दिन पौ फटने पर अपने घर का दरवाजा बंद करके सीधे नर्मदा-तट की ओर चल दीजिए। सुन रहे हैं न आप लोग, मैं नर्मदा-तट का वासी बोल रहा हूँ!

माँ नर्मदे! बार-बार तुम्हारे तट पर आता रहूँगा। हो सका तो शेष परिक्रमा भी पूरी करूँगा। लेकिन लिखना यहीं समाप्त करता हूँ। हाँ, एक बात कहना चाहता हूँ। मैं तुम्हारे तट पर आता था, कई-कई दिन चलता था, फिर घर वापस आ जाता था। लेकिन एक बार ऐसा आऊँगा कि वापस नहीं जाऊँगा। हमेशा के लिए मीठी नींद सो जाऊँगा। तब थपकी देकर सुला देना। बस, यही एक आकांक्षा है, इसे पूरी करना माँ!

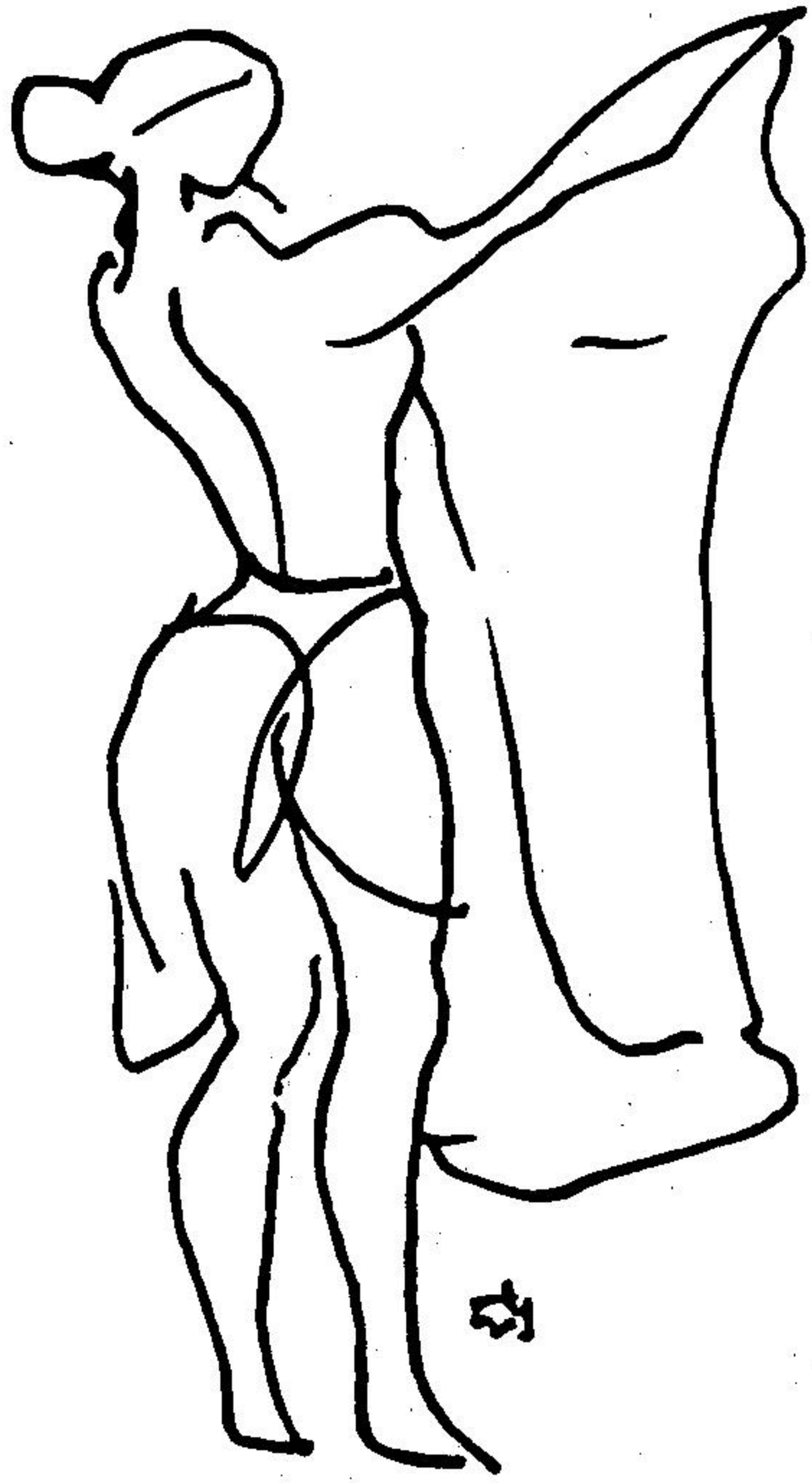

श्री अमृतलाल वेगड़ का नर्मदा के प्रति एक विशेष लगाव है जिसके चलते वे अभी तक नर्मदा-तट की 1800 किलोमीटर की कठिन पदयात्रा कर चुके हैं। नर्मदा-परिक्रमा पर आधारित उनके चित्र अनेक प्रदर्शनियों में आमंत्रित एवं पुरस्कृत हो चुके हैं। कला के साथ लेखन में भी रुचि रखने वाले श्री वेगड़ का नर्मदा-यात्रा-वृत्त हिन्दी की सभी प्रमुख पत्रिकाओं में प्रकाशित होता रहा है— अनूठे चित्रों के साथ।

यही वृत्तांत अब इस पुस्तक में बहुमूल्य रेखांकनों के साथ साग्रह प्रकाशित हो रहा है। लेखक का उद्देश्य नर्मदा के अनुपम सौंदर्य का उद्घाटन करना है। नर्मदा-सौंदर्य के साथ-साथ नर्मदा-तट के जन-जीवन की एक अन्तरंग झलक भी इसमें मिलती है। पुस्तक पाठक को बाँधे रखती है। इस सफलता का रहस्य इसकी हृदयग्राही शैली में निहित है। लेखक ने पाठक को अपने दल में शामिल कर लिया है और वे पाठक को अपने साथ लिये चलते हैं। लेखक के साथ-साथ पाठक भी नर्मदा-परिक्रमा कर लेता है।

मध्यप्रदेश की जीवन-रेखा नर्मदा पर एक स्नेहसिक्त रचना।

अ